सदल मिश्र

John Gilchrist

हिन्दी के आदि शैलीकार

सदल मिश्र

डॉ० नागेन्द्र नाथ पाण्डेय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

हिन्दी के आदि-शैलीकार : सदल मिश्र

हिन्दी के आदि-शैलीकार: सदल मिश्र

डॉ० नागेन्द्रनाथ पाण्डेय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

प्रकाशन वर्ष : सन् २००२ ई०

संस्करण : प्रथम

प्रतियाँ : ५०० (पांच सौ)

मूल्य : २६०/- (दो सौ साठ रुपये मात्र)

आवरण : सदल मिश्र एवं गिलक्राइस्ट के हस्ताक्षर तथा फोर्ट विलियम कालेज की मुद्रा से युक्त

प्रकाशक : सचिव, हिन्दुस्तानी एकेडेमी
१२ डी०, कमला नेहरु रोड, इलाहाबाद -२११००१

मुद्रक : इण्डियन ऑफसेट प्रिन्टर्स
केला भवन, १३६ विवेकानन्द मार्ग,
इलाहाबाद - २११००३ दूरभाष- (०५३२) ४०२८५९

समर्पण

'प्रिये, तुम्हारी प्रेरणा के दीप मैं लिये चला
तुम्हारे अश्रु-मोतियों के सीप मैं लिये चला'

चिरसंगिनी
स्वर्गीय श्रीमती बिन्दुमती देवी को
समर्पित

डॉ० नागेन्द्रनाथ पाण्डेय

शुभाशंसा

डॉ० नागेन्द्रनाथ पाण्डेय जी से मेरा चार दशक पूर्व का सम्पर्क था। वे अध्याव्यवसायी विद्वान थे। उनके हृदय में राजभाषा-राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति सदैव समर्पण भाव रहा। केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में हिन्दी अधिकारी रहते हुए पाण्डेय जी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रयोग व प्रचलन की दृष्टि से बहुत-सा कार्य किया था। एक ओर वे अनुवाद के कार्य में निष्णात थे दूसरी ओर उनका रुझान साहित्य और साहित्यिक क्रियाकलापों के प्रति सदा बना रहा। पाण्डेय जी ने बिहार व बंगाल के प्रमुख केन्द्रों से सदल मिश्र सम्बन्धित प्रचुर सामग्री एकत्र कीं और उनके वंशजों से मिलकर महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त कीं। पाण्डेय जी के खोज व अध्यव्यवसाय के फलस्वरुप यह ग्रन्थ हिन्दी गद्य के विकास में रुचि रखने वाले अध्येताओं के लिए अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगा।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर रही है, यह उसकी परम्परा के अनुकूल ही है। डॉ० नागेन्द्रनाथ पाण्डेय हृदयाघात की पीड़ा सहते हुए भी इस ग्रन्थ के प्रकाशन-कार्य में अपना सहयोग देते रहे। विश्वास है, उनकी इस कृति का साहित्य जगत में सम्मान होगा।

मुझे दुःख है कि वे असमय हमारे बीच से चले गए और मुद्रित ग्रंथ के रुप में अपना कृतित्व हीं पाए।

हरिमोहन मालवीय

१४ सितम्बर, हिन्दी दिवस २००२ई०

अध्यक्ष

हिन्दुस्तानी एकेडेमी

पुरोवाक्

हिन्दी के आद्य गद्य लेखक बिहार निवासी सदल मिश्र की चर्चा लगभग सभी हिन्दी इतिहासकारों ने की है। विद्या से विनय की प्राप्ति होती है और विनय से ज्ञान का उदय होता है इसी ज्ञानोदय ने मुझे प्रेरित किया कि मैं अपने विद्वान भाषाशास्त्रवेत्ता डॉ॰ उदय नारायण तिवारी के निर्देश के अनुसार सदल मिश्र के संबंध में अध्ययन करुँ। इससे सदल मिश्र के प्राय: सर्व सम्मति से गद्य शैली के आद्य प्रतिष्ठापक होने का प्रमाण उपलब्ध करुँ।

श्री आर॰ आर॰ दिवाकर Bihar through the Ages के संपादक थे, उन्होंने उस पुस्तक में हिन्दी साहित्य पर भूमिका लिखी है। वह बहुत ही जिज्ञासा से भरपूर है। उन्होंने उस समय ओरिएंट लॉगमैन्स कलकत्ता में लिखते हुए उद्घोषित किया है कि १९वीं शताब्दी के प्रारंभ में सदल मिश्र ने लल्लूलाल की तुलना में अधिक परिमार्जित एवं सुगठित गद्य लिखा।

मैं अपने इस ग्रंथ में इसी बात के ऊपर विचार करने के लिए राँची विश्वविद्यालय के डॉ॰ दिनेश्वरजी की सलाह पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन विभागाध्यक्ष डॉ॰ रघुवंश से मिला। डॉ॰ रघुवंश ने भाषा विज्ञान के अध्ययन के संबंध में डॉ॰ उदय नारायण तिवारी के पास भेजा। डॉ॰ तिवारीजी ने मुझे यह सलाह दी कि हमें अपना अध्ययन सदल मिश्र की कृतियों पर करना चाहिए। मैं इस कार्य में लग गया। डॉ॰ त्रिभुवन ओझा जी ने भी इसमें भरपूर सहायता दी।

सदल मिश्र पर कोई विस्तृत ग्रंथ न मिलने से मेरे सामने कठिनाई तो आयी लेकिन फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता से संबंधित भाषा नीति एवं खड़ीबोली के नामकरण के श्रेय के अधिकार के संबंध में निर्णय लेने में श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार के इस कालखंड से संबंधित एवं प्रकाशित शोध प्रबंध से बहुत सहायता मिली है।

प्रयाग के जिन भाषा एवं साहित्य मनीषियों, शुभेच्छु बंधुओं एवं सहयोगियों ने इस कार्य में येन-केन-प्रकारेण मुझे प्रोत्साहित किया है उनमें डॉ॰ हरदेव बाहरी, डॉ॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, डॉ॰ माता बदल जायसवाल, डॉ॰ ब्रजेश्वर वर्मा, डॉ॰ रामकुमार वर्मा एवं स्वामी सत्यप्रकाश तथा मेरे साथी डॉ॰ रमेश तिवारी एवं डॉ॰ उदय नारायण राय के नाम भी उल्लेखनीय है। डॉ॰ फादर कामिल बुल्के से मेरी भेंट उनके शब्दों में उनके 'मायके' इलाहाबाद में ही होती रही है। मैं इन सभी के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। इस कार्य में डॉ॰ फादर मेथ्युवेच्चूर का सहयोग एक सच्चे भाई के रुप में मिला है। मैं इस अवसर पर बिहार के मुर्धन्य कवि एवं साहित्यकार (पितृवत्) कविवर राम दयाल पाण्डेय को भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ जिनकी प्रेरणा से मैं अपने भीतर हिन्दी सेवा का आत्मविश्वास जगा सका हूँ।

इस ग्रंथ में सदल मिश्र तथा उनके स[illegible]कालीन सहयोगियों को भी ध्यान में रखते हुए उनके जीवन, ईस्ट इंडिया कंपनी एवं फोर्ट विलियम कॉलेज, सदल मिश्र से पूर्व गद्य की स्थिति, लिपि एवं वर्तनी,

शब्द चयन, व्याकरणिक कोटि एवं संज्ञा, पदबंध एवं वाक्य, अनुवाद एवं शैलीखंड पर विशद रुप से प्रचार करने के बाद यह सिद्ध किया गया है कि "खड़ीबोली हिन्दी की सच्ची सेवा का जो कार्य हिन्दी नवयुग के अरुणोदय सदल मिश्र द्वारा कलकत्ते में प्रारंभ किया गया उसे वहाँ से क्रमश: काशी के महान हिन्दी सेवी भारतेन्दु ने अपनाया। गंगासागर से संगम स्थल तक हिन्दी गंगा के इस विकास कथा को आगे ले जाने वाले अनेक सदल मिश्र, भारतेन्दु एवं निराला जैसे नि:स्वार्थ, उदार, रसविद्ध कवियों एवं लेखकों की अभी प्रतीक्षा है।" यह उक्ति डॉ॰ उदय नारायण तिवारी की है।

आज हिन्दी के आद्य गद्य लेखक सदल मिश्र ग्रंथ को प्रकाश में लाने का जो उत्तरदायित्व एवं भार हिन्दुस्तानी अकादमी ने दिखाया है उसके लिए मैं उसके अध्यक्ष श्री हरि मोहन मालवीयजी का आजीवन कृतज्ञ रहूँगा। मालवीयजी ने इस ग्रंथ को सम्बद्ध एवं आकर्षक रुप में प्रकाशित करने के लिए अपने जिन सहायोगियों की सहायता ली है उनके कृतज्ञता को भी मैं हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करता हूँ। उनमें श्री ईश्वर शरण एवं श्रीमती ज्योर्तिमयी जी है। इस ग्रंथ के संपादन के प्रकाशन में हमारे परिवार के दोनों पुत्र काशीनाथ पाण्डेय और संजय कुमार पाण्डेय तथा जामाता राधेश्याम दुबे का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। मैं इन सब को अपना आर्शीवाद देता हूँ। भाई सिद्धिनाथ जी को बधाई।

अंत में मैं इस ग्रंथ में ज्ञाताज्ञात भूलों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हुए विद्वान पाठकों से क्षमा एवं मार्गदर्शन की आशा करता हूँ।

नागेन्द्रनाथ पाण्डेय

८३ केनिलवर्थ,
पेडर रोड,
मुंबई

अनुक्रमणिका

फ़ोर्ट विलियम कॉलिज के पुस्तकालय की मोहर

गिलक्राइस्ट के स्वाक्षर

'नासिकेतोपाख्यान के प्रारंभ में'

सदल मिश्र ने आदर पूर्ण गिलक्राइस्ट अथवा गिलकृस्ट का उल्लेख किया है। अतएव उनका हस्ताक्षर तथा जिस पुस्तकालय में सदल मिश्र ने अध्ययन किया था उसकी मोहर डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय की पुस्तक 'फोर्ट विलियम कालेज' से साभार प्राप्त कर प्रकाशित की जा रही है।

सदल मिश्र का वंश-वृक्ष

कृष्णदेवमिश्र

वंशगोपाल मिश्र   रत्नदेव मिश्र (ला०)   देवनारायण मिश्र   शुकदेव मिश्र

रामचन्द्र मिश्र   भरत मिश्र   लक्ष्मण मिश्र

धृजमणि (धैर्यमणि) मिश्र   कृष्ण मिश्र   नन्दमणि मिश्र

बदल मिश्र   सदल मिश्र (दो पत्नियाँ थीं, ऐसा कहा जाता है)   सीता (सीताराम) मिश्र

गोपाल मिश्र   मोहन मिश्र   हरि मिश्र   शुभंकर मिश्र

मेधमणि मिश्र   बृजमणि मिश्र   नाथ मिश्र   अनुराग मिश्र (ऋतुराज मिश्र)   रघुनंदन मिश्र   आत्मानंद मिश्र   नित्यानंद मिश्र

श्यामा मिश्र

अर्जुन मिश्र   चक्रपाणि मिश्र

दीनबंधु मिश्र   लालजीमिश्र   छोटाई मिश्र(?) (सत्यनारायण मिश्र)

हनुमान मिश्र   कुनकुन मिश्र   (खुनखुन मिश्र)   रामावतार मिश्र   वाणीपति मिश्र   विद्यापति मिश्र   श्रीवल मिश्र

मानिक मिश्र (मिनिक मिश्र)   देवचंद मिश्र   रामेश्वरमिश्र   व्यास मिश्र   विशाल मिश्र   लक्ष्मीपति मिश्र

मुसन मिश्र (? ला०)   नारायणदत्त मिश्र (ला०)

भगवती मिश्र   वेणी मिश्र   राजा मिश्र   धर्म (धर्मदेव मिश्र)

जुगेश्वर मिश्र   सिंधु मिश्र   सिद्धनाथ मिश्र   (निर्मल कुमार मिश्र)   (केशव कुमार मिश्र)

१.(क) सदल मिश्र का जो वंश-वृक्ष श्यामसुन्दर दास ने दिया है वह अपूर्ण है। Great Men of Shahabad में सदल मिश्र पर एक लेख है जो बहुत बाद में लिखा गया था और जिसमे अधिक प्रामाणिक तथ्यों की रचना की जा सकती थी, किन्तु इनमें जो वंश-वृक्ष है, वह तथा अनेक अन्य बातें भ्रामक और निराधार है। प्रस्तुत वंश-वृक्ष श्रीतारिणी मिश्र, उर्फ बच्चा, के पुत्र श्रीगंगाधर, उर्फ लल्लन आरा के सौजन्य से तथा पंडित बटुकदेव मिश्र पटना, की सहायता से प्राप्त हुआ है दोनों ही सज्जन सदल मिश्र के वंश-वृक्ष की शाखाओं के पुष्प -फल है। इस वंश वृक्ष की उन्ही शाखाओं को उद्धृत किया गया है, जिनमे सदल मिश्र का निकट सम्बन्ध है। पूरे वंशवृक्ष की प्रतिलिपि पं॰ बटुक देव मिश्र के पास अब भी सुरक्षित है। कुछ नाम स्पष्ट नहीं है, उनके आगे प्रश्न चिह्न है। अपूर्ण नाम, दूसरे स्रोतों से कोष्ठकों में पूर्ण रुप से दिये गये हैं

(ख) शाकद्वीपीय ब्राह्मण; शाहाबाद जिलान्तर्गत ध्रुवडीहा ग्राम-निवासी, बाद में भदवर चले गये; हसनपुर ग्राम भदवर के जमींदार से प्राप्त बहुत दिनों तक हसनपुरा में इनके वंशज रहे; इनके वंशज कुवँर सिंह के समय में आरा के मिश्रटोला मुहल्ले में जा बसे। द्रष्टव्य, चंद्रावती अथवा नासिकेतोपाख्यान की भूमिका, श्यामसुन्दर दास।

२. मूल वंश के वृक्ष में ला॰= लावल्द उनके नामों के आगे लिखा हुआ है।

३. इनके पास सुरक्षित, इनके पूर्वज सदल मिश्र का दान-पत्र भूमिका में प्रतिमुद्रित है। यह मुझे श्री पाण्डेय नर्मदेश्वर सहाय, एडवोकेट पटना, के सौजन्य से प्रतिमुद्रणार्थ प्राप्त हुआ था।

सदल मिश्र के पिता एवं वंशावृत्त

(श्री निर्मल कुमार मिश्र के कथनानुसार संशोधित)

व्यक्तित्व
के
आयाम

(अध्याय -एक)

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने अपनी कृतियों को ही प्रधानता दी और उनके संदर्भ में अपना परिचय देना आवश्यक नहीं समझा। महाकवि कालिदास से लेकर गोस्वामी तुलसीदास जैसे महान तपस्वियों की जीवन कथा का आधार किवदन्तियां या उनकी कृतियों में वर्णित प्रासंगिक उक्तियां ही रही हैं, उनकी स्वलिखित आत्मकथा नहीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध से ही आधुनिक अथवा गद्यकाल का आरम्भ होता है। आचार्य पं॰ रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार हिन्दी साहित्येतिहास के उत्तरमध्य अथवा रीतिकाल की अंतिम सीमा सन् १८४३ ई॰ है (सं॰ ९०० वि॰) उनके मतानुसार हिन्दी साहित्य के आधुनिक अथवा मध्यकाल का आरंभ उक्त ईसवी से ही होता है। लेकिन हिन्दी गद्य के विकास के आरंभिक प्रयासों का मूल्यांकन करने पर यह समय फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के समय अर्थात् ईसवी १८०० से ही माना जा सकता है। हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक चार लेखकों श्री इंशाअल्ला खां, मुंशी सदासुख लाल, लल्लू लाल एवं पं॰ सदल मिश्र का उल्लेख हिन्दी साहित्य के सभी इतिहासकारों ने किया है। इन लेखकों की कृतियों के संबंध में कुछ शोध ग्रंथ भी प्रस्तुत किये गये हैं, लेकिन इनके जीवन वृत्त के संबंध में विस्तृत उल्लेख शायद ही कहीं मिलता हैं इस काल के मुख्य आलोचक लेखक पं॰ सदल मिश्र के विषय में भी स्थिति लगभग यही है। पं॰ सदल मिश्र के समकालीन सहयोगियों की सीमा निश्चित करना भी एक कठिन कार्य है। पं॰ सदल मिश्र बिहार के निवासी थे और वे कथावाचक के रूप में कलकत्ता आये थे। वहां वे कुछ वर्षों तक फोर्ट विलियम कालेज से संबद्ध रहे। लल्लू लाल के समकालीन सहयोगी थे, इसमें किंचित् संदेह नहीं। जान गिलक्राइस्ट के निर्देशन में संस्कृत के ग्रंथों का खड़ी बोली में उनके अनुवाद कार्य से यह सिद्ध होता है कि वे गिलक्राइस्ट के सहयोगी थे। पं॰ सदल मिश्र की भांति कविवर श्री लल्लू लाल भी कुछ ग्रंथों की रचना जॉन गिलक्राइस्ट के निर्देशन में ही कर रहे थे।

इसी प्रकार ईसाई पादरी एवं भारतीय भाषाओं को सीखने की दिशा में अथक प्रयत्न एवं परिश्रम करने वाले प्रथम व्यक्ति विलियम कैरी की गणना तत्कालीन महत्वपूर्ण भाषा साधकों में की जा सकती है। यह कहना या प्रमाणित करना कठिन है कि वे पं॰ सदल मिश्र के सहयोगी थे, लेकिन यह तो माना ही जा सकता है कि दोनों ही व्यक्ति समकालीन अनुवादक थे। इस प्रसंग में अनुवाद के सिद्धांत एवं अनुवादक के रूप में पं॰ सदल मिश्र शीर्षक से तेरहवें अध्याय में विचार किया गया है और समकालीन अनुवादक के रूप में इनकी कृतियों का मूल्यांकन भी किया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कलकत्ता में हिन्दी, हिन्दुई या खड़ी बोली की कृतियों की रचना में निर्देशक, लेखक या अनुवादक के रूप में योगदान करने वाले व्यक्तियों में जो चार नाम आते हैं वे हैं (१) पं० सदल मिश्र (२) कविवर श्री लल्लू लाल (३) विलियम कैरी (४) जान गिलक्राइस्ट। इंशा अल्ला खां एवं मुंशी सदासुख लाल का समय सदल मिश्र से पहले है अतः इस पुस्तक में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विस्तार से विचार नहीं किया गया है। एक सूची के अनुसार तारिणीचरण मिश्र,मौलवी अमानतउल्लाह, मीर बहादुर अली, मीर शेरे अफसोस, और गुलाम अशरफ सदल मिश्र के साथ अनुवाद कार्य कर रहे थे। उन अनुवादकों में से तारिणीचरण मित्र बंगला से और मौलवी अमानत उल्ला अरबी से अनुवाद का कार्य करते थे। लोचन राम पंडित (१८११), गंगाप्रसाद शुक्ल (१८२३-१८२७) और ख्याली राम (१८२७-१८२९) पं० महानन्द, मथुरा नाथ शुक्ल एवं लल्लू लाल के भाई दयासागर के नाम भी ऐसे भाषा पंडितों में उल्लेखनीय हैं।

सदल मिश्र

बिहार के हिन्दी सेवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के ऊपर शोध करने वाले एवं उसे प्रकाश में लाने वाले तपस्वियों में आचार्य शिवपूजन सहाय का नाम सर्वोपरि है। ①सदल मिश्र के व्यक्तित्व को सम्यक् प्रकाश में लाने का श्रेय भी आचार्य सहाय जी को ही दिया जा सकता है। उनके तपस्वरुप बिहार - राष्ट्र भाषा परिषद एवं अपने श्वसुर की साधना को मूर्त रूप देने के लिए अपना परिश्रम एवं उद्यम का योगदान करने वाले उनके दामाद श्री वीरेन्द्र नारायण के अथक प्रयास का ही परिणाम है कि "सदल मिश्र ग्रंथावली" प्रकाश मे आयी। सदल मिश्र के व्यक्तित्व के विषय में ग्रंन्थावली के संपादक पं० नलिन विलोचन शर्मा ने भूमिका में पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है। मैंने उसी सामग्री से संबंधित अनेक प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए उनकी वंशावली के जीवित सदस्यों से मिलना आवश्यक समझा था। इस क्रम में मेरी भेट ग्रंथावली में दी गई "वंश वृक्ष एवं जीवन वृत्त तालिका ②में उल्लिखित श्री निर्मलकुमार मिश्र से हुई। (देखें संलग्न तालिका) श्री निर्मल कुमार मिश्र जी ने इस बात का रहस्योद्घाटन किया कि पं० सदल मिश्र निःसंतान नहीं थे। उल्लेखनीय है कि सदल मिश्र ग्रंथावली एवं श्यामसुंदर दास के संपादकत्व में प्रकाशित "चन्द्रावती" दोनों ही ग्रंथों की भूमिका में उन्हें नि:संतान बताया गया है। उन्होने यह बताया कि उक्त वंशवृक्ष के नन्दमणि मिश्र के तीन पुत्र (१) बदल मिश्र (२) सदल मिश्र (३) सीता मिश्र बताये गये हैं। जबकि उनके दो पुत्र बदल मिश्र एवं सदल मिश्र थे।। उनके अनुसार सदल मिश्र के एक मात्र पुत्र सीताराम मिश्र (सीता मिश्र) थे, जिनके दो पुत्र - श्री हरि मिश्र एवं श्री शुभंकर मिश्र की वंशावली अभी तक चल रही है। श्री निर्मलकुमार मिश्र विवाहादि के अवसरों पर गोत्राचार में ही सदल मिश्र के पुत्र पौत्र परपौत्र आदि के रूप में क्रमशः सीता मिश्र, शुभंकर मिश्र व रघुनंदन मिश्र आदि के नाम आते हैं उनका कहना था कि सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रकाशित वंश तालिका का विरोध उनके वंश के श्री राजा मिश्र भी करते रहे। उनके विचार से यह स्पष्ट है कि नाम-ध्वनि के आधार पर भी बदल व सदल दो भाई होने की बात ही मान्य होगी।

इस बात की सत्यता की प्रमाणिकता की खोज में अधिक न पड़, हम इस प्रसंग में श्री सदल

---

① हिन्दी साहित्य और बिहार - वक्तव्य (क)

② सदल मिश्र ग्रंथावली- भूमिका

सदल मिश्र के पूर्वज एवं वंशानुक्रम

लक्ष्मण मिश्र

ध्रुवमणि मिश्र | कृष्ण मिश्र | नन्दमणि मिश्र

बदल मिश्र | सदल मिश्र (दो पत्नियाँ थी) | सीता (सीताराम मिश्र)

मेधमणि मिश्र | वृजमणि मिश्र | नाथ मिश्र | गोपाल मिश्र | मोहन मिश्र | हरि मिश्र | शुंभंकर मिश्र

मानिक मिश्र | देवचन्द मिश्र | रामेश्वर मिश्र

व्यास मिश्र | विशाल मिश्र

मुलन मिश्र | नारायण दत्त मिश्र

अर्जुन मिश्र

अनुराग मिश्र (रूतरोज मिश्र)

रघुनन्दन मिश्र | आत्मानन्द मिश्र | नित्यानन्द मिश्र

श्यामा मिश्र

दीनबन्धु मिश्र | लालजी मिश्र | छोटाई मिश्र

चक्रपाणि मिश्र

भगवती मिश्र | वेणी मिश्र | राजा मिश्र | धर्मू मिश्र

रामावतार मिश्र | वाणीपति मिश्र | विद्या पति मिश्र | श्रीबल मिश्र

निर्मल कुमार मिश्र | वेशव कुमार मिश्र

हनुमान मिश्र | कुनकुन मिश्र | खुनखुन मिश्र

लक्ष्मी कान्त मिश्र

जुगेश्वर मिश्र | सिंधु मिश्र | सिद्धनाथ मिश्र

मिश्र द्वारा लिखित दानपत्र की समीक्षा करना अधिक समीचीन समझते हैं। पं० सदल मिश्र ने मेधमणि मिश्र एवं मोहन मिश्र के बीच पैतृक सम्पत्ति को दो भागों में बांटा है। ऐसा प्रतीत होता है कि बदल मिश्र एवं सीता मिश्र दोनो व्यक्तियों का देहान्त सदल मिश्र के जीवन काल में ही हो गया था और उस समय तक उनका परिवार संयुक्त था। फलतः संयुक्त परिवार होने के कारण अपना बुढ़ापा आते देख, सदल मिश्र ने अपने भाई के तीनों पुत्र श्री मेधमणि मिश्र, बृजमोहन मिश्र एवं नाथ मिश्र तथा अपने पुत्र (तथाकथित) या अनुज सीता राम मिश्र के तीनों पुत्र श्री मोहन मिश्र, हरि मिश्र एवं शुभंकर मिश्र के बीच अचल सम्पत्ति का बंटवारा कर दिया होगा। उन्होने यह भी लिख दिया कि "हमारा दुनो वेगति का पाछा जे कुछ हमार माल मताय ठहरे जो देना पावना हमार ठहरे तह सम में आधा मेधमणि तीनो भाई औ आधा मोहन तीनो भाई बराबर बाँट लेहि कवनो बात के झगरा तकरार न करे" अर्थात उनके और उनकी पत्नी के मरणोपरान्त शेष सभी सम्पत्ति को दो भागों में बाँट कर मोहन तीनों भाई एवं मेधमणि तीनों भाई ले लें।"

इस दान पत्र के विश्लेषण से इस बात की संभावना अधिक बढ़ जाती है कि सदल मिश्र संयुक्त परिवार के प्रधान सदस्य थे और उन्हें इस बात की शंका रही हो कि संभवतः उनके तीनों पौत्र उनके भतीजे मेधमणि मिश्र वगैरह को इस तर्क पर हिस्सा न दे कि अधिकांश सम्पत्ति (घर, बगीचा आदि) उनके दादा श्री सदल मिश्र की खरीद है। श्री सदल मिश्र को आशंका रही होगी कि उनके पौत्र उनके बड़े भाई के पुत्रों से इस आधार पर झंझट कर सकते हैं । यही कारण है कि उन्होंने अपने जीवन-काल में ही बंटवारा करके संभावित झगड़े को रोका। यदि पं० सदल मिश्र यह बँटवारा नहीं करते तो उन्हें यह आशंका थी कि उनके पौत्र उनकी खरीद की भारी संपत्ति में मेधमणि मिश्र वगैरह को कानून की दृष्टि से भागी नहीं बनने देते जो संयुक्त परिवार होने के कारण न्यायोचित नही होता। इस दृष्टि से विचार करने पर श्री निर्मल मिश्र के इस कथन को बल मिलता है कि सदल मिश्र के पुत्र सीताराम मिश्र रहें होंगे। सदल मिश्र ग्रंथावली की भूमिका (पृ० ६) की पाद टिप्पणी में आचार्य शिवपूजन सहाय के संस्मरण के प्रसंग में भूमिका लेखक पं० नलिन विलोचन शर्मा ने भी लिखा है कि "आचार्य जी के संस्मरण से ऐसा प्रतीत होता है कि रघुनंदन मिश्र के अपने प्रपितामह सदल मिश्र थे।" पं० निर्मलकुमार मिश्र ने इसी बात पर जोर दिया है कि वे सदल मिश्र के प्रपौत्र के पौत्र हैं।

सदल मिश्र का जो जीवन-वृत्त सदल-मिश्र ग्रंथावली में दिया हुआ है, उसको आधार रूप में मानते हुए उनके संबंध में उठने वाले कतिपय महत्वपूर्ण प्रश्नों के समाधान के लिए वे ईसवी १९७३ में ही श्री निर्मल कुमार मिश्र जी से मिला था। जब इनसे मेरी प्रथम मुलाकात हुई तो उसी समय में उनके आतिथ्य एवं सौम्य व्यवहार से प्रभावित हो उठा था। बिहार के शाहाबाद जिले (अब भोजपुर) के मुख्यालय आरा के मिश्र टोला मुहल्ले में निर्मल कुमार मिश्र का पैतृक मकान पं० सदल मिश्र की स्मृति को संजोये हुआ है। मिश्र टोला मुहल्ला जेल रोड आरा के पास की एक गली में है, जिसमें कई मकान मिश्र वंश के ही हैं। श्री निर्मल कुमार मिश्र से मिलने के लिए मिश्रटोला मुहल्ले की उस गली को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मै भी उस मुहल्ले के किसी मकान का निवासी रहा हूँ। तब तक मुझे स्मरण हो आया कि जब मेरे मामा आरा कचहरी में सन १९४० के आस पास पेशकार थे, तो उनका निवास मिश्रटोला मुहल्ले में ही था और लगभग दस ग्यारह वर्ष के बालक के रूप में अपनी माँ के साथ कभी-कभी वहाँ आता एवं रुकता था। जब मैने श्री निर्मलकुमार मिश्र एवं उनके परिवार के अन्य सदस्यों के बीच अपना यह परिचय दिया तो उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि मै भी उनके ही परिवार का एक सदस्य हूँ फिर तो उन सभी के साथ मेरी सभी बातें निस्संकोच पूर्ण वातावरण में ही हुई।

श्री निर्मलकुमार मिश्र जी से मेरी दूसरी भेंट ३१ मई, ७९ को हुई। श्री मिश्र जी को यह जानकर बहुत ही प्रसन्नता हुई कि उनके पूर्वज एवं हिन्दी गद्य के आरम्भिक ग्रंथकार श्री सदल मिश्र से संबधित मेरा शोध प्रबंध पूरा हो रहा है। श्री मिश्र जी एक भगवत प्रेमी संकीर्तनकार हैं और अखिल भारतीय रुपकला हरिनाम यश-कीर्तन, अयोध्या के सिद्ध कीर्तनकार है। और वे वहाँ से प्रकाशित पत्रिका संकीर्तन संदेश के सम्पादक भी रह चुके हैं। मिश्र जी अपने कीर्तन संकलन एवं अन्य संबंधित रचनाओं का प्रकाशन "सदल साहित्य प्रकाशन" आरा के तत्वावधान में करते हैं। उन्होंने अपनी एक ऐसी ही पुस्तक "संकीर्तन पदावली" मुझे सस्नेह भेंट भी की। संकीर्तन माला के तृतीय पुष्प उक्त पुस्तक में हिन्दी एवं भोजपुरी के सुमधुर भजनों का संग्रह है। श्री मिश्र जी के घर की दीवार पर सुन्दर एवं बड़े अक्षरों में राम नाम लिखे देखकर उस परिवार के वंशानुगत भगवद्भक्ति की हल्की झाँकी मिल जाती है। परिवार के सभी सदस्यों के व्यवहार में विनम्रता एवं शालीनता स्वभावत: झलकती हैं।

श्री मिश्र जी ने अपने निवास स्थान के बारे में कुछ मूल्यवान एवं रोचक सूचनाएं दीं। उन्होने बताया कि मिश्र टोला मुहल्ले में श्री सदल मिश्र द्वारा निर्मित मकान आज भी उनकी याद दिला रहे हैं। श्री निर्मल जिस मकान में रहते हैं, वह आरम्भिक गद्य लेखक श्री सदल मिश्र का निवास स्थान था। इस बात के साक्ष्य में उन्होंने बताया कि घर के अंदर चौखुटा (चतुर्भुजाकार) कुंआ उन्ही का खुदवाया हुआ हैं यह कुंआ कम स्थान लेने की दृष्टि से ही चौखुटा बनवाया गया था। लेकिन मिश्र टोला मुहल्ले में उन्हीं का खुदवाया दूसरा कुंआ बड़ा है । मकान में प्रयुक्त लाहौरी (लाखौरी) ईंटों (छोटे आकार की ईंटों) से उनकी प्राचीनता की बात भी प्रमाणित हो जाती है।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के प्रसिद्ध सेनानी बाबू कुंअर सिंह के उनके समकालीन एवं निकट होने की बात भी इस मकान से जुड़ी है। यह उल्लेखनीय है कि पं० सदल मिश्र का देहांत सन् १८४६-४७ में हुआ था और वे सन् १८३१ ई० से पहले कलकत्ते से वापस आ चुके थे। मकान बनने की बात इससे पहले की हो सकती है। श्री मिश्र जी ने बताया कि उनके पितामह श्री रघुनंदन मिश्र उन्हें सदल मिश्र के बारे में जो बातें बतायी उनमें बाबू कुंअर सिंह एवं मिश्र टोला मुहल्ले के उक्त मकान के निर्माण से सम्बन्धित एक प्रसंग बड़ा ही रोचक है। वह प्रसंग इस प्रकार है - श्री सदल मिश्र जी के मकान के एक बरामदे के खम्भे को खड़ा करने के लिए कुछ बढ़ई काम कर रहे थे। उस जमाने की यह प्रथा थी कि जब भी जमींदार को किसी मजदूर की जरूरत होगी, तो मजदूर सूचना पाते ही किसी भी दूसरे व्यक्ति का काम अधूरा छोड़कर जमींदार की सेवा में उपस्थिति होता था। अतः ऐसी ही स्थिति सदल मिश्र जी के मकान में काम कर रहे बढ़ई को बुलाने के लिए खोजते हुए बाबू कुंवर सिंह के नौकर आ गये और वे बढ़ई को अपने साथ ले गये। जब पं० सदल मिश्र ने बाबू साहब को यह सूचना दी कि बढ़ई उनके खम्भे का काम छुड़कार लाये गये हैं, तो बाबू कुंवर सिंह ने अत्यंत विनम्रता पूर्वक अपने नौकरों को आदेश दिया कि बढ़ई को पंडित जी के काम पर वापिस भेजा जाय।

बाबू कुंअर सिंह से उनके सौहार्द पूर्ण संबंध के साक्ष्य के लिए यह भी बताना आवश्यक है कि आरा में मिश्रटोला मुहल्ला बाबू कुंवर सिंह की "जगदीशपुर कोठी" से चन्द फलांग की दूरी पर ही स्थित है। बाबू कुंवर सिंह की कोठी जिस मुहल्ले में थी, उसका नाम बाबू बाजार है। इस संबंध में श्री निर्मल जी ने यह भी बताया कि मिश्र टोला मुहल्ले के वार्ड के मकानों पर म्युनिसिपल टैक्स के अलावा अन्य टैक्स नही लगते, आरा नगर के बाकी सभी मुहल्लों पर आज भी म्युनिसिपल टैक्स के अतिरिक्त अन्य कई टैक्स लगते हैं। लेकिन बाबू कुंअर सिंह के आदेश से इस मुहल्ले पर उस समय कोई टैक्स नही लगने का कारण म्युनिसिपल टैक्स के अलावा कोई अन्य टैक्स आज नहीं लगता। यह भी पंडित जी

के ऊपर बाबू कुंवर सिंह की कृपा का एक प्रमाण है।

इनके उक्त निवास स्थान पर विद्यार्थियों को विद्यादान का जो कार्य पंडित जी के समय होता था, वह थोड़ा बहुत रूप में आज तक जारी है। आज भी द्वार पर उनके छोटा-मोटा विद्यालय चलता है। उपर्युक्त तथ्यों से यह परिलक्षित होता है कि पं० सदल मिश्र को अपने सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बड़ा ही आदरणीय स्थान प्राप्त था। पं० सदल मिश्र के व्यक्तित्व के बारे में श्री बजरंग वर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना को आचार्य शिवपूजन सहाय ने अपने कुछ संग्रहीत संस्मरण सुनाये थे और श्री वर्मा ने उनका उपयोग आकाशवाणी से प्रसारित अपनी एक वार्ता में किया था। उस वार्ता की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है-①

"जो लोग पं० रघुनन्दन मिश्र के निवास स्थान पर जाते थे, उनके पूछने पर वे अपने दादाजी अर्थात पं० सदल मिश्र के विषय में सुनी सुनाई बातें कहानी की तरह कहा करते थे। जैसे पंडित जी के पहनावे के विषय में उनका कहाना था कि वे सिर पर बड़ा साफा, बगलबंदी और घुटने के ऊपर धोती पहनते थे - वैसी धोती जिसे कच्छा कहते हैं। जनेऊ केवल कुमारी कन्याओं के काते हुए सूत से स्वयं बनाकर पहनते थे। गले में बराबर पूजा की माला लटकती रहती थी। सोने के समय निकालकर जपते थे। वे प्रायः जीवन भर स्वयंपाकी रहे । भोजन में खिचड़ी और पुए के बड़े शौकीन थे। नौकर उन्होने कभी रखा ही नहीं। जब दूसरों के घर जाते तो नौकरों के मांजने पर भी बरतनों का व्यवहार उन्हें फिर धोये बिना नहीं करते थे। कम से कम सेर आध सेर मिट्टी ले तो हाथ साफ करते थे। एक लोटकी (छोटा लोटा) से ढ़के हुए एक लोटे में भरा पानी सदा अपने साथ लटकाये फिरते। जब कहीं बैठते, तो पहले पानी छिड़क कर लोटा वहीं रखते और तब बैठते । अपना बिस्तर स्वयं लगाते और उस पर किसी को बैठने नहीं देते। सोने के समय अपना लोटा खाट पर रखकर ही सोते। प्रातः काल ईशावास्योपनिषद् और अध्यात्म रामायण का पाठ करना वे कभी न भूलते। पूजा के बाद मैदान में चीटियों को सूजी और शक्कर बांटना उनका नित्य का काम था। गाय और कुत्ते उन्हें बहुत प्रिय थे। घर छोटा होने के कारण गाय बंधती तो दूसरे के यहां थी, किन्तु उसकी सेवा के लिए नित्य अवकाश निकालकर वे वहां जाते थे । गो सेवा उन्हें इतनी प्रिय थी कि कलकत्ता में भी उन्होंने एक गाय पाल रखी थी। स्वभाव के बड़े ही विनम्र थे और बोलते बहुत कम थे। अधिक समय मौन ही रहते। बराबर कुछ न कुछ लिखते रहते। मिट्टी की एक छोटी सी दवात और कील की कलम उनका साथ कभी नहीं छोड़ती थी।

इस विवरण में पं० सदल मिश्र की सादगी, धर्मपरायणता, विद्याप्रेम, विनम्रता, गोसेवा भाव, दयालुता, स्वावलंबन, मितभाषिता एवं शुचिता का पता चलता है। उनके व्यक्तित्व की उन विशेषताओं का ही परिणाम था कि वे अपने युग में हिन्दी गद्य के एक शैलीकार हो सके।

पं० सदल मिश्र का जन्म अनुमानतः १७६७-६८ ई० में हुआ था। उनके पिता का नाम पं० नन्दमणि मिश्र था। सदल मिश्र ग्रंथावली में दी गई वंशावली का पाद टिप्पणी में बताया गया है कि वे शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। श्री निर्मलकुमार मिश्र से भी इस बात की पुष्टि हुई। उन्होंने ग्रंथावली में उल्लिखित इस बात की भी पुष्टि की कि उनके पूर्वज इस समय रोहतास जिले में स्थित ध्रुवडीहा ग्राम के थे, आरा से जिसकी दूरी लगभग पचास मील होगी। ग्रंथावली में यह भी बताया गया है कि उनके पूर्वज आरा

---

① सदल मिश्र ग्रंथावली (भूमिका पेज ६)

से थोड़ी दूर स्थित हसनपुर ग्राम में आ बसे थे। हसनपुर ग्राम इनके पूर्वजों को भदवर के जमींदार से प्राप्त हुआ था। लेकिन बाद में बाबू कुंवर सिंह के समय में इनके पूर्वज (पिता आदि) आरा के एक मुहल्ले में जा बसे, जो मिश्रटोला कहलाने लगा। इन तथ्यों का उल्लेख श्री श्यामसुन्दर दास जी ने चन्द्रावती अथवा नासिकेतोपाख्यान की भूमिका में भी किया है।

श्री सदल मिश्र के आरम्भिक जीवन के विषय में आज उनके वंशजों में जो कहानी चलती है, उससे यह प्रमाणित होता है कि पंडित जी कितने-कितने स्वाभिमानी एवं संकल्प के धनी थे। श्री निर्मल जी ने बताया कि जैसा कि उनकी दादी बताया करती थी, पंडित जी का विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था और उनकी प्राथमिक शिक्षा आरा में ही हुई। बाद में वे ब्राह्मण परिवार की तत्कालीन परंपरा के अनुसार संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्ति के निमित्त काशी भेजे गये। काशी से लौटने के बाद संस्कृत में उनकी योग्यता एवं वाक् पटुता की ख्याति आस-पास में फैली। उस समय डुमरांव नरेश के यहां पंडितो के शास्त्रार्थ आमंत्रित किये जाते थे। श्री निर्मल जी ने अपनी दादी के मुख सुनी एक बात यह भी बतायी कि काशी से लौटने के पूर्व ही पंडित जी की पत्नी का देहान्त हो गया था, अतः उनका दूसरा विवाह भी सम्पन्न हुआ। और संभवतः उनके (श्री निर्मल मिश्र के अनुसार) पुत्र श्री सीताराम मिश्र उनकी दूसरी पत्नी की ही संतान थे।

पता नहीं उनके घर की आर्थिक दशा उस समय कैसी थी, लेकिन उनके परदेश गमन के कारण पर प्रकाश डालते हुए जो सूचना भाई निर्मल जी ने दी, उससे यही पता चलता हैकि पं० सदल मिश्र का आर्थिक जीवन अपनी विद्वता एवं निर्धनता के लिए पुराणों में सुविख्यात ब्रह्मण सुदामा से ही अच्छा रहा होगा। पत्नी की प्रेरणा मधुर हो या कटु, सहृदय एवं स्वाभिमानी व्यक्तियों के मानस को उत्प्रेरित करती है।

उनके परिवार में बूढ़ी महिलाओं के मुख जो कहानी चलती है, उसके अनुसार एक बार पं० सदल मिश्र के मुहल्ले या घर में चूड़ी पहनाने वाली चूड़ीहारिन आयी। पं० सदल मिश्र की पत्नी की इस बात का स्वाभिमान था कि उनके पति पंडित हैं और वे धनार्जन में भी किसी से कम नहीं हैं। इनके मन में भी चूड़ियां पहनने की उत्कट इच्छा जगी। यद्यपि वे पति की कठिनाई समझती थीं, तथापि उन्हें यह तो विश्वास था कि उनके पास चूड़ियों के मूल्य भर के लिए कुछ तो पैसे होंगे ही। अतः उन्होंने एकान्त में बुलाकर अपने पति से चूड़ियां खरीदने के लिए पैसे का प्रस्ताव किया । लेकिन जब पंडित जी ने उसके लिए भी अपनी असमर्थता प्रकट की तो उनकी पत्नी अपना धैर्य खो बैठीं। उन्होने उसे आवेश में भोजपुरी की कुछ ऐसी व्यंगोक्तियों का प्रयोग किया कि पं० सदल मिश्र का स्वाभिमानी मन इस बात के लिए दृढ़ संकल्प ले बैठा कि वे धनार्जन के उद्देश्य से तत्काल बाहर जाएंगे।

उस समय श्री सदल मिश्र एक उदीयमान नवयुवक थे; उनकी उम्र २५ को छू रही थी। उस जमाने में न रेल थी; न मोटर । वे आरा से पैदल ही पटना के लिए चल पड़े। आरा से लगभग पन्द्रह मील की दूरी पर कोइलवर के पास नाव आदि से सोन नदी पार करने के बाद पुनः पचीसों मील पैदल चलकर पटना पहुंचे।

"सदल मिश्र ग्रंथावली" के भूमिका लेखक के अनुसार रघुनन्दन मिश्र के एक पुत्र राजा मिश्र ने जो १९४६ में जीवित थे। और आरा में रहते थे, यह सूचना दी थी कि सदल मिश्र संस्कृत के विद्वान

और कुशल अध्यापक के रूप में प्रसिद्ध थे। धनाभाव के कारण वे पटना गए। वहां एक समृद्ध जमींदार के आश्रय में वे रहने लगे और उन्हें पुराण सुनाया करते। पुराण वाचन के समय अन्य व्यक्ति भी उपस्थित होने लगे और पटना निवासी कुछ अंग्रेज भी आकृष्ट हुए। इनमें से एक सदल मिश्र के पांडित्य तथा साधु प्रकृति से इतना प्रभावित हुआ कि उसने मिश्र जी को कलकत्ता में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की अच्छे वेतन वाली तथा सम्मानपूर्ण नौकरी दिलाने का आश्वासन दिया और उन्हें कलकत्ता चलने को निमंत्रित किया।

इसी अंग्रेज सुहृद के माध्यम से सदल मिश्र गिलकृस्त (गिलक्राइस्ट) के सम्पर्क में आए और उन्हें फोर्ट विलियम कालेज में नियुक्ति मिली।

जॉन गिलक्राइस्ट भारत में १७८३ ई० में आए थे और १७९८ में ओरियंटल सेमिनरी की स्थापना हुई। सन् १८०० में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के साथ हिन्दुस्तानी विभाग के प्रधानाध्यापक के रूप में गिलकृस्त (गिलक्राइस्ट) की नियुक्ति की बात जुड़ी है। पं० सदल मिश्र की जीवन-झाँकी (वायोडाटा) को स०मि० ग्रंथावली में नीचे लिखे रूप में प्रस्तुत किया गया हैं -*

मुख्य घटनाएँ

१७६७-६८ ई० में अनुमानतः जन्म।

१७९१ - सदल मिश्र कलकत्ता गए (अवस्था-२४-२५वर्ष)

१८०० - फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना, हिन्दुस्तानी विभाग में प्रधानाध्यापक के रूप में गिलक्राइस्ट की नियुक्ति।

१८०३ - सदल मिश्र द्वारा चंद्रावती अथवा नासिकेतोपख्यान का संस्कृत से खड़ी बोली में अनुवाद।

१८०४ - १८०९ तक सदल मिश्र कालेज में विद्यमान।

१८०६ - गिलक्राइस्ट के स्थान पर माउंट के प्रधानाध्यापक के रूप में नियुक्ति; सदल मिश्र को अध्यात्म रामायण का खड़ी बोली में अनुवाद करने के लिए पुरस्कार।

१८०९ - हिन्दी और फारसी शब्द-सूची तैयार करने पर सदल मिश्र को पुरस्कार।

१८१० - "तुलसीदास के रामचरित मानस का एक संस्करण संशोधित करके छपवाया था। इस संस्करण की एक प्रति काशी - नगरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में है।"

१८३१ - (संवत १८८८ में) इन्होंने ११००० रूपये पर सिंगही गांव, वयगुलफा और हसनपुरा का ठीका लिया था।"

१८३६ - फोर्ट विलियम कालेज टूट गया। इसके पूर्व घर लौट गए -- ऐसा अनुमान

१८४७ - ४८ - ८० वर्ष के उम्र में मृत्यु ।

श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार① ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है कि हिन्दी गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कालेज ने जो योगदान किया उसमें जिन दो व्यक्तियों के नाम सर्वोपरि (आउटस्टेडिंग) हैं, वे हैं -- लल्लू लाल कवि और सदल मिश्र। दोनों ही व्यक्ति कालेज के प्रारम्भ से ही भाषा पंडित

---

* सदल मिश्र ग्रंथावली (पृष्ठ संख्या ८)

① प्रारम्भिक उन्नीसवी शताब्दी में हिन्दी गद्य साहित्य का विकास - डॉ. शारदा देवी वेदालंकार (पृष्ठ ५२)

के रूप में कालेज से संबद्ध रहे।

डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने अपनी "फोर्ट विलियम कालेज" नामक पुस्तक ①में इस संबंध में जो विवरण दिए हैं, उसके अनुसार फोर्ट विलियम कालेज में लल्लू लाल जी की सेवा सदल मिश्र की तुलना में अधिक नियमित रही। सदल मिश्र की सेवा वहां सर्टिफिकेट मुंशी के रूप में ही अधिक रही। डा० वार्ष्णेय ने मुझे अपनी व्यक्तिगत मुलाकात में भी यही बताया कि सदल मिश्र की सेवा लल्लू लाल कवि की सेवा की तुलना में बहुत ही कम रही। लल्लू लाल कवि द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या की तुलना में सदल मिश्र द्वारा अनुदित ग्रंथों की संख्या भी काफी कम है, और इससे भी यही प्रमाणित होता है। डा० वार्ष्णेय के अनुसार ९ मई, १८०४ को जेम्स मांउट ने कालेज कौसिल के मंत्री चार्ल्स राथमैन के नाम लिखे गए पत्र में हिन्दुस्तानी विभाग के लिए "भाषा" -मुंशी लल्लू लाल और सदल मिर पंडित की उपस्थिति अनावश्यक समझी। उनका यह पत्र कौसिल की ११ जून, १८०४ की बैठक में पेश हुआ और १ जुलाई, १८०४ में उन्हें वेतन मिलना बन्द हो गया। दूसरे शब्दों में वे कालेज से अलग कर दिए गए। किन्तु भाखा "ज्ञान" की आवश्यकता कालेज में बराबर हुआ करती थी। इसीलिए कालेज कौंसिल ने १७ अक्टूबर, १८०४ की बैठक में, जिसमें व्यूकेमेन,हरिंगटन और कौलबुक उपस्थित थे, लल्लू लाल (श्री लाल कवि) और सदल मिश्र को फिर कालेज में ले लिया, और पिछली जुलाई के बाद का वेतन भी उन्हें दे दिया, क्यों कि वे जुलाई से ही रखे समझे गए।

सदल मिश्र ने "चंद्रवती" की भूमिका में स्वयं लिखा है --②

अब संवत् १८६० (१८०३ ई०) में नासिकेतोपाख्यान को जिसमे चंद्रावती की कथा कही है, देववाणी से कोई समझ नहीं सकता, इसलिए खड़ी बोली में किया।" इससे यह प्रमाणित होता है कि सदल मिश्र १८०३ ई० नासिकेतोपाख्यान का अनुवाद पूरा किया था। इस पुस्तक की प्राप्ति के संबंध में इसके प्रथम सम्पादक श्री श्याम सुन्दर दास ने लिखा है -- "सन् १९०१ में कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में रक्षित हस्तलिखित पुस्तकों की जांच करते हुए मुझे पं० सदल मिश्र द्वारा अनुवादित चन्द्रावती अथवा नासिकेतोपाख्यान की एक प्रति प्राप्त हुई थी । उस प्रति के आधार पर उसे संपादित कर मैने नागरी प्रचारिणी ग्रंथमाला से प्रकाशित करवाया था।" सदल मिश्र द्वारा अनुदित दूसरी पुस्तक "अध्यात्म रामायण" के बारे में एक उलझन सी बनी रही। बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् के संचालक ने वक्तव्य में इसके बारे में लिखा है ③ "उनकी दूसरी पुस्तक रामचरित" की प्रति सम्पूर्ण भारत में खोज-ढूंढ कराने पर कहीं भी प्राप्त करना संभव न हो सका। उन्हीं दिनों विश्वस्त सूत्र से पता चला कि लंदन की इम्पीरियल लाइब्रेरी में लेखक की दोनो पुस्तकों की एक-एक प्रति सुरक्षित है। परिषद् ने दोनों की प्रतिलिपि कराने का संकल्प किया और यह भार श्री वीरेन्द्र नारायण पर सौंपा गया, जो उन दिनों लंदन में नाट्य कला का अध्ययन कर रहे थे। उन्होने दोनों की प्रतिलिपि करने का आमंत्रण कृपापूर्वक स्वीकार कर उसे बड़ी श्रद्धा और लगन से सफलता पूर्वक सम्पन्न किया।" फलतः बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् के तत्वावधान में "चन्द्रावती" एवं "अध्यात्म रामायण" का प्रकाशन संयुक्त रूप से किया गया। सदल

---

① फोर्ट विलियम कालेज - डा॰ ल॰ सा॰ वार्ष्णेय (पृष्ठ ६५)

② सदल मिश्र ग्रन्थावली - (पृष्ठ सं॰ ५)

③ सदल मिश्र ग्रंथावली - वक्तव्य - डा॰ भुवनेश्वर नाथ मिश्र (माधव वक्तव्य)

हिन्दुस्तानी रचनाएं नाम	छप जाने के बाद के अनुमान				ग्रंथकर्ता	विशेष
	बड़े चौपेजी पृ०	छोटे चौपेजी पृ०	अ०पेजी पृष्ठ	पुरस्कार		
(जो छप चुकी है)						
,,						
,,						
,,						
नक्लियात-इ-लुक्माना	-	-	३००	६००	तारिणीचरण मिश्र, मौलवी अमानत उल्लाह, सदल मिश्र पंडित, मीर बहादुर अली, मीर शेर अली अफसोस, श्री लाल कवि और गुलाम अशरफ, सदल मिश्र	इन अनुवादकों में से केवल पहले तीन पारिश्रमिक पाने के विशेष रूप से अधिकारी हैं, क्योंकि बंगाली, अरबी और संस्कृत का भार इनके ऊपर पड़ा और वह भी तारिणीचरण के ऊपर सबसे अधिक
,,						
,,						
,,						
,,						
,,						
,,						
,,						
,,						
,,						
,,						
,,						
चन्द्रावती	-	-	१५०	६०		

उल्लेखनीय है कि चंद्रावती की प्रकाशित प्रति नहीं मिल सकी थी, इसका प्रकाशन प्रथम बार १९०१ में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ।

मिश्र की ये दोनों रचनाएं कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। सदल मिश्र द्वारा किए गए हिन्दी गद्य के योगदान के संबंध में और जो भी उल्लेख मिलता है, वह इस प्रकार है -

"१९ अगस्त, १८०३ को गिलकृस्त (गिलक्राइस्ट) ने फोर्ट विलियम कालेज ①को कौंसिल के विचारार्थ एक पत्र लिखा था -- इसके पूर्व उन्होंने इस संबंध में और भी पत्र लिखे थे -- जिसमें उन्होंने "लोकप्रिय" हिन्दुस्तानी भाषा का अध्ययन सरल बनाने और भारतवर्ष में प्रचार तथा प्राचीन हिन्दुस्तानी रचनाओं के आधार पर निश्चित सिद्धान्त स्थिर करने की दृष्टि से हिन्दुस्तानी विभाग में तैयार या तैयार हो रही चवालिस पुस्तकों की सूची प्रेषित की थी और उन्हें पुरस्कार देने की सिफारिश की थी।

① फोर्ट विलियम कालेज (पृष्ठ १८५-१८८) डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

यह सिफारिश कौंसिल को मान्य नहीं हुई क्योंकि वतन भोगी विद्वानों को अथवा अपूर्ण रचनाओं के लिए पुरस्कार देने के पक्ष में कौंसिल नहीं थी। इस सूची में अन्य पुस्तकों के साथ नक़्लियात-इ-लुक़्मानी और "चन्द्रावती" भी सम्मिलित हैं, जिनमें से पहले को अन्य विद्वानों के साथ और दूसरे को स्वयं ही सदल मिश्र ने अनूदित किया था। सूची के वे अंश यहाँ उद्धृत हैं, जिनका संबंध सदल मिश्र से है : - इससे यह स्पष्ट है कि "चन्द्रावती" की रचना के लिए सदल मिश्र को मात्र ७० रूपए का पुरस्कार मिला था। नक़्लियात-इ-लुक़्मानी के लिए ७०० रूपए तो मिले, लेकिन उसमें इन्हें अधिक राशि इस कारण नहीं मिल सकी होगी कि वे उस कार्य में मात्र सहयोगी थे।①

"रामायण की प्रतिलिपि करने के संबंध में कौसिल ने १८ नवम्बर, १८०५ की बैठक में सदल मिश्र पंडित को छब्बीस रूपए आठ आने दिए और १७ मई, १८०६ की बैठक में कौंसिल ने संस्कृत की "अध्यात्म रामायण" का खड़ी बोली में अनुवाद करने पर उन्हें तीन सौ रूपए देने का प्रस्ताव स्वीकार किया"②

२७ मई १८०९ की बैठक में कौंसिल ने "हिन्दी" और फारसी शब्द सूची का अनुवाद करने पर सदल मिश्र को पचास रूपए दिए। संभवतः १८११ में कालेज के मेरी विलिम्रम हंटर ने कौंसिल को एक पत्र भेजा था जिनमें उन ग्रंथों की सूची "जिनसे वे हिन्दुस्तानी डिक्शनरी" तथा उसके परिशिष्ट भाग की रचना करने में सहायता ले रहे थे। इस सूची में कुल ४३ पुस्तकों के नाम हैं ३०वीं पुस्तक का इस प्रकार उल्लेख है-- "सदल मिश्र पंडित रामचरित (पूर्वी संस्कृत से)।"③

"रामचरित" अध्यात्म रामायण है, पूर्वी संस्कृत का क्या तात्पर्य है, स्पष्ट नहीं है।"④

इस प्रकार ऊपर के उद्धरणों से इस बात का अनुमान मिलता है कि सदल मिश्र ने पुस्तकों के अनुवाद एवं रचना -कार्य में फोर्ट विलियम कालेज को जो अपना योगदान किया, उसके लिए उन्हें वेतन के अतिरिक्त पुरस्कार भी मिले थे। उनके परदेश जाने की कथा से यह स्पष्ट है कि उन्होने धनार्जन के उद्देश्य से ही घर छोड़ा था। उस समय चरित्रवान एवं विद्वान ब्राह्मणों के लिए धन एवं सम्मान अर्जित करने का सबसे बड़ा साधन कथा वाचन ही था। यह परम्परा न्यूनाधिक रूप में आज तक चल रही है। यह बात दूसरी है कि पहले पुराणों की कथा का प्राधान्य था और अब रामायण सम्मेलन का महत्व है। पहले कथा आदि का आयोजन सामूहिक न होकर समाज के तथाकथित सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा होता था। और हर वर्ग के लोग संध्या में वहां सत्संग या मनोरंजन के लिए एकत्र होते थे। महामना पं० मदन मोहन मालवीय की जीवन-कथा में भी इसी तथ्य का उल्लेख मिलता है कि उनका लक्ष्य कथावाचक होना था। गोस्वामी तुलसीदास जी का आरम्भिक जीवन एक कथावाचक का ही था। उन्होंने परिवार सीमा को तोड़कर अपने युग को एक नया संदेश देना चाहा।

पं० सदल मिश्र ने घर छोड़ते समय ही यह निश्चय किया होगा कि जब तक वे अपने घर की

---

① फोर्ट विलियम कालेज (१८००-१८५४) डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृष्ठ ५८

② फोर्ट विलियम कालेज (१८००-१८५४) डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृष्ठ ५८

③ फोर्ट विलियम कालेज (१८००-१८५४) डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृष्ठ ७५

④ फोर्ट विलियम कालेज (१८००-१८५४) डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पृष्ठ ९९

आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने की शक्ति नहीं प्राप्त कर लेंगे, घर नहीं लौटेंगे और वे अपने इस लक्ष्य के लिए प्रयत्नशील रहे। लेकिन उनकी महानता इस बात में है कि उन्होंने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने स्वाभिमान का बलिदान कभी नहीं किया। यह उनकी तपोसाधना का ही प्रमाण है कि वे अपने घर २५-३० वर्षों बाद ही लौट सके। यद्यपि कलकत्ते में उनके घर लौटने की तारीख या निश्चित वर्ष का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है, फिर भी यह निश्चित है कि वे उन्नीसवी शताब्दी के तीसरे दशक में किसी समय पर आए होंगे।① सदल मिश्र ग्रंथावली की भूमिका में इस संबंध में जो उल्लेख है, उसमें इस बात का प्रमाण मिलता है :- " इसी अंग्रेज सुहृद के माध्यम से सदल मिश्र गिलकृस्त (गिलक्राइस्ट) के सम्पर्क में आए और उन्हें फोर्ट - विलियम कालेज में नियुक्ति मिली। ②वहां प्राय: पच्चीस वर्षों तक कार्य करने के बाद सदल मिश्र कलकत्ता से प्रभूत धन-राशि-प्राय: डेढ़ लाख रूपये - लेकर जहाज से सेमरिया घाट (सिनट्टाघाट वाली बात अधिक प्रामाणिक मानी जा सकती है)आए, जहां से आरा तक अंग्रेज सैनिकों ने उन्हें अपने संरक्षण में पहुंचाया।"

डेढ़ लाख रूपयों की बात विश्वसनीय नहीं प्रतीत होती। कम से कम फोर्ट विलियम कालेज से तो वेतन, पारिश्रमिक या पुरस्कार के रूप में इतनी रकम मिश्र जी ने कदापि अर्जित न की होगी। "भाखा" मुंशी के रूप में जैसा फोर्ट विलियम कालेज के विवरणों से ज्ञात होता है, विद्वानों को प्राय: रू० ५०=०० प्रतिमास मिलते थे, मिश्र जी का कहीं प्रत्यक्ष उल्लेख भी नहीं है।"

यह अविश्वसनीय नहीं है कि सदल मिश्र पर्याप्त धन लेकर आरा वापस आए होंगे, क्योंकि उन्होनें सिंगही, वयगुलफा (इसका उल्लेख राजा मिश्र ने नहीं किया है, श्याम सुन्दर दास ने किया है, जिन्होंने कदाचित राजा मिश्र के पूर्वजों से यह सूचना प्राप्त की होगी) तथा हसनपुरा का रु॰ ११०००/= में ठीका लिया था और आरा में एक अच्छा खासा मकान भी बनवाया था। सन् १९४३ ई० में इसी मकान में राजा मिश्र रहते थे (जिनके भाई श्यामलानन्द मिश्र के भी उन दिनों जीवित रहने का उल्लेख "ग्रेट मैन आफ शाहाबाद" में है, यद्यपि तथ्य यह है कि राजा मिश्र के भाई का नहीं बल्कि एक पितृव्य का नाम श्यामलानन्द था)"

जब ऊपर लिखे तथ्यों की प्रामाणिकता के संबंध में मेरी बातें श्री निर्मल कुमार मिश्र से हुई, तो उन्होंने अपने पितामह श्री रघुनन्दन मिश्र द्वारा जिनका देहान्त लगभग एक सौ वर्ष की आयु में सन् १९४२ में हुआ था, कथित प्रसंगों को विस्तार से वर्णित किया और कहा कि उनके दादा जी के कथनानुसार सदल मिश्र एकोनाघाट (सिनहाघाट, आरा से लगभग १५ मील उत्तर) पर ही उतरे थे। एकोना घाट व्यापार के लिए बहुत प्रसिद्ध रहा है। जब रेल की व्यवस्था नहीं थी और स्टीमर भी नही थे, तो वह "नाव" से परिवहन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। अभी तक माल परिवहन के लिए जो "स्टीमर सेवा" की व्यवस्था है, उसका एक प्रमुख घाट "एकोना" भी है। श्री निर्मल जी ने बताया कि जय पं० सदल मिश्र एकोना घाट पर उतरे थे, तो उनके साथ उनके कई अंग्रेज शिष्य भी थे, जो बन्दूक के साथ थे और बोरों में बन्द तोड़ों की रक्षा में तत्पर थे।

आचार्य शिवपूजन सहाय ने श्री बजरंग वर्मा को जो संस्मरण सुनाया था, उससे भी इस आशय

---

① स॰ मि॰ ग्रं॰ - भूमिका पृष्ठ १२ - पं॰ नलिन विलोचन शर्मा

② स॰ मि॰ ग्रं॰ - भूमिका पृष्ठ ७ - पं॰ नलिन विलोचन शर्मा

का उल्लेख मिलता है " उस समय कलकत्ता से आरा तक रेल न थी। नोट की जगह तोड़े का चलन था। पं० रघुनन्दन मिश्र कहा करते थे कि पंडित जी कई वर्ष पर तोड़े के साथ गंगा के मार्ग से घर आते थे। नाव से सिनहा उतरते। पं० रघुनन्दन मिश्र के पिता (सदल मिश्र के अनुज) बैलगाड़ी और लठैतों के साथ वहां जाते और उन्हें आरा तक लिवा लाते।"①

यद्यपि ऊपर के उद्धरण की यह बात भ्रान्तिपूर्ण लगती है कि सदल मिश्र के अनुज पं० रघुनन्दन मिश्र के पिता थे, फिर भी सदल मिश्र का सिनहा घाट पर उतरना एवं सूचना मिलने पर उनके परिवार के व्यक्तियों द्वारा लठैतों के साथ उन्हें ले आना स्वाभाविक लगता है। यह हो सकता है कि जब सदल मिश्र कलकत्ते से दूसरी बार आएं हों, तब लठैतों के साथ उनके परिवार के सदस्य गए हों, लेकिन प्रवास के लिए उनके कलकत्ते से पहली बार आने की घटना में इसकी आवश्यकता इसलिए न पड़ी होगी कि उनके परिवार में यह कहा जाता है कि जब वे बहुत दिनों बाद परिवार में लौटे, तो घर के लोग उन्हें पहचान भी न सके। उस समय डाक आदि की सम्यक् व्यवस्था के अभाव में वर्षों पत्र-व्यवहार भी रुक जाने तथा पच्चीस वर्षों तक उनके घर न आने से परिवार के सदस्यों को यह विश्वास हो गया था कि उनका देहान्त हो गया । कहते हैं कि परिवार के सदस्यों ने बारह वर्षों बाद उनका श्राद्ध भी सम्पन्न कर दिया था और उसी क्रम में उनकी पत्नी की चूड़ियाँ तोड़ उनकी माँग का सिन्दूर भी धो डाला गया था। ऐसी परिस्थिति में पंडित जी के अकस्मात् प्रभूत सम्पत्ति के साथ घर आने पर लोगों के आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता की सीमा न रही होगी। उनके वंशज के लोगों का कहना है कि उनका विधिवत् पुनर्जन्म संस्कार समारोह सम्पन्न किया गया और उनकी धर्मपत्नी ने फिर से चूड़ियों के साथ सिंदूर धारण किया।" यह कहना कठिन है कि पंडित जी उसके बाद कलकत्ते कितनी बार गये। और कितने दिनों के अन्तर पर लौटे, पर यह तो निश्चित है कि वे परिवार से जुड़ गये। वे अपने प्रवास-काल में लाख रुपये भले ही संगृहीत न कर सके हों, लेकिन यह तो निश्चित है कि वे कथा वाचन, अध्यापन, फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के वेतन एवं पुस्तक-लेखन आदि पवित्र कार्यों से लगभग बीस-पच्चीस हजार रुपये संग्रह कर चुके होंगे। सिंगही, वयगुलफा (बलबतरा), हसनपुरा एवं बहिरो आदि ग्रामों की ज़मींदारी की खरीद के रु० ११०००/= की एकमुश्त राशि से भी यह पता चलता है कि मकान एवं बगीचों आदि के निर्माण एवं खरीद पर भी अच्छी रक़म खर्च हुई होगी। यह भी निश्चित है कि १८३१ ई० में उपर्युक्त ग्रामों की खरीद करने के बाद वे कलकत्ते के लिए एक बार ही गये होंगे। ऐसा अनुमान है कि " १८३६ ई० में फोर्ट विलियम कॉलेज टूट गया; इसके पूर्व वे घर लौट गये।"②

प्रतीत होता है कि वे इसके बाद से आरा में पूरी तरह सुस्थिर हो गये। "सदल मिश्र खेती-बारी में अभिरुचि रखते थे और अधिक समय आरा में संस्कृत के छात्रों के अध्यापन में लगाते थे। वे उदार अवश्य थे और निर्धन छात्रों को उनके भोजन तथा आवास की व्यवस्था करके, यथासंभव सहायता पहुँचाते थे। ऐसा कहा जाता है कि स्वयं बाबू कुँवर सिंह ने पुनः आरा छोड़कर बाहर जाने से उन्हें रोका था। "③

---

① सदल मिश्र ग्रंथावली पृष्ठ सं० ६

② सदल मिश्र ग्रंथावली पृष्ठ सं० ८

③ सदल मिश्र ग्रंथावली पृष्ठ सं० ८

उनके देहावसान के संबंध में श्री श्यामसुन्दरदास ने 'चन्द्रावती' की भूमिका के पृष्ठ ३ पर लिखा है -- "बाबू शिवनन्दन सहाय लिखते हैं-- "संवत् १९०४ का इनके नाम का बयनामा हमारे देखने में आया है, जो इस समय उनके पौत्र पं० रघुनन्दन मिश्र के पास है । इसके पहले के काग़जों में भी इनका नाम है। १९०५ सं० के एक काग़ज में इनका नाम न होकर केवल इनके वंशधरों का नाम देखा जाता है।" इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संवत् १९०४ और १९०५ (१८४७-४८) के बीच में पं० सदल मिश्र की मृत्यु हुई। इनके वंशधरों का कहना है कि पंडित सदल मिश्र ने ८० वर्ष की आयु पायी थी।"

पं० सदल मिश्र की प्रमुख कृतियाँ दो ही हैं (१) चन्द्रावती या नासिकेतोपाख्यान (२) रामचरित या अध्यात्म रामायण।

चन्द्रावती अथवा नासिकेतोपाख्यान

यह संस्कृत में रचित 'नासिकेतोपाख्यान' का भावानुवाद है। लेखक की मौलिकता नायिका 'चन्द्रावती' के नाम पर पुस्तक का नामकरण करने में प्रारम्भ में ही प्रकट हो जाती है। यद्यपि यह कहानी व्यावहारिक दृष्टि से आज के युग की कहानियों की तुलना में शायद ही विश्वसनीय हो, फिर भी हिन्दी में अनूदित यह कहानी घटना, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, जिज्ञासा एवं भाषा - सौष्ठव की दृष्टि से बहुत ही सफल है। अपने उपयुक्त गुणों के कारण इनमें मौलिक साहित्य की स्वाभाविकता है। पूरी कथा अठारह अध्यायों में है, जिसे पं० सदल मिश्र ने एक क्रम में ही उपस्थित कर दिया है। चन्द्रावती राजा रघु की प्यारी पुत्री थी । उद्दालक नामक एक ऋषि को ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त हुआ था कि उन्हें विवाह से पूर्व ही एक पुत्र होगा। वे इसी आश्चर्य में थे कि कामातुरावस्था में उनका वीर्य स्खलन हुआ। उन्होंने उस वीर्य को दोने में रखकर नदी में बहा दिया। नदी में स्नान कर रही राजकुमारी चन्द्रावती ने उस दोने को फूल समझ सूँघ लिया और वीर्य उसकी नाक के रास्ते गर्भाशय में पहुँच गया। राजकुमारी गर्भवती हो गयी। राजा रघु सपरिवार चिन्तित हुए और सामाजिक भय से उन्होंने पुत्री को वन में भेज दिया । चन्द्रावती ने भी पुत्रजन्मोपरान्त कुछ समय बाद पुत्र को कुश के बण्डल पर रखकर नदी में बहा दिया। जब बण्डल नदी में स्नान करते हुए उद्दालक ऋषि के सामने आया तो वे बालक को उठा अपने आश्रम में ले जाकर पालने लगे। कुछ दिनों बाद चन्द्रावती को अपने पुत्र का पता लगा और वह उससे मिलकर बहुत खुश हुई। उस पुत्र के माध्यम से उद्दालक ऋषि को भी चन्द्रावती के बारे में जानकारी हुई और वे राजा रघु के यहाँ उसकी (उनकी पुत्री की) याचना करने गये। जब राजा रघु को अपनी पुत्री और नाती की जानकारी मिली, तो उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन्हें बुलवाया और धूम-धाम से कन्या का विवाह उद्दालक ऋषि के साथ कर दिया।

इसके बाद आश्रम लौटने पर उद्दालक ऋषि और उनके पुत्र नासिकेत के बीच यज्ञ एवं योग की महत्ता पर मतभेद हो गया और पिता ने पुत्र को शाप दे दिया। नासिकेत पिता से शापित होकर यमलोक गये। यमलोक में धर्मराज उनसे प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने नौकरों से कह उन्हें पूरा यमलोक दिखाया। नासिकेत के मुख से यमलोक में पाप-पुण्य के फल के भोगों का विस्तृत वर्णन भी अनुवादक ने बड़े रोचक ढंग से किया है। चन्द्रावती के पुत्र के नासिका (नाक) से उत्पन्न होने के कारण 'नासिकेत' नाम पड़ा था।

रामचरित अथवा अध्यात्म रामायण

पं० सदल मिश्र 'अध्यात्म रामायण' का पाठ नित्य किया करते थे। इस ग्रंथ के विषय में उल्लेख है कि यह आख्यान ब्रह्माण्ड पुराण के उत्तर खण्ड के अन्तर्गत माना जाता है । अत: इसके रचयिता महामुनि वेदव्यास जी हैं। इसमें परम रसायन रामचरित का वर्णन करते-करते पद-पद पर प्रसंग उठाकर भक्ति, ज्ञान, उपासना, नीति और सदाचार संबंधी उपदेश दिये गये हैं। विविध विषयों का विवेचन रहने पर भी उसमें प्रधानता अध्यात्म के विवेचन की ही है इसीलिए यह 'अध्यात्म रामायण' कहलाता है।"①

ऐसा प्रतीत होता है कि पं० सदल मिश्र ने इस पुस्तक के महत्त्व को ध्यान में रखकर उसे जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से सर्वसुलभ जनवाणी में इसे अनूदित करने का प्रयत्न किया और इसका नाम 'रामचरित' दिया। यद्यपि पंडित जी को इस पुस्तक के अनुवाद का निदेश जान गिलकृस्त (क्राइस्ट) से मिला था, फिर भी यह अनुमानित किया जा सकता है कि जान गिलकृस्त ने भी उन्हें ऐसा निदेश उनकी कुशलता एवं रुचि को ध्यान में रखकर ही दिया होगा।

यों तो 'रामचरित' अन्य रामायणों की तरह राम के चरित्र का वर्णन ही है, पर इसमें यत्र-तत्र कथा-प्रसंगों में जो अन्तर मिलते हैं, उनसे इसमें सामान्य पाठकों की रुचि बढ़ सकती है। तुलसी के 'रामचरितमानस' में जो उत्तर काण्ड है उसमें कुश-लव की कथा नहीं होकर अध्यात्मिक प्रसंग हैं। आध्यात्म रामायण में 'उत्तर काण्ड' में लवकुश की कथा के साथ बाली और सुग्रीव के पूर्व चरित्र तथा रावण-सनत् कुमार संवाद आदि अनेक प्रसंग हैं। 'अध्यात्म रामायण' में लंका काण्ड का नाम 'युद्ध-काण्ड' है। घटना-प्रसंगों में मिलनेवाले कुछ अन्तर ध्यातव्य हैं :-

१- कौशल्या और कैकेयी के निज-निज भागों से सुमित्रा को दिये गये हविष्य से उत्पन्न होने के कारण राम के संग लक्ष्मण तथा भरत के संग शत्रुघ्न इकट्ठे हो खेलने लगे। (पृष्ठ संख्या ४२)

२- कुबड़ी मंथरा की बात सुन कैकेयी ने कहा - "मैं तो तुझे बहुत भोली समझती थी पर आज जाना कि तुझ सा बुद्धि-सागर हितू दूसरा कोई नहीं मेरा है। सुन जो किसी प्रकार भरत को राज्य होगा तो चुन-चुन के सौ गाँव मैं तुझे दूँगी।" (पृष्ठ संख्या ५९)

३- जनकपुर में धनुष यज्ञ के प्रसंग में विश्वामित्र के कहने पर राजा जनक धनुष माँगने की आज्ञा देते हैं -- "राजा जनक ने पुरोहित से कहा कि तुम शीघ्र जा धनुष उठवा लावो। उतने में बड़े-बड़े पाँच सहस्त्र पहलवानों ने वुस धनुष को उठवा लाकर राम के आगे जा रख दिया।" (पृष्ठ संख्या ४९)

४- लंका में सीता हनुमान से कहती हैं -- "स्वामी से मेरा क्षेम कुशल कहियो अरु लक्ष्मण देवर को अज्ञानता से जो कुछ उत्कट वचन मैंने कहा था सो मेरा अपराध तुम वुन से क्षमा कराइओ -- (पृष्ठ संख्या १४४)

५- तब वानरों की सेना निहत देख अति दुखित हो रामचन्द्र ने हनुमान से कहा- तुम शीघ्र समुद्र तीर जाओ वहाँ द्रोणाचल पर संजीवनी नाम औषधी है वुसे यहाँ लाकर इन महापराक्रमी वानरों को जिलाकर फिर वहाँ विसे रख आइयो (पृष्ठ संख्या १५६)

---

①अध्यात्म रामायण (सचित्र सातों काण्ड) पृष्ठ सं० ५ हिन्दी अनुवाद सहित गीता प्रेस गोरखपुर।

६- लक्ष्मण को मूर्छित देख मानुष की भांति बहुत पछताकर श्री रामचन्द्र ने हनुमान से कहा "भैया आगे की भाँति फिर संजीवनी लाकर वानरों समेत लक्ष्मण को जिलाओ।" (पृष्ठ संख्या १५७)

७- श्री रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए तो औषधी ले सुखेन वैद्य को बुला तुरंत लक्ष्मण की वैदकी कराई।" (पृष्ठ संख्या १५९)

८- लवकुश -- "ये दोनों कुमार जौवें (जुड़वे) ही जने हैं।" (पृष्ठ १९५)

९- राम की सूर्य नदी में समाधि का प्रसंग -- "राजा रामचन्द्र के निकलते ही सारा अयोध्या नगर शून्याकार हो गया। इतने में राम को लाने के लिए स्वर्ग लोक से ब्रह्मा वहाँ आन पहुँचे----।"

लल्लू लाल (१७६३ - १८२५ ई०)①

" ये गुजराती औदीच्य ब्राह्मण थे। आगरे के बलका गोकुलपुरा के निवासी थे। पौरोहित्य कर्म करनेवाले इनके पिता श्री चैनसुख जी की जीविका का साधन स्थायी नहीं था । लल्लू लाल जी अपने चारों भाइयों में सबसे बड़े थे। घर पर ही संस्कृत-फारसी तथा ब्रजभाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। १७८३ ई० में पितृ-सुख से वंचित होने पर आप १७८६ ई० में मुर्शिदाबाद चले गये। वहां गोस्वामी गोपालदास जी की अनुकम्पा से नवाब मुबारुकुद्दौला तक इनकी पहुँच हो गयी और नवाब की प्रसन्नता से इनकी जीविका का प्रबंध भी हो गया। फलतः ये ७ वर्ष तक वहाँ रहे; परन्तु गोस्वामी गोपालदास के देहावसान ने इनकी उदासी को इतना बल प्रदान किया कि नवाब के आग्रह के बावजूद भी ये कलकत्ते चले आये, जहाँ इनका परिचय महाराज रामकृष्ण जी से हुआ। महाराज जी से इनकी इतनी घनिष्ठता बढ़ी कि उन्हीं के साथ ये भी नाटौर चले गये। परन्तु आन्दोलन में महाराज के बन्दी होने पर पुन: कलकत्ता आये। लेकिन अर्थ संकट ने मजबूर कर दिया। फलत: जीविका की खोज में जगन्नाथपुरी गये। डा० गिलक्राइस्ट से मिले और सिफारिशों के आधार पर फोर्ट विलियम कालेज में अपनी नियुक्ति करवायी। इन्हें आदेश मिला कि किसी कहानी को हिन्दी गद्य में लिखें। कुछ लेखकों के अनुसार इनका समय १७४७-१८२५ ई० माना जाता है। जब वे फोर्ट विलियम कालेज में थे तो १८०२ में इनकी उम्र ५५ वर्ष थी ।

रचनाएँ : - अनुवाद - सिंहासन बतीसी, बैताल पचीसी, शकुन्तला नाटक, माधोनल तथा राजनीति (हितोपदेश का ब्रजभाषा में अनुवाद)

प्रकाशित संग्रह : माधव विलास
: लतीफाए हिन्दी (१०० लतीफों का संग्रह)
: सभा विलास (नीति विषयक पदों का संग्रह)

टीका : लाल चन्द्रिका

व्याकरण : भाषा कायदा

प्रेमसागर : यह लल्लूलाल जी की प्रधान रचना है।

---

①मानक हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण - पृष्ठ सं० ३०२ डा० माताबदल जायसवाल

प्रेमसागर

इनकी एकमात्र रचना 'प्रेमसागर' ही ऐसी है, जो उनके अनुसार दिल्ली आगरे की खड़ीबोली में है, शेष सभी रचनाओं की भाषा प्रायः फारसी मिश्रित हिन्दुस्तानी है। अतः शेष रचनाओं का उपयोग ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों की पाठ्य पुस्तक के रूप में भले ही हुआ हो, हिन्दी प्रचार-प्रसार की दृष्टि से उन्हें कोई महत्त्व नहीं मिला। 'प्रेमसागर' चतुर्भुज मिश्र द्वारा महर्षि वेदव्यास प्रणीत श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कंध की कथा पर आधारित ब्रजभाषा पद्य में रचित पुस्तक का गद्य रुप है। श्रीमद्भागवत पुराण का यह स्कंध मूल रूप में नब्बे अध्यायों में है और गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित अनुवाद सहित मूल संस्कृत के इसके ६९० (छह सौ नब्बे) पृष्ठ हैं। ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी द्वारा प्रकाशित कविवर श्री लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर' के नब्बे अध्यायों के कुल पृष्ठों की संख्या २०८ है। मूल ग्रन्थ से इस पुस्तक का मिलान करने पर यह किसी भी रूप में अनूदित पुस्तक प्रमाणित नहीं होती।

इस पुस्तक में भगवान कृष्ण के जन्म, देवकी-विवाह, नन्द के घर कृष्ण का ले जाया जाना, पूतना वध, तृणावती वध, दाम बंधन, काली मर्दन, दावाग्नि विमोचन, चीर हरण, गोवर्धन पूजा लीला, कंस वध, ऊषा-अनिरुद्ध मिलन, श्री कृष्ण-सुदामा-मिलन एवं द्वारिका विहार आदि का वर्णन गद्य-पद्य मिश्रित ब्रजभाषा में इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि एक ग्रंथ एक 'चम्पू' का रूप ले लेता है।

सदासुख लाल (१७४६-१८२८)①

"१९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के हिन्दी गद्य लेखकों में सदासुखलाल नियाज़ का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। इनका जन्म ई० १७४६ में हुआ था। ये दिल्लीवासी थे। इन्होंने १७९३ में मिर्जापुर (चुनार) में सरकारी नौकरी भी की। इन्होंने उर्दू-फारसी में अनेक कविताएँ और शायरी भी लिखीं। इन्हीं के 'मुतबुततारीखे' से ज्ञात होता है कि ये ६५ वर्ष की उम्र में नौकरी छोड़कर प्रयाग में चले आये तथा शेष आयु यहीं रहकर भगवद्भक्ति में बितायी। उनकी उक्त पुस्तक १८१८ ई० में समाप्त हुई और १८२४ ई० में इनका परलोकवास हुआ। विष्णु पुराण पर आधारित 'सुखसागर' इनका महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इन्होंने जो कुछ लिखा, अपनी स्वयं की प्रेरणा से। इनकी भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग मिलता है। मुंशी जी की भाषा हिन्दुओं के शिष्ट बोलचाल की भाषा थी। मुंशी जी की ही भाषा आगे चलकर राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा अपना ली गयी जिसे भारतेन्दु ने निखारा तथा द्विवेदी जी ने पूर्णतः परिमार्जित किया।"

सैयद इंशा अल्ला खाँ ①

"हिन्दी खड़ीबोली गद्य के प्रारम्भिक उन्नायकों में उर्दू के प्रसिद्ध शायर इंशा अल्ला खाँ का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता है। ख़ाँ साहब के पूर्वज समरकंद के प्रतिष्ठित परिवार के थे। कश्मीर निवास के बाद ये लोग दिल्ली आये। इनके पिता माशा अल्ला ख़ाँ एक अच्छे कवि और हकीम थे। सिराजुद्दौला के दरबार में इनका विशेष स्थान था। यहीं पर (मुर्शिदाबाद) इंशा अल्ला का जन्म हुआ। बालसुलभ चंचलता के साथ इंशा अल्ला ख़ाँ में बुद्धि की कुशाग्रता भी थी। पिता की तरह ही बचपन

---

①मानक हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण - डा० मातबदल जायसवाल

में काव्य-रचना करने लगे। राजनैतिक उथल-पुथल के परिणामस्वरूप वे दिल्ली चले आये तथा शाह आलम के दरबार में रहने लगे। बादशाह स्वयं आर्थिक संकटों के बीच जीवन यापन कर रहे थे, अत: आश्रितों को भी आर्थिक कठिनाई उठाना पड़ता था। फलत: इंशा अल्ला ख़ाँ को भी आर्थिक झंझावातों को सहना पड़ा। अर्थ संकट ने इंशा अल्ला ख़ाँ को दिल्ली से लखनऊ (नवाब आसुमुद्दौला के दरबार में) पहुँचाया, जहाँ इनको सम्मान मिला। १८०२ ई० में नवाब सआदत अली ख़ाँ सिंहासनारूढ़ हुए। इन्होंने इंशा अल्ला ख़ाँ को अधिक सम्मान प्रदान किया। दैवात् एक दिन किसी प्रसंग में मनमुटाव हो गया अत: ये दरबार छोड़कर एकान्तवासी बन गये और १८१८ ई० में अपनी इहलौकिक लीला समाप्त कर स्वर्ग चले गये।''

रचनाएं :- इंशा अल्ला ख़ाँ रचित 'रानी केतकी की कहानी' का खड़ीबोली गद्य में विशेष महत्त्व है। मौलिकता इसकी विशेषता है । भाषा ठेठ हिन्दी है। आधुनिक खड़ीबोली इनका स्थान उसी रूप में है जिस रूप में आदिकालीन साहित्य में अमीर खुसरो का है। इंशा अल्ला ख़ाँ रेखता शैली अथवा जुबान-उर्दू ए-मुअल्ला से पूर्ण परिचित थे (दरियाए लताफत नाम से इन्होंने उर्दू ए- मुअल्ला का व्याकरण भी लिखा था। मन की तरंग में आकर इन्होंने निश्चय किया कि एक ऐसी कहानी लिखूँ जिसमें हिन्दवी छूट और भाषा की पुट न हो और भाषापन (ब्रजभाषा) भी न रहे। इस तरह शुद्ध मानक हिन्दी में बिना किसी सरकारी प्रेरणा के रचना करनेवाले १९वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के महत्त्वपूर्ण लेखक हैं।

डॉ० जॉन वोर्थविक गिलकृस्त (गिलक्राइस्ट) - (१७५९ - १८४१)

इनका (जॉन वोर्थविक गिलक्राइस्ट) जन्म १७५९ में हुआ था। उन्होंने एडिनवर्ग में चिकित्सक की उपाधि प्राप्त की । वे २३ वर्ष की उम्र में १७८२ में भारत आये। उन्होंने आकर न केवल हिन्दुस्तानी छापाखाना स्थापित किया बल्कि हिन्दुस्तानी शिक्षा संस्थान की स्थापना भी की ।

वे भारत में जॉन कम्पनी में असिस्टेंट सर्जन नियुक्त हुए । उन्होंने जनता से अच्छे संबंध रखने के विचार से भाषा सीखना आरंभ किया। उन्होंने आर्थिक समस्याओं में उलझे रहकर भी अपने मिशन के लिए कठिन परिश्रम किया और सोलह वर्षों की अवधि में चार प्रमुख ग्रंथ (१७८६-१७९८) प्रकाशित किये।

इसके बाद लार्ड वेलेजली ने उन्हें कम्पनी सरकार के जूनियर सिविल सर्वेन्ट्स को भारतीय भाषाएं सिखाने के लिए निमंत्रित किया और उन्हें कलकत्ता में 'ओरियण्ट सेमिनरी' स्थापित करने को कहा।

लार्ड वेलेजली के प्रयास से कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई और डॉ० गिलक्राइस्ट उसके 'हिन्दुस्तानी विभाग' के प्रोफेसर नियुक्त हुए। उन्होंने चार वर्ष तक कालेज में कार्य किया । इस अवधि में उन्होंने लगभग ६० पुस्तकों का सम्पादन और अनुवाद किया।

उन्होंने अपनी लेखन-सामग्री के संकलन के लिए हिन्दुस्तानी भाषा के शब्दों और अर्थों को समझने के उद्देश्य से फैजाबाद, लखनऊ, इलाहाबाद, जौनपुर और बनारस का भ्रमण किया। वे इस यात्रा से लौटकर १७८५ में कलकत्ता पहुंचे थे। अपना शब्दकोष पूर्ण कर वे १७८७ में गाजीपुर आये और वहीं साहित्यिक प्रवासी बनकर रहने लगे। उन्होंने गाजीपुर में लगभग सात वर्ष रहकर वहीं भाषा का विशिष्ट अध्ययन किया। आर्थिक कारणों से उन्होंने वहां नील की खेती भी की। बाद में इसमें भी उन्हें घाटा हुआ। उनका स्वास्थ्य भी बिगड़ गया था। उन्होंने वहां के ऋण को चुकाने के लिए मि० कूपर और मि० होम्स

को अपनी दो पुस्तकें बेचने के लिए दीं। लार्ड वेलेजली ने ओरियण्ट सेमिनरी की स्थापना में उनकी सहायता की और वे अठारह महीने तक जूनियर अफसरों को पढ़ाते रहे। डॉ॰ गिलक्राइस्ट फोर्ट विलियम कालेज में १८०४ तक रहे । डॉ॰ गिलक्राइस्ट संगीत प्रेमी भी थे। हिन्दुस्तान में २२ वर्ष रहकर वे (स्काटलैण्ड) अपने देश वापस लौटे । फिर वे (१८०६-९) हेलेवेरी के ओरियण्ट कालेज में अध्यापन करते रहे और १८०९ में पूर्ण अवकाश पर चले गये। वे उसके बाद १८०६ से १८१८ तक पढ़ाते रहे और फिर १८१८-१८२६ तक 'ओरियण्ट इंस्टीच्यूट' में हिन्दुस्तानी के प्रोफेसर रहे। उनका देहान्त ९ जनवरी, १८४१ को पेरिस में हुआ।

विलियम कैरे

भारतीय भाषाओं में बाइबिल के सफल अनुवादक विलियम कैरे का जन्म इंग्लैंड के एक ग्रामीण मोची के घर १७ मार्च, १७६१ ई० को हुआ था। वे स्वयं भी अट्ठाइस वर्ष की उम्र तक मोची का व्यवसाय करते रहे थे। कैरे के पिता गणित के अध्यापक थे।

कैरे की रुचि भूगोल पढ़ने, देश-विदेश घूमने एवं खोज करने की थी। उसने अपने स्वामी की जूते की दूकान में ग्रीक भाषा में लिखित बाइबिल के एक भाग 'नया नियम' देखा था और उसे माँगकर उसने उसके कुछ वाक्यों के सहारे एक जुलाहे से ग्रीक भाषा पढ़ी।

सन् १७९३ ई० में कम्पनी के उच्चाधिकारियों की सहायता से वह भारत आया। कलकत्ता आते ही उसने बँग्ला सीखने के लिए 'राम-रामबसु' नामक पंडित को नियुक्त किया और नदिया ग्राम में बस गया। वे यहाँ कोई व्यवसाय न पाकर कठिनाई में पड़ गये। उनकी पत्नी बीमार पड़ गयी । बँग्ला पढ़ाने के लिए जो पंडित थे उन्हें बीस रुपये महीने देने पड़ते थे । कम्पनी की कृपा से उन्हें कुछ ज़मीन मिली। वे वहाँ जंगल की लकड़ी काटते, पान का चूना, मछली बेचते और उसके बाद कभी-कभी जूते बनाने का काम भी करते। बहुत वर्ष बाद जब वे एक दिन किसी उच्च अधिकारी के साथ भोजन कर रहे थे तो अधिकारी ने उन्हें अपमानित करने के उद्देश्य से पूछा - "क्या कभी आप जूते बनाया करते थे?" कैरे ने हँसते हए उत्तर दिया था - "नहीं, महाशय, मैं जूते बनाता नहीं, वरन् फटे- पुराने जूतों की सिलाई भी करता हूँ।"

बाद में सन् १७९४ में कम्पनी सरकार ने उन्हें नील की खेती का अधिकारी बनाया और वे मदनावती गये। वहाँ उन्होंने कुलियों से सुनकर हिन्दुस्तानी सीखी। वे अपनी आय का अधिकांश भाषा पंडितों पर खर्च कर अपना ज्ञान बढ़ाते गये। मदनावती में ही उन्होंने संस्कृत सीखी।

श्रीरामपुर में प्रेस और स्कूल खोलने की आज्ञा मिलते ही वे १८०० ई० के पहले महीने में वहाँ आ गये। कैरे ने अपने साथी मार्शमैन और वार्ड के सहयोग से ५ मार्च, १८०१ को 'नया नियम' के बँग्ला अनुवाद की प्रति छापी। उसके बाद १८०३ ई० के प्रारंभ तक वहाँ देवनागरी के टाइप ढाले गये वहाँ पंचानन नामक लोहार को पंच काटने में प्रतिशत दिया गया, फिर तो पंचानन के सहायक (अप्रेंटिस) मनोहर ने पूर्वी भाषाओं में टाइप ढाले और मिशनरी की ओर से यह काम आगे बढ़ा।

ईसाई मिशनरी की ओर हिन्दी के प्रति योगदान पर शोध करनेवाले डॉ०जे०एच० आनंद ने अपने शोध प्रबंध में लिखा है कि कैरे तीस वर्ष तक फोर्ट विलियम कालेज में अध्यापन का कार्य करते रहे। देश के श्रेष्ठ ख्यातिप्राप्त साहित्यकार फोर्ट विलियम कालेज में उनसे वार्तालाप के लिए एकत्र होते थे।

कैरे के सम्पादन में उनके भाषा - पंडितों की सोलह कृतियाँ प्रकाशित हुई थीं जो मुख्यत: संस्कृत, फारसी का बँगला का रूपान्तर मात्र थीं।

विलियम कैरे के मस्तिष्क में आया कि यदि बाइबिल का अनुवाद संस्कृत में किया जाय तो पंडित गण के संस्कृत ज्ञाता होने के कारण उनसे संस्कृत से उनकी मातृभाषा से संस्कृत में अनुवाद कराया जा सके। कैरे ने इस कार्य को पंडित मृत्युंजय विद्यालंकार की सहायता से किया। कैरी का हर क्षण अनुवाद में बीतता था।

***

सदल मिश्र से पूर्व हिन्दी गद्य

(अध्याय -दो)

संस्कृत साहित्य-शास्त्र में गद्य का उपयोग कथा, आख्यायिका एवं आख्यान आदि के लिए ही बताया गया है। वहाँ इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि कथात्मक साहित्य के अतिरिक्त विचारात्मक लेखन के लिए तथा शास्त्रीय और वैज्ञानिक विकासों के लिए गद्य का व्यावहारिक उपयोग क्या है।

गद्य की सबसे सरल, व्यापक और सर्वमान्य परिभाषा यही हो सकती है कि ''जिस शब्दार्थयुक्त भाषा का साधारण बातचीत में प्रयोग किया जाता है, वह गद्य है।'' पद्य की स्थिति इससे भिन्न होती है, वहाँ असाधारण भाषा का प्रयोग किया जाता है क्योंकि परम्परा के अनुसार पद्य में विशेष प्रकार के क्रम्बद्ध ताल और लय की योजना के लिये बाह्य-गत शब्दों के साधारण क्रम में परिवर्तन करना पड़ता है। वस्तुतः गद्य मुख्यतः बोध, व्याख्या, तर्क, वर्णन और कथा के क्षेत्रों में ही सीमित है।

प्रयोग की दृष्टि से गद्य का साधारण रूप वह है, जो व्यवहारिक उपयोग में आता है, परन्तु दो व्यक्तियों के बीच साधारण वार्तालाप से लेकर बड़ी-बड़ी सभाओं में कलापूर्ण प्रभावशाली भाषणों तक तथा होम कुशल सम्बन्धी साधारण पत्र-व्यवहार से लेकर शास्त्र विज्ञान के विविध विषयों के विश्लेषण, विवेचन, अनुशीलन और अनुसंधानपूर्ण प्रबंधों तक गद्य के इस व्यवहारिक उपयोग में प्रयोग संबंधी इतनी विविधता और अनेकरूपता है कि सामान्यतः उसकी गणना नहीं की जा सकती।

भारतीय वाङ्मय में गद्य साहित्य का इतिहास बहुत अधिक पुराना नहीं। लेकिन यह बात भी संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में ही कही जा सकती है। संस्कृत साहित्य-भण्डार काव्य-संपदा के साथ-साथ बाणभट्ट जैसे सिद्धहस्त गद्य लेखक की कादम्बरी जैसी उत्कृष्टतम रचनाओं से गौरवान्वित है पालि एवं प्राकृत साहित्य में भी गद्य रचनाएँ प्रचुर मात्रा में हैं। संस्कृत नाटकों में श्लोकों की तुलना में गद्यात्मक वार्तालाप के अंश के अनुपाततः अधिक होने की बात से कोई भी सुपठित विद्वान् असहमत नहीं होगा। स्त्री पात्रों एवं अन्य सामान्य पात्रों के मुख से प्राकृत भाषा की उक्तियाँ सामान्य जन-भाषा में ही हैं।

लेकिन हिन्दी साहित्य में गद्य के विकास की गत्यात्मकता उसके जन्मकाल से नहीं आ सकी। अपभ्रंश के बाद हिन्दी भाषा के प्रयोग का प्रारम्भ काल वास्तव में मुसलमानी आक्रमण से माना जाता है। दूसरे शब्दों में पूरा हिन्दी साहित्य का इतिहास भारत के पराधीन होने से स्वाधीन होने तक की कथाओं से परिपूर्ण है। जब तक हमारा देश पराधीन रहा, यहाँ की जन-भाषा को भाव एवं भक्ति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के अवसर तो मिले, लेकिन उसे कभी यह अवसर न मिला कि वह पूर्णरूप से जनता के

दु:ख-दर्द, ज्ञान-विज्ञान एवं मानव-विज्ञान के विकास-साहित्य का वाहक बन सके। यद्यपि इस भाषा के बोलनेवाले जनसमूह की संख्या अंग्रेजी एवं चीनी जैसी विशाल जनसंख्यक समुदायों की भाषाओं के तत्काल बाद ही आती है, फिर भी इसे अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में अभी तक वह स्थान नहीं मिल सका, जो मिलना चाहिए था। हिन्दी एक ऐसी जनभाषा है, जिसका नामकरण विदेशियों ने किया। साहित्य में प्राकृत, अपभ्रंश एवं अवहट् के नाम से अभिहित एवं जनसामान्य में राजस्थानी, मगही, भोजपुरी, बघेली, एवं अवधी आदि विभिन्न क्षेत्रीय नाम ग्रहण करनेवाली 'हिन्दी' भाषा के नामकरण का इतिहास अपने में एक रोचक कहानी है। अपनी विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न स्थानों की मिट्टी एवं हवा से पोषण प्राप्त करनेवाली इस भाषा के 'पुकार' के अनेक नामों के निर्धारण का जो भी कारण रहा हो, लेकिन उसके 'हिन्दुस्तानी' नाम के संबंध में एक विदेशी विद्वान् ने ही बड़ा तर्कपूर्ण, न्यायसंगत तथा ऐतिहासिक एवं भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित विश्लेषण प्रस्तुत किया है। वह विदेशी विद्वान् है -श्री जॉन जोशुआ केटलर।

"हिन्दी, हिन्दुई, हिन्दुस्तानी, हिन्दवी एवं खड़ीबोली आदि सभी नाम किसी-न-किसी रूप में इस देश की आम जनता की बोल चाल की भाषा के ही नाम हैं। यद्यपि बारहवीं शताब्दी से ही अनेक मुसलमान कवि अपनी रचनाओं में इसे इसी नाम से अभिहित करते हैं, फिर भी प्रसिद्ध पाश्चात्य शास्त्री सर विलियम जोन्स ने इस शब्द का प्रयोग १७८६ में सर्वप्रथम किया। उसके पहले श्री जॉन जोशुआ केटलर ने अपना लैटिन में लिखित व्याकरण पुस्तक (१६९८) में 'हिन्दुस्तानी' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया था।① हिन्दुस्तानी भाषा का नाम हिन्दु या हिन्द 'इण्डस' नदी से उत्पन्न है। अरब तथा फारस के लोग 'सिन्धु' नदी को 'हिन्द' के नाम से अभिहित करते हैं। 'स्तान' का अर्थ है स्थान। यह (हिन्दुस्तान) विस्तृत और शक्तिशाली राज्य है। रोमन लोग इसे इंडिया कहते थे। यह सिन्धु तथा गंगा के बीच की समतल भूमि है। उसी प्रसंग में 'संस्कृत' के लिए 'संक्रीट' शब्द के प्रयोग की चर्चा की है और लिखा है कि "चाइना इलेस्ट्राटा नामक ग्रंथ में किर्चर ने इसे 'हंक्रीट' (संस्कृत) कहा है। इसी से अन्द्रियस मूलर ने 'संक्रीट' वर्णमाला का प्रकाशन किया।②

ऊपर के दो विदेशी विद्वानों के अतिरिक्त एक तीसरे विदेशी विद्वान् श्री कोलब्रुक का नाम भी इसी प्रसंग में उल्लेखनीय है। श्री कोलब्रुक प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सन् १८०१ में उर्दू और हिन्दुस्तानी का भेद स्पष्ट किया। इसके तत्काल बाद ही हिन्दी के लिए एक नया शब्द 'खड़ी बोली' का प्रयोग प्रारंभ हुआ। कुछ विद्वानों के अनुसार इस शब्द की संरचना 'स्टैडिंग डाइलेक्ट' अर्थात् मानक बोली के रूप में हुई, जो अंग्रेजी के 'स्टैंडर्ड' शब्द के शब्दानुवाद के अनुकरण पर 'खड़ीबोली' के रूप में प्रचलित हो गयी। प्रस्तुत पुस्तक में विषय विशेष रूप से उन्हीं व्यक्तियों पर है जो शब्द के संस्थापक माने जाते हैं और जिनके समय में हिन्दुस्तानी एवं उर्दू के अतिरिक्त उत्तर भारत में बोली जानेवाली बोलियों से भिन्न सामान्य जन भाषा के रूप में खड़ीबोली की कल्पना को साकार करने के लिए आरंभिक प्रयत्न किये गये। उधर के हिन्दी, हिन्दुई, हिन्दुस्तानी, उर्दू एवं खड़ीबोली आदि शब्दों एवं नामों के अस्तित्व के संघर्ष

---

① हिन्दी के तीन प्रारम्भिक व्याकरण मैथ्युवेचूर पृष्ठ ४५

② (हिन्दुस्तानी भाषा-जॉनजोशुआ केटलर) हिन्दी के तीन प्रारम्भिक व्याकरण मैथ्युवेचूर- पृष्ठ ४३ भूमिका लेखक - डा॰ उदय नारायण तिवारी

के इतिहास का वर्णन हम अन्य स्थान पर विस्तार से करेंगे। इस संदर्भ में सदल मिश्र से पूर्व अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व के हिन्दी-गद्य के स्वरूप का अध्ययन इस प्रकार है।

भारत का राजनैतिक इतिहास देश के एकात्मक एवं विघटनकारी शक्तियों के बीच संघर्षों आदि की कहानी है। जब एकतामूलक शक्तियों का समय रहा तो मौर्य, गुप्त एवं वर्द्धन आदि के साम्राज्य का विस्तार हुआ, लेकिन जैसे ही विघटनकारी शक्तियों की विजय हुई देश कितने ही राज्यों एवं शासनों में विभक्त हो गया। हर्ष के निधन के बाद छोटे-छोटे राजे निरंकुश हो गये और उत्तर भारत निरंकुशता का केन्द्र हो गया। निरंकुशता की यह स्थिति लगभग १०वीं शताब्दी के मध्य तक चलती रही। अब भारतीय संस्कृति का केन्द्र उत्तर भारत के गंगा के ऊपरी मैदान से हटकर राजस्थान या राजपूताने की तरफ आ गया। इस अवधि में सिसोदिया, राठौर, पँवार, चौहान, तोमर, और चंदेल नामक राजपूतों की अनेक उपजातियों की ख्याति फैली। उन पर उत्तरी-पश्चिमी बाहरी आक्रमण १२वीं शताब्दी तक चलते रहे इन छोटे-बड़े राजपूत राज्यों का आपसी युद्ध प्राय: हुआ करता। उनके इन आपसी युद्धों का अंत भी उसी समय हुआ जब पश्चिम के साथ उन्हें एक होकर लड़ने की नौबत आयी। लेकिन भारत के उत्तर पश्चिम के आक्रामकों की वास्तविक विजय सन् ११७५ में मुहम्मदगोरी की सफलता से शुरू होती है।

इस प्रकार मुसलमानों के आक्रमण को सफल होते देख हिन्दू राजाओं को अपने आपसी झगड़ों को खतम करने तथा पृथ्वीराज के नेतृत्व में एक संघराज्य बनाने की प्रेरणा जगी। पृथ्वीराज अजमेर और दिल्ली के राजा थे और ये स्थान उस समय राजस्थान के अंतर्गत ही थे। इस एकता के फलस्वरूप प्रारंभ में एक युद्ध में पृथ्वीराज के नेतृत्व में हिन्दू राजाओं को सफलता मिली, लेकिन बाद में जब पृथ्वीराज एक युद्ध में पराजित होने के बाद बंदी बना लिये गये और मार डाले गये तो उनकी मृत्यु के पश्चात् राजपूत राजाओं की एकता छिन्न-भिन्न होने लगी और वे एक होकर मुसलमानी आक्रमण का सामना करने की स्थिति में नहीं आ सके। फलस्वरूप फिर उन्हें कभी विजय प्राप्त नहीं हो सकी।

तत्कालीन हिन्दी गद्य का एक स्रोत जैन साधुओं द्वारा लिखित ग्रंथ भी है। लेकिन इन ग्रंथों की भाषा पट्टे-परवानों की भाषा से भिन्न है। तत्कालीन गद्य एवं पद्य साहित्य का पक्का प्रमाण राजस्थानी कथा साहित्य है। इस युग की कहानियाँ मुख्यत: इतिहास एवं सच्ची घटनाओं पर आधारित है। इनकी दो शाखाएँ हैं (१) वात (२) ख्यात। ऐतिहासिक कहानियाँ 'ख्यात' के अंतर्गत आती हैं। 'वात' सहित्य के अंतर्गत आनेवाली कहानियाँ कल्पना प्रसूत हैं तथा कथा के रूप में हैं।

हिन्दी साहित्य के विकास में राजकीय संरक्षण का भी बड़ा भारी योगदान है। राजधानी राजकीय पुस्तकालयों में इतिहास, अनुसंधान एवं साहित्य विषयक प्रचुर सामग्री आज भी संग्रहीत है।

यह स्पष्ट है कि हिन्दी या खड़ीबोली गद्य का प्रारंभ बहुत पहले हो गया था। इस गद्य का विधिवत् प्रयोग सरकारी प्रोत्साहन के अभाव अथवा विदेशी शासन की स्थापना के परिणामस्वरूप रुकते-रुकते समाप्तप्राय: होता गया और इसका स्थान धार्मिक कथाओं की जन प्रचलित पुस्तकों में थोड़ा-बहुत बच सका। इस बीच जनता को अपने व्यवहारिक जीवन के लिए उपयोगी गद्य का अभाव बना रहा। उसे अपने छोटे-मोटे सरकारी कामकाज के लिए फारसी एवं उर्दू के अस्वाभाविक एवं अपनी संस्कृति से सर्वथा भिन्न एवं अपरिचित शब्दों का उपयोग करने को विवश होना-पड़ा। शासन के भय एवं अत्याचार की कथा वे आपस में बातें करते हुए भले ही कहे- सुने, लेकिन उसे स्पष्ट भाषा में प्रस्तुत करने का साहस किसी

को न हो सका। यही कारण है कि राजस्थानी गद्य के बाद हिन्दी का स्थान ब्रज ने लिया एवं इसका तत्कालीन नाम 'ब्रजभाषा' ही समझा जाने लगा।

पंडित कामताप्रसाद गुरु जी ने अपने व्याकरण में सिर्फ लल्लू जी लाल की चर्चा की है, सदल मिश्र की नहीं। वास्तविकता यह है कि प्रेमसागर के मुद्रित एवं प्रचलित होने से पं॰ लल्लू जी लाल ही खड़ीबोली के प्रारंभिक गद्य लेखक माने जाने लगे और पं॰ सदल मिश्र की कृतियों के बहुत दिनों तक अप्रकाशित तथा प्रचार-प्रसार से दूर रह जाने के कारण उनकी चर्चा चलते-चलते प्रसंगवश भले ही किसी पुस्तक में आ सकी हो, उनकी विशेषता से हमारे अधिकांश लेखक, आलोचक एवं वैयाकरण अपरिचित ही रह गये।

'खड़ीबोली' गद्य की परम्परा की खोज के संदर्भ में राजस्थानी एवं हिन्दी की अन्य कई प्रमुख बोलियों के साथ ब्रजभाषा का स्थान बड़ा ही गौरवमय रहा है। भक्तिकाल का पद्य एवं गद्य साहित्य इससे किसी-न-किसी रूप में प्रभावित रहा ही।

इस विषय के विशेषज्ञ एवं हिन्दी के विकास के संदर्भ में फोर्ट विलियम कालेज में रचित कृतियों के अध्येता डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है--

"राजस्थानी गद्य परंपरा का सूत्रपात १२वीं शताब्दी के लगभग से माना जाता है। राजस्थानी गद्य साहित्य बहुत-कुछ नष्ट हो चुका है, किन्तु तब भी जो कुछ सामग्री उपलब्ध है, उसके आधार पर नि:संकोच यह कहा जा सकता है कि **ब्रजभाषा की अपेक्षा राजस्थानी गद्य परंपरा अधिक समृद्ध और विविध-विषय संपन्न रही।** उसमें दानपत्रों, पट्टों-परवानों, जैन-ग्रंथों, वार्ता तथा राजनीति, इतिहास, काव्यशास्त्र, गणित, ज्योतिष आदि भिन्न-भिन्न विषय सम्बन्धी ग्रंथों की रचना हुई। टीका-टिप्पणियों और अनुवादों का भी अभाव नहीं रहा। बाद को वह खड़ीबोली के निकट होने के कारण उसके रूप ग्रहण करता रहा। फिर ब्रजभाषा के साहित्यिक पद पर आसीन हो जाने से वह उसके प्रभाव से भी अलग नहीं रह सका। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमें किसी-न-किसी रूप में अथवा ब्रजभाषा की भाँति तीनों रूपों में राजस्थानी गद्य मिलता है।"

जहाँ तक ब्रजभाषा में रचित गद्य का प्रश्न है, इस विषय पर अनेक विद्वानों ने विस्तार से विचार किया है। यह सर्वविदित है कि भक्ति काल (१४०० से १८००ई॰ के बीच) में हिन्दी साहित्य का केन्द्र ब्रज प्रदेश हो गया था और इसका विस्तार काशी तक था। 'मिश्र बंधु विनोद' के लेखकों के विचार से हिन्दी के प्रथम विख्यात गद्य लेखक गोरखनाथ थे। लेकिन यह बात भी पूरी तरह प्रमाणित नहीं हो सकी है कि उनके द्वारा रचित कही जाने वाली 'हठ योग' एवं 'ब्रह्म ज्ञान' दो पुस्तकों की रचनाएँ सचमुच उन्हीं की कृतियाँ थीं। लेकिन यह तो माना ही जायगा कि उस समय जब कभी किसी धार्मिक विषय पर विचार-विमर्श या वाद-विवाद होता था, तो उसके लिए अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य ही होता था और इस प्रसंग में प्रथम 'नाथ पंथ' और बाद में 'पुष्टिमार्ग' द्वारा हिन्दी गद्य के प्रयोग को गति मिली।

पुष्टिमार्ग के कतिपय लेखकों की कृतियाँ इस प्रसंग में सोदाहरण उद्धरणयोग्य हैं।①

---

①उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में हिन्दी गद्य साहित्य का विकास -डा॰ शारदा देवी वेदालंकार (पृष्ठ१२)

इनमें सर्वप्रथम श्री विट्ठलनाथ (स्वामी वल्लभाचार्य के पुत्र) (१४७९-१५३९) जी हैं। उनकी कृतियाँ हैं (१) शृंगार रस मदन

(२) यमुनाष्टक

(३) नवरत्न-सटीक

श्री विट्ठलनाथ के संबंध में श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने अपने शोध ग्रंथ में श्री विट्ठलनाथ के 'शृंगार रस मदन' से गद्य का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए जो लिखा है, उसका सारांश इस प्रकार है-

६ठी शताब्दी की पांडुलिपि (शृंगार रस मदन) ब्रजभाषा गद्य में प्रथम पूर्ण कृति है, जिसके लेखक एवं कृति के बारे में हम लोग ठीक तरह से जानते हैं। समकालीन धार्मिक गद्य लेखकों ने इसकी शैली का अनुकरण व्यापक तौर पर किया। लेखक ने शायद ही कहीं विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है और वे बराबर तत्सम शब्दों का ही प्रयोग करते हैं।

इसी क्रम में श्री हरि राय की (१) श्री आचार्य जी महाप्रभुन की द्वादश वार्ता (२) श्री आचार्य महाप्रभुन के सेवक चौरासी वैष्णव की वार्ता (३) श्री आचार्य महाप्रभुन की निज वार्ता और परु वार्ता तथा (४) भावभवन कृतियों का उल्लेख मिलता है। इनमें से दो प्रसिद्ध कृतियों (१) चौरासी वैष्णवन की वार्ता एवं (२) दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के बारे में यह कहा गया है कि वे विट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ जी की कृतियाँ हैं। लेकिन यह बात प्रमाणित नहीं होती है।

१७वीं शताब्दी में ब्रजभाषा गद्य के कुशल लेखक के रूप में श्री नन्ददास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनकी कृति 'अष्टछाप' को हिन्दी- जगत् में पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई। 'भात माल'के लेखक नाभादास ने 'अष्टयाम' में भगवान् रामचन्द्र के चरित्र को ब्रजभाषा में प्रस्तुत किया।

श्री सुरति मिश्र ने रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि बिहारी एवं केशवदास की विहारी सतसई, कवि प्रिया तथा रसिक प्रिया का गद्यानुवाद किया। 'बैताल पचीसी' की रचना भी ब्रजभाषा में श्री सुरति मिश्र ने ही प्रस्तुत की थी, जिसके आधार पर लल्लू जी लाल ने हिन्दुस्तानी में बैताल पचीसी प्रस्तुत की।

यदि रीतिकाल को 'ब्रजभाषा-काल' कहा जाय तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। रीतिकाल में ब्रजभाषा के एक-से-एक रस सिद्ध कवि हुए, जिन्होंने अपनी अलौकिक एवं कावयित्री प्रतिभा से ब्रजभाषा का भंडार भरा। रीतिकाल में उन्हीं कवियों की भाषा में खड़ीबोली मिलती है, जो अपनी काव्यभाषा के लिए विशेष सतर्क नहीं थे अथवा जो अपनी रचनाओं को जनता के निकट लाना चाहते थे। यही कारण था कि राजस्थानी, ब्रजभाषा या अवधी में जो भी साहित्य मिलता है, उसमें कमोबेस रूप में खड़ीबोली की झाँकी मिल जाती है। इसका प्रभाव भक्ति काव्यों पर भी पड़ा और भक्ति संबंधी संस्कृत ग्रंथों की टीकाएँ इसके लिए प्रमाण हैं। इस प्रसंग में सबसे प्रथम उल्लेखनीय ग्रंथ 'योगवाशिष्ठ' है, जिसका अनुवाद श्री रामप्रसाद निरंजनी ने १७९८ ई० में किया। श्री रामप्रसाद निरंजनी पंजाब के पटियाला राज्य की रानी के धार्मिक सलाहकार थे।

यद्यपि रामप्रसाद निरंजनी का गद्य खड़ीबोली की दिशा में संस्कृत से अनुवाद के रूप में एक सराहनीय (प्रारंभिक) प्रयत्न है, फिर भी यह ध्यातव्य है कि उनकी भाषा पर उनकी जन्मभूमि पंजाब

की बोली तथा उनकी मातृभाषा पंजाबी का पर्याप्त प्रभाव है। "इनसे पूर्व के खड़ीबोली गद्य लेखक श्री दौलतराम (१७६१) के जैन-पद्म पुराण की भाषा से इनकी भाषा की तुलना की जाती है। इस संदर्भ में श्री रामप्रसाद निरंजनी एवं श्री दौलतराम से पूर्व के दो लेखकों के नाम भी खड़ीबोली के आरंभिक गद्य प्रस्तोताओं में लिये जाते हैं। इन दोनों लेखकों में एक हैं गंगा भट्ट (१५७६ ई०) तथा दूसरे हैं काशीनाथ (१७४६)। गंगा भट्ट अकबर के दरबार में कवि थे, उनकी छोटी-सी पुस्तक 'चन्द छंद वर्णन की महिमा' है। श्री काशीनाथ ने (१७४६ ई०) में 'अजीर्ण मंजरी' की रचना की और इसके साथ गद्य में अपनी टिप्पणी भी दी। (श्रीमती) डॉ॰ शारदा (देवी) वेदालंकार के अनुसार "एक सूचना मिलती है कि रामप्रसाद निरंजनी के 'योगवाशिष्ठ' से पूर्व श्री काशीनाथ ने अधिक परिमार्जित गद्य लिखा।

गद्य की प्रथम मान्य पुस्तक योगवाशिष्ठ से पूर्व काशीनाथ ने जिस विषय पर अपनी पुस्तक 'अजीर्ण मंजरी' की रचना की है, वह वैज्ञानिक, वर्णनात्मक तथा मानवीय है। अत: यह पुस्तक न सिर्फ गद्य की दृष्टि से, बल्कि व्यावहारिक दृष्टि से भी जनता के निकट है। इस अंश में शायद ही किसी विदेशी शब्द का प्रयोग हुआ है। लेकिन यह ध्यान देने की बात है कि इसमें यत्र-तत्र प्राचीनता का अनुसरण मिलता है। प्रारंभिक खड़ीबोली गद्य के संदर्भ में जिन चार लेखकों के नाम लिये जाते हैं, उनमें लल्लू जी लाल तथा सदल मिश्र के अतिरिक्त तथा उनसे पूर्व के दो लेखक हैं- सदासुखलाल 'निपात' तथा इंशा अल्ला खाँ। ये दोनों ही लेखक लल्लजी लाल तथा सदल मिश्र के समकालीन थे। इनकी क्रमश: 'सुख सागर' तथा 'रानी केतकी की कहानी' रचनाओं के संबंध में हम आगे विचार करेंगे।

डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में गद्य की स्थिति पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि -①

"उन्नीसवीं शताब्दी पूर्वार्ध में नवीन शक्तियों का प्रादुर्भाव गद्य के क्षेत्र में मिलता है। इस समय खड़ीबोली गद्य ने अपने उज्ज्वल भविष्य और साहित्य में महत्त्वपूर्ण भावी गद्य-युग के पूर्वाभास की सूचना दी। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस समय खड़ीबोली गद्य ने आधुनिकता एवं नवीनता का बीजारोपण किया। **भारतेन्दु युग में यही बीज अंकुरित हुआ।** वास्तव में अंग्रेजी राज्य में विस्तार और फलत: नवीन परिस्थितियों से उत्पन्न नवीन जीवन-क्रम के साथ-साथ खड़ीबोली गद्य का प्रचार बढ़ता गया। इसलिए अंग्रेजी राज्य और खड़ीबोली का घनिष्ठ संबंध है।"

उन्होंने खड़ीबोली गद्य के विकास के संबंध में १९वीं शताब्दी की प्रगति के प्रसंग में ही पुन: कहा है-

"इसका यह मतलब नहीं कि इसके पहले हिन्दी में खड़ीबोली या अन्य प्रकार का गद्य था ही नहीं, अथवा साहित्य में खड़ीबोली का प्रयोग ही नहीं होता था। पहले गद्य था और खड़ीबोली का भी प्रयोग होता था। ब्रजभाषा, राजस्थानी और खड़ीबोली गद्य की हमें तीन स्फुट परम्पराएँ मिलती हैं। संभव है खोजों से इन परम्पराओं का इतिहास और भी प्रकाश में आये। उन्नीसवीं शताब्दी का महत्त्व इस बात में है कि इस समय जहाँ एक ओर गद्य की पहली दो स्फुट परम्पराओं का अंत हो जाता है, वहाँ उसकी तीसरी परंपरा खड़ी बोली गद्य की परंपरा- का क्रमबद्ध इतिहास मिलता है। यह परम्परा केवल खड़ीबोली

---

①आधुनिक हिन्दी साहित्य - डा॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (१८५०-१९००) पृष्ठ सं॰ २३

गद्य की ही नहीं, वरन् साहित्य के इतिहास में गद्य मात्र की सर्वप्रथम क्रमबद्ध परम्परा है।''

उपर्युक्त उद्धरणों के प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि खड़ीबोली गद्य की यह परम्परा सिर्फ राजस्थान या ब्रज क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रही। इन उद्धरणों में अनेक क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों के प्रभाव को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि खड़ीबोली गद्य में लेखन का कार्य कम या अधिक मात्रा में पूरे उत्तर भारत में चलता रहा।

खड़ीबोली गद्य या उससे पूर्व संत एवं भक्ति काव्य की जो परंपरा चल रही थी, उसमें विहार का भी योगदान रहा है। १७वीं शताब्दी के संत श्री धरनी दास तथा १८वीं शताब्दी के संत कवि श्री दरिया साहब के संबंध में किये गये शोध-कार्यों से यह प्रमाणित हो गया है कि बिहार का योगदान भी सतत जारी रहा है। एक ऐसे ही कवि हलधर दास की रचना 'सुदामा चरित्र' चार अध्यायों में ६३५ छप्पयों की है।

यद्यपि बिहार में १८वीं शताब्दी में रचित किसी गद्य पुस्तक का उल्लेख नहीं मिलता है, फिर भी यह तो निर्विवाद है कि इस क्षेत्र में भी चिट्ठी-पत्री, पट्टे-परवाने एवं दस्तावेज आदि में भोजपुरी प्रभावित गद्य का प्रयोग चलता रहा है। सदल मिश्र ग्रंथावली में स्वयं सदल मिश्र द्वारा हस्ताक्षरित दान-पत्र (१८३१ ई०) की भाषा का नमूना प्रस्तुत है, जो पुरानी बिहारी भाषा के उदाहरण रुप में द्रष्टव्य है-

''लि: सदल मिश्र आगे हवेली वाग जमीन वगैर में बदल मिश्र के लरिकन्ह के औ सीताराम के लरिकन्ह के हम भाग लगा देल जे आरे में गिरिधर मिश्र औ जोरा बहु वगैरह के खरीदगी हवेली औ हसन पुरा में सोरह कठवा में हमार लगावल बाग से बाग औ फागू के बाग इ सम मेघमणि तीनों भाई लेघु।......... ...... कवनो बात के झगरा तकरार न करे एह अर्थे तीषबन्दी इस्तावेज लिख देल जे वष्त पर काम आवे-'' इस उद्धरण से यह प्रमाणित होता है कि बिहार में पूर्वीपन प्रधान हिन्दी गद्य का प्रयोग पट्टे-परवानों में होता था। बिहार में ही एक गद्य लेखक ज्योतिरीश्वर का भी उल्लेख मिलता है, जिन्होंने १४वीं श्ताब्दी में अपने युग का चित्रण मैथिली गद्य में किया है।''

''सदल मिश्र एवं उनके समकालीन सहयोगियों की गद्य कृतियों की रचना से पूर्व की स्थिति के सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी का कार्य एवं निर्माण क्षेत्र पूरे उत्तर भारत में तो था ही, दक्षिण में भी इस दिशा में अरुणोदय झाँक रहा था। दक्षिण में इसका नाम 'हिन्दवी' था और आगे चलकर इसके दो रूप हो गये थे- (१) दक्षिणी हिन्दी और (२) उत्तरी हिन्दी।

वस्तुत: हिन्दी गद्य के इतिहास का अनुशीलन अभी तक उलझनों एवं भ्रांतिमय तथ्यों से भरा पड़ा है। इसका स्पष्ट रूप भारतेन्दु-काल से ही सामने आने लगता है। इसके पूर्व का गद्य अभी तक पूर्णत: प्रकाश में नहीं आ पाया है। इसका भी एक बहुत बड़ा कारण इस देश की हजार वर्षों की पराधीनता ही है। लेकिन पराधीनता से मुक्ति के संघर्ष के इतिहास में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिन्दी गद्य के विकास की कहानी भी समाहित है। यही कारण है कि हिन्दी गगनांगन के भारतेन्दु ने 'नील दर्पण' में इस काल को 'पथ की खोज का काल' के नाम से अभिहित किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्धकाल का महत्त्व आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में स्वयं सिद्ध है। हिन्दी साहित्य का 'अर्वाचीन काल' 'गद्य काल' से अभिप्रेय होता है क्योंकि हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल से पूर्व काव्य का प्राधान्य था। गद्य की रचना में विधि या प्रक्रिया खोजने

तथा सार्वदेशिक दृष्टि से उसका रूप खड़ा करने की दिशा में इस काल का आरंभिक योगदान कभी भुलाया नहीं जा सकता। इस अर्ध शताब्दि की अवधि में लगभग सभी उपयोगी विषयों से संबंधित पुस्तकों की गद्य में रचना का कार्य प्रारंभ हो गया और उसके परिणामस्वरूप हिन्दीभाषियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण भी परिवर्तित होने लगा।

***

ईस्ट इंडिया कम्पनी
एवं
फोर्ट विलियम कालेज

(अध्याय - तीन)

ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रथम गवर्नर जनरल के रूप में वारेन हेस्टिंग्स ने कार्यभार-सँभाला। वह एक साहित्यिक रुचि का व्यक्ति था। उसने १७७३ के रेगुलेटिंग ऐक्ट के अनुसार भारत में साहित्यिक गतिविधि को प्रोत्साहित किया और स्वयं भी बंगाल की आम जनता की बोली की जानकारी शीघ्र प्राप्त कर ली। उसके समय में 'कलकत्ता मदरसा' (१७८१) तथा 'हिन्दू कालेज' (१७९२) स्थापित हुए।

वारेन हेस्टिंग्स ने इससे आगे भी सोचा। उसने देखा कि ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी में नियुक्त होकर इंगलैंड से जो किशोर युवक आते हैं, उनकी स्थिति किसी प्रकार के प्रशिक्षण के अभाव में भारत में सेवा के अनुकूल नहीं रहती। वे इंगलैंड से इसी रूप में सीधे भारत चले आते थे और आम तौर पर ऐसे आनेवाले युवकों की उम्र पन्द्रह से अठारह वर्ष तक होती थी। अतः इस संदर्भ में वारेन हेस्टिंग्स ने एक योजना प्रस्तुत की। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में फारसी भाषा सिखाने के लिए एक शिक्षक की नियुक्ति का जो प्रस्ताव आया उससे प्रमाणित होता है कि मुग़ल शासन की अदालतों में उर्दू-फारसी का बोल-बाला देख अंग्रेजों ने सर्वप्रथम इसके प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। इस संबंध में प्रस्तावित योजना के अनुसार कार्यक्रम था कि भारत में नौकरी लिए चुने जाने के पश्चात् राइटरों को लंदन में तब तक ठहरने दिया जाय जब तक वे आक्सफोर्ड में यूरोपीय विद्या में पारंगत होने के साथ-ही-साथ फारसी भाषा में निपुण नहीं हो जाते। कंपनी को भी इस प्रस्ताव की प्रति तो दी गयी, लेकिन इस पर कोई कार्यवाही नहीं की गयी।

वस्तुतः इंगलैंड से आये नये रँगरूटों की भारतीय भाषा की जानकारी शून्य होने के कारण कंपनी के शासकों को भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। **लार्ड वेलेजली** के भारत आगमन के पूर्व कम्पनी के सिविल सर्वेण्ट के लिए नियमित प्रशिक्षण, बौद्धिक और नैतिक शिक्षा आदि का कोई प्रबंध न होने से कंपनी के सामने जनता के साथ सम्पर्क की दुर्गम समस्या थी। शासनाधिकारियों ने अपनी ओर से न तो सरकारी भाषा (फारसी) और न देशी भाषाओं को ही सीखने का कष्ट किया।

आज भी हिन्दी के राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान न रखनेवाले सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों के भीतर इसका ज्ञान प्राप्त करने कराने के लिए अनेक प्रोत्साहनों एवं सुविधाओं की व्यवस्था के प्रावधान किये गये हैं। बड़े-बड़े नगरों में हिन्दी प्राध्यापकों की नियुक्ति के साथ जिन नगरों में ऐसी नियुक्ति नहीं की गयी है, वहाँ के लिए 'एक मुश्त पुरस्कार' की योजना भी है, जिसके अनुसार अधिकारी या कर्मचारी अपने शिक्षण के लिए निजी तौर पर व्यवस्था कर सकते हैं और उनके उस व्यय की प्रतिपूर्ति के लिए उन्हें अलग-अलग हिन्दी परीक्षाओं के लिए रु० १००/- से ३००/- तक के एकमुश्त पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ईस्ट

इंडिया कंपनी की ओर से इंगलैंड से राइटरों या जूनियर सर्वेण्ट के रूप में नियुक्ति पर भारत आये नवयुवकों के लिए सन् १७९० में कुछ इसी प्रकार की व्यवस्था की गयी थी। राइटर अथवा जूनियर सर्वेण्ट को प्रारम्भ में प्रतिमाह सत्तर रुपये की मासिक वृत्ति (स्कालरशिप) इस उद्देश्य से दी जाने लगी कि वह उससे अपने शिक्षण के लिए किसी मुंशी की नियुक्ति कर सके और उससे फारसी भाषा सीख ले। यह मासिक वृत्ति एक वर्ष तक के लिए ही होती थी। उस समय राजनैतिक क्षेत्र की भाषा अंग्रेजी से साथ-साथ फारसी सरकारी भाषा थी और वारेन हेस्टिंग्स ने फारसी सीखने को पहला स्थान दिया था। इसके साथ 'हिन्दुस्तानी' की जानकारी प्राप्त करने की बात को भी महत्त्व दिया जाने लगा था, लेकिन इसका स्थान 'फारसी' के बाद ही रखा गया था। चूंकि भाषा शिक्षण प्राप्त करने के बाद इसके लिए किसी परीक्षा की व्यवस्था नहीं थी और न ही उसके लिए कोई प्रमाण देना अनिवार्य था कि उक्त अधिकारी या कर्मचारी ने ज्ञान प्राप्त कर लिया, अत: कंपनी की इस योजना की सफलता सदा संदिग्ध रही। प्राय: ऐसी स्थिति में यही होता रहा कि सरकारी कर्मचारी मासिक वृत्ति तो ले लेते, लेकिन भाषा का ज्ञान कम्पनी के उद्देश्य के अनुसार शायद ही प्राप्त करते ।

सन् १७९८ ई० के पूर्व चालीस वर्षों तक बिहार, बंगाल एवं उड़ीसा के लभगभ तीन करोड़ भारतवासियों पर कम्पनी का शासन चलता रहा। इस अवधि में उसके देशी राजाओं से राजनीतिक संधियाँ एवं युद्ध भी चलते रहे। संभवत: इन्हीं कठिनाइयों के कारण कम्पनी अपने अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भाषा संबंधी योग्यता का स्तर उठाने का अवसर नहीं निकाल पाती थी। इस संबंध में 'सिरामपुर मिशन का इतिहास' ①में जो उल्लेख मिलता है, उसका यह आशय है कि उस समय जो व्यक्ति जजों, मजिस्ट्रेटों, कलक्टरों तथा राजदूतों के रूप में कार्य करने के लिए पर्याप्त योग्य माने जाते थे, उनके लिए मात्र इतना ही जरूरी था कि वे मकानों की गिनती करने, साफ-साफ लिखने और दुहरे इन्दराज करते हुए किताबों (बहियों) को समझने में निपुण हों। लेकिन सन् १७९८ में कम्पनी सरकार के सर्वेण्ट के व्यवस्थित प्रशिक्षण के लिए 'गवर्नर जनरल इन कांउसिल' ने पहला कदम उठाया और वेलेजली के भारत प्रवेश के सातवें महीने में ही यह आदेश दिया कि "जब तक कि किसी सिविल सर्वेण्ट के बारे में यह पक्का न हो जाय कि वह सरकार के कानूनों, विनियमों और देशी भाषाओं से पर्याप्त रूप से परिचित हो गया, तब तक उसे विश्वास एवं उत्तरदायित्व के किसी भी निश्चित कार्य के लिए मनोनीत नहीं किया जा सकता।" इसके लिए उसने दो वर्षों की समय-सीमा भी बाँध दी और यह भी आज्ञा कर दी कि इस अवधि के बाद से जब तक कोई व्यक्ति देशी भाषाओं की परीक्षा पास नहीं कर लेता उसकी नियुक्ति नहीं की जायगी। इसके लिए उसने अंतिम समय जनवरी १८०१ निश्चित कर दिया।

लार्ड वेलेजली ने इस आदेश के साथ भाषा-शिक्षण की व्यवस्था को सुनिश्चित रूप देने के लिए एक शिक्षक की भी व्यवस्था की । उस समय ईस्ट इंडिया कंपनी की जानकारी में जॉन वोर्थविक गिलकृस्त नामक एक स्काट व्यक्ति थे जो ३ अप्रैल, १७८३ को कंपनी की अध्यक्षता में चिकित्सक की हैसियत से भारत आये थे और जिन्होंने भारत आते ही १७८७ ई० से हिन्दुस्तानी का अध्ययन शुरू कर दिया था। जॉन गिलकृस्त ने बनारस और गाजीपुर में रहकर हिन्दुस्तानी भाषा का अध्ययन किया था। अत: वे ईस्ट इंडिया कंपनी की जानकारी में हिन्दुस्तानी भाषा के विशेषज्ञ थे। उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के नव नियुक्त एवं इंगलैंड से आये अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिन्दुस्तानी

---

①"हिस्ट्री आफ दी सिरामपुर मिशन" (वॉल्युम -१) पृष्ठ १४२

पढ़ाने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। गवर्नर जनरल ने इनकी सेवाएँ स्वीकृत कीं और यह निश्चय किया गया① कि १जनवरी १७९९ से भाषा सीखने के लिए जो सत्तर रुपये मासिक राइटर को दिये जाते हैं वे सीधे डॉ॰ गिलकृस्त को बारह महीने तक दिये जायेंगे और वे प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को हिन्दुस्तानी सिखायेंगे। इसके लिए कंपनी की ओर से एक कमरे की भी व्यवस्था की गयी। यह कमरा राइटर बिल्डिंग में ही था जहाँ यूरोप से आनेवाले राइटर नियमित रूप से उनकी भाषा की कक्षा में उपस्थित होते थे। वर्ष के किसी एक दिन भाषा ज्ञान के विषय में उनकी विज्ञता एवं प्रगति की जाँच के लिए परीक्षा भी ली जाती थी।

यह उल्लेखनीय है कि ② छात्रों द्वारा हिन्दुस्तानी एवं फारसी में अर्जित ज्ञान के क्षेत्र में प्रगति की जाँच के लिए पांच वरिष्ठ सिविल सेवकों की एक समिति भी नियुक्त की गयी जो विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे, उनके नाम गजट में प्रकाशित किये गये थे और विशेष योग्यता पानेवाले विद्यार्थियों के पुरस्कार देने का भी निर्णय किया गया था।

इस प्रकार हिन्दुस्तानी एवं फारसी के ट्यूशन एवं शिक्षण के कार्य में जॉन गिलकृस्त ३१ अक्टूबर, १८०० तक ही रहे और उसके बाद उनका योगदान फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी प्रोफेसर के रूप में इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण रहा। फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने हिन्दुस्तानी पाठ्य पुस्तकों का निर्माण बड़ी तेजी और मुस्तैदी से करने और कराने की व्यवस्था की। फोर्ट विलियम कालेज के इतिहास में उनका नाम स्मरणीय रहेगा।

फोर्ट विलियम कालेज

इंगलैंड से आये राइटरों एवं सिविल सर्वेण्टों की प्रशिक्षण संबंधी दयनीय स्थिति को देखते हुए लार्ड वेलेजली ने इस संबंध में ठोस कदम उठाने का निश्चय किया और जो कार्य क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स एवं कार्नवालिस नहीं कर सके थे, उसे मार्क्विस वेलेजली ने पूरा किया। "जिस साम्राज्य की नींव राबर्ट क्लाइव ने डाली और वारेन हेस्टिंग्स ने जिसे सुरक्षित बनाया, उस पर मार्क्विज वेलेजली ने भव्य प्रासाद खड़ा किया।"

टीपू सुलतान के साथ युद्ध के बाद उसे अवसर मिला और उसने शासन-तंत्र को बनाये रखने के लिए सिविल सर्विस में योग्य कर्मचारी उत्पन्न करने की योजना बनायी। वेलेजली ने १० जुलाई, १८०० को जो मिनट्स भेजा, उसमें उसने सर्वप्रथम कालेज प्रशिक्षण संस्थान की योजना को विस्तार रूप में प्रकट किया। उसने लिखा कि कलकत्ता में ४ मई, १८०० को, जो श्रीरंगपट्टण (मैसूर) पर विजय की पहली वर्षगाँठ का दिवस था, कालेज का शुभारंभ होगा। अत: गवर्नर जनरल इन कांउसिल ने १८०० का नवाँ रेगुलेशन बनाया कि फोर्ट विलियम कालेज स्थापित किया जायगा, जिसका प्रथम सत्र उस वर्ष नवंबर महीने से प्रारंभ होगा।

लार्ड वेलेजली ने यह निर्णय किया कि सिविल सर्वेण्टों की शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि वह मिश्रित ढंग की हो, इसकी नींव इंगलैंड में डाली जाय और ऊपरी संरचना का कार्य भारत में विधिवत् पूरा किया जाय। इसलिए उसने बंगाल, मद्रास और बंबई की तीन प्रेसीडेंसियों के सिविल सर्वेण्टों को

---

① आई ओ॰ बंगाल पब्लिकेशन पृष्ठ २१(दिसम्बर १७९८)

② कलकत्ता गजट जुलाई २९, १८०० - फोर्ट विलियम कालेज का इतिहास (पृष्ठ १२६)

अधिक अच्छी शिक्षा के लिए कलकत्ते में ४ मई, १८०० को इस कालेज की नींव डाली थी। इस कालेज के खुल जाने से प्रशासनिक एवं न्यायिक पदों पर कार्य करने के लिए देशी भाषा एवं अन्य कार्यों की योग्यता का पूर्व प्रशिक्षण होने लगा। फोर्ट विलियम कालेज में विद्यार्थियों को कालेज की स्थापना के दिन से ही अरबी, फारसी और हिन्दुस्तानी में व्याख्यान (लेक्चर) दिये जाने लगे थे। लेकिन कालेज खुलने की घोषणा उक्त विनियम (रेगुलेशन) के अंतर्गत आगामी वर्ष १८०१ के १० अप्रैल तक नहीं की गयी।

कालेज का योगदान

भारत की राष्ट्रभाषा एवं साहित्य के विकास में फोर्ट विलियम कालेज का योगदान-

(१) अंग्रेजी भाषा साहित्य से हिन्दुस्तानी भाषा में ग्रन्थ रूपान्तरित होकर छपे। व्याकरण, शब्दकोष, सामान्य इतिहास, नीतिशास्त्र, कथा-कहानी, धार्मिक साहित्य, हर क्षेत्र में कार्य हुआ। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियाँ बंग्ला-मराठी में भी मुद्रित हुईं। कालेज ने प्राच्य शास्त्रों और धर्म दर्शन ग्रंथों को संस्कृत, अरबी, फारसी भाषाओं से अंग्रेजी भाषाओं में अनूदित करवाया जिससे पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान प्रभावित हुआ।

(२) लल्लू जी लाल कवि और सदल मिश्र की रचनाओं के नाते हिन्दी साहित्य के इतिहास में कालेज का उल्लेख किया जाता है। अब तक माना जाता रहा है कि कालेज में आधुनिक भाषा और गद्य का भी जन्म हुआ। इस कथन के आधार पर अब तक के इतिहासकार हिन्दी साहित्य के इतिहास में कालेज का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित करते आये हैं।

मुद्रण एवं प्रकाशनाधिकार

हिन्दी गद्य के विकास में १९वीं शताब्दी के पूर्वार्ध का महत्त्व दो दृष्टियों से ही अधिक माना जाता है।

(१) 'खड़ीबोली' नाम से हिन्दी के मानक रूप का निर्धारण तथा उसके अनुसार गद्य-ग्रंथों का लेखन-कार्य ।

(२) मुद्रण यंत्रों के लिए नागरी के अक्षरों की ढ़लाई तथा हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन।

'खड़ीबोली' के नामकरण एवं उसके मानक रूप के अनुसार ग्रंथों की रचना एवं उनके रचयिताओं के संबंध में 'हिन्दी गद्य के विविध प्रयोग' अध्याय में अलग से विचार किया गया है। इस स्थान पर हमें इस देश में मुद्रण यंत्र के लिए नागरी अक्षरों की ढलाई एवं ग्रंथों के प्रकाशन के क्षेत्र में पश्चिम के सम्पर्क से जो नव क्रांति आयी उससे हिन्दी भाषा एवं साहित्य को मिलनेवाले लाभ पर विचार करना है। इस प्रसंग में हम इस बात पर भी विचार करेंगे कि प्रकाशन के अवसर का उपयोग खड़ीबोली के विकास के हित में कितना हुआ।

प्रयोग के रूप में नागरी टाइप सर्वप्रथम यूरोप में बने 'अथानासीकिर्चरी कृत' 'चाइना इलस्ट्रेटा' १९६२ में प्रकाशित पहली पुस्तक है (पहली ज्ञात पुस्तक) जिसमें नागरी लिपि छपी।① "इसके बाद

---

①हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ- कृष्णाचार्य (पृष्ठ ११)

१६७८ में 'होरटस इंडिकस मलावारी' पुस्तक छपी जिसमें संस्कृत की ग्यारह पंक्तियाँ देवनागरी में हैं। रोम में १७७१ में प्रकाशित 'ऐल्फावेटम ब्रह्मणाकम' हिन्दी की खड़ीबोली की प्रथम व्याकरण या वर्णमाला पुस्तक है। इस पुस्तक में छपे नागरी के टाइप आकार में कुछ बड़े अवश्य हैं, किन्तु भारत में बने १८०२-१८०३ के नागरी टाइप की तुलना में आते हैं।"

भारत में बँगला और नागरी टाइप के जन्मदाता के रूप में प्रथम भारतीय व्यक्ति पंचानन कर्मकार का नाम आता है। पंचानन कर्मकार को इस कार्य में मार्गदर्शन एवं प्रारम्भिक साधन प्रदान करने का श्रेय चार्ल्स विल्किन्स जैसे संस्कृत-प्रेमी विदेशी विद्वान को है। श्री विल्किन्स की प्रेरणा से पंचानन ने अन्य भारतीय भाषाओं के अक्षर भी ढाले। श्री विल्किन्स ने हुगली प्रेस के लिए बंगला टाइप के निर्माण के साथ-साथ संस्कृत-प्रेम के कारण नागरी टाइप बनाने का उद्योग किया।

सन् १७९८ में विलियम कैरे को यह जानकारी मिली कि पंचानन नाम के एक लुहार ने टाइप बनाये हैं। पंचानन उस समय संस्कृत-प्रेमी कालब्रुक के कर्मचारी थे। विलियम कैरे ने पंचानन को उनसे कुछ समय के लिए उधार माँगा और उनकी सहायता से टाइप फाउण्ड्री बनायी। विलियम कैरे श्री रामपुर में थे। "आगे चलकर पंचानन के भतीजे मनोहर ने इस कला में इतनी दक्षता प्राप्त कर ली थी कि वह प्राय: सब भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त लिपियों के टाइप बनाने लगा। उसके द्वारा बनाये टाइप मिशन प्रेस में और बिक्री के रूप में ४० वर्षों तक वितरण के प्रधान आधार थे। वह अंत तक लुहार जाति का हिन्दू बना रहा और श्रीरामपुर १८६० तक पूर्वीय देशों का टाइप केन्द्र।"

१८०२ में मुद्रित मर्सिया, सिंहासन बत्तीसी और माधोनल हिन्दी की पहली मुद्रित पुस्तकें मानी जा सकती हैं।

"१८०३ में 'हिन्दुस्तानी' प्रेस से अपूर्ण प्रेमसागर छपा। प्रेमसागर की १८१० के बाद कई प्रेसों ने छापा लल्लू लाल जी ने पहली बार 'खड़ी बोली' शब्द को मुद्रित रूप इसी १८०३ के संस्करण द्वारा किया। अंग्रेजों ने इस पुस्तक को विशेष महत्त्व दिया और कहा कि आधुनिक हिन्दी गद्य का जन्म फोर्ट विलियम कालेज में हुआ। शासक जाति की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति थी।"

हिन्दुस्तानी प्रेस

हिन्दी की पुस्तकें संगठित रूप से पहली बार छापने का श्रेय हिन्दुस्तानी प्रेस को ही है। इसके बाद खिदिरपुर के संस्कृत प्रेस ने हिन्दी की पर्याप्त पुस्तकें छापीं। १८०७ में इस प्रेस से छपी हिन्दी पुस्तकों की सूची इस प्रकार है- तुलसीकृत गीतावली और राम सगुनावली-१८०७, बिहारी की सप्तशतिका-१८०९, प्रेमसागर, सतसई, रामायण (तुलसीकृत)-१८१०, रसराज (मतिराम)-१८१४, कवित्त रामायण एवं सभा विलास-१८१५, ब्रजविलास और माधव विलास-१८१७, कोकसारम् - १८१८ तथा सुदामा चरित्र-१८१९।①

बाइबिल के अनुवाद के लिए जनभाषा के बारे में प्रारम्भ में विदेशियों को भ्रम था, इस कारण

---

①हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ - कृष्णाचार्य (पृष्ठ २५ एवं ३३)

हिन्दी में बाइबिल संस्करण के छपने में देर हुई। कैरे का मत गिलकृस्त के विपरीत संस्कृत प्रधान हिन्दी के पक्ष में था।

मुद्रक लल्लू लाल और सदल मिश्र की कृतियाँ

हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ के लेखक श्री कृष्णाचार्य ने हिन्दी मुद्रण काल को तीन युगों में विभाजित किया है, जिसके पहले युग का नाम 'लल्लू जी युग' रखा है और इसकी अवधि (१८०१-१८२२) निर्धारित की है। उनके अनुसार, "इस युग के जनक श्रीरामपुर मिशन और उसके प्रेस के प्रमुख चेतना केन्द्र विलियम कैरे (१७६१-१८३४) और संस्कृत यंत्र के स्वामी तथा हिन्दी के कई ग्रंथों के सम्पादक, अनुवादक, लेखक लल्लू जी 'लाल कवि' (१७६१-१८२४) थे। इन दोनों के साथ तीसरे व्यक्ति जॉन वोर्थविक गिलकृस्त (१७५९-१८४१) का नाम लिया जा सकता है। यह फोर्ट विलियम कालेज की हिन्दुस्तानी भाषा के जनक और प्रधान प्रेरणा-केन्द्र माने गये। हिन्दी भाषा और साहित्य में न इनकी विशेष गति थी, न अनुराग फिर भी सन् १८०० से गिलकृस्त ने लल्लूलाल जी को उत्साहित किया- पहले सर्टिफिकेट पंडित और बाद में १८०१ से स्थायी नौकरी में रखने का श्रेय प्राप्त किया। इनके हिन्दुस्तानी प्रेस में भी नागरी लिपि की कुछ पुस्तकों के माध्यम से हिन्दी को परोक्ष रूप से आश्रय मिला। किन्तु इस समय लल्लू जी का व्यक्तित्व लेखक, सम्पादक, प्रेस-स्वामी के रूप में सबके ऊपर छा गया। प्रेमसागर इस युग की सबसे अधिक लोकप्रिय रचना थी और यह प्रत्येक पाठ्यक्रम में स्वीकृत थी।"

अत: यह विचारणीय है कि उस युग में फोर्ट विलियम कालेज में रचित अन्य अनूदित ग्रंथों के प्रकाशन में क्या कठिनाई हुई। इस प्रश्न पर श्रीमती शारदादेवी वेदालंकार ने अपने शोध प्रबंध में सदल मिश्र की रचनाओं के संबंध में प्रश्न उठाया है, "इनस्पाइट आफ हिज प्रोज बिंग सुपरियर इन एवरी रेसपेक्ट टू दैट आफ लल्लू लाल हिज वर्क्स वर नेवर पब्लिश्ड ड्यूरिंग हिज लाइफ टाइम, फार ह्विच नो रीज़न हैज बिन फाइण्ड" अर्थात् यद्यपि लल्लू लाल के गद्य की तुलना में सदल मिश्र का गद्य हर दृष्टि से श्रेष्ठ है, फिर भी सदल मिश्र की रचनाओं के उनके जीवन में प्रकाशित न होने का कोई कारण नहीं मिलता।"

इस कारण का उत्तर इसी तथ्य में है कि लल्लू लाल की रचना प्रेमसागर के गद्य को ही खड़ीबोली माना गया और ऐसा मानने का आधार यह है कि संभवत: पहली बार 'खड़ीबोली' शब्द प्रेमसागर के शीर्षक पृष्ठ पर मुद्रित हुआ और इसी स्थान पर बताया गया कि यह बोली दिल्ली-आगरे की है। इस संदर्भ में श्री कृष्णाचार्य ने यह लिखा है कि चेम्बर लेन ने अपने मेमांयर में कई जगह लिखा है कि मुझे अनुवाद कार्य में सहायता देनेवाला कोई अच्छा व्यक्ति नहीं मिल रहा है। वस्तुत: उस समय की दृष्टि से साधु हिन्दी लिखनेवाले इने-गिने लेखक थे और उनकी रचनाएँ भी अमुद्रित ही रह गयीं।[1] यहां का संकेत सदल मिश्र से ही है। गिलकृस्त के १८०३ के बाद भारत से चले जाने के बाद लल्लूलाल जी का बोलबाला और सुदृढ़ हो गया था। " प्रेमसागर के प्रकाशित (विशेषांक १८१० में सम्पूर्ण बृहदाकार संस्करण के प्रकाशित होने के बाद जिसका मूल्य २०/- रु० था) हिन्दी का जादू फैला और इस पुस्तक के रूप में पहली बार अंग्रेजों ने समझा कि उत्तरी भारत मे बहुत बड़े समुदाय की भाषा हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू या रेख्त: नहीं हिन्दवी या हिन्दी है। गिलकृस्त के बाद 'एनल्स आव फोर्ट विलियम' के

---

[1] हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ - कृष्णाचार्य (परिशिष्ट पृष्ठ ७)

लेखक महाशय रोएबक और हिन्दी के प्रोफेसर विलियम प्राइस ने हिन्दुस्तानी के स्थान पर हिन्दी को जो अधिक महत्त्व दिया उसका मुख्य कारण प्रेमसागर ही है। प्राइस ने १८१४ में प्रेमसागर के कठिन शब्दों को इकट्ठा किया। उसने १८२५ में सम्पादित और प्रकाशित 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी सेलेक्शन्स' की दो जिल्दों में से एक जिल्द को केवल प्रेमसागर और उसकी शब्दावली से पूरा किया। यह पूरा भाग २० रुपये में बिकता था, अलग-अलग रूप में प्रेमसागर १२ रुपये में और शब्दावली ८ रुपये में। यह कीमती संस्करण इतनी जल्दी बिका कि प्राइस को १८३० में दूसरा संस्करण छापना पड़ा।''

प्रेमसागर तथा उससे संबंधित पुस्तकों के प्रकाशन का क्रम जारी रहा। प्रेमसागर पर बने ''कोश और अंग्रेजी अनुवादों की पृष्ठभूमि में देखा जाये तो यह तथ्य समझने में देर नहीं लगती कि अंग्रेजों ने लल्लू जी और उनके प्रेमसागर को क्यों महत्त्व दिया और १८१० में सम्पूर्ण प्रथम संस्करण छपने के बाद यह बीस रुपये की पुस्तक धड़ाधड़ कैसी छपी और बिकी। स्पष्ट है कि हिन्दी या हिन्दवी का मुद्रित नमूना उस समय मात्र प्रेमसागर द्वारा ही प्रकट हुआ। ''यह भारी दुर्भाग्य की बात थी कि उस समय लल्लू जी के साथी सदल मिश्र की प्रसिद्ध कहानी 'नासिकेतोपाख्यान' मुद्रित नहीं हुई।'' उनकी दूसरी कृति अध्यात्म रामायण भी नहीं छपी थी। पहली पुस्तक पहली बार नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा १९०१ ई॰ में छपी और 'रामचरित' छपा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा १९६१ में। ऐसी स्थिति में मुंशी सदासुखलाल और लल्लूजी से ६२ वर्ष पहले के रामप्रसाद निरंजनीकृत योगवाशिष्ठ और पं॰ दौलतरामकृत पद्मपरायण (१७६१) को स्वयं लल्लूजी भी न जानते रहे हों, तो क्या आश्चर्य।① श्री कृष्णाचार्य ने आगे पुन: लिखा है, ''स्वयं लल्लू जी को खड़ीबोली की ऐसी रचनाओं का पता न था, अन्यथा वे खुशदिल होकर अपने संस्कृत यंत्र से रामचरित मानस, बिहारी के दोहे, नरोत्तम के कवित्त, ब्रजवासीदास के बृहदाकार ब्रजविलास आदि के साथ उन्हें अवश्य छापते । ऐसे स्थिति में अंग्रेजों ने प्रेमसागर का ही शुद्ध हिन्दी का प्रतिनिधि ग्रंथ मानकर कोई गुनाह नहीं किया। गलती इतनी ही थी कि खड़ीबोली को उन्होंने फोर्ट विलियम कालेज का आविष्कार मान लिया। सदल मिश्र कृत रामचरित पर, पता नहीं क्यों, लल्लूजी की दृष्टि नहीं गयी। एक कारण यह हो सकता है कि बड़े ग्रंथ छापने के लिए कालेज के अधिकारियों की तरफ से संभवत: कोई आश्वासन न मिला हो।''

सदल मिश्र की कृतियों के प्रति लल्लूलाल का दृष्टिकोण

ऊपर के तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि सदल मिश्र के ग्रंथों के अप्रकाशित रह जाने का उत्तरदायित्व अंग्रेजों पर कम उनके सहयोगी लल्लू लाल जी पर अधिक है। लल्लू लाल जी के सुझाव एवं निर्देशन पर ही सदल मिश्र द्वारा संपादित तुलसीकृत रामचरित मानस का प्रकाशन १८११ में हुआ। स्पष्ट है कि लल्लू लाल ने पद्य की अनेक पुस्तकों का प्रकाशन तो कराया (और किया) लेकिन उन्होंने अपनी गद्य-कृतियों के अतिरिक्त किसी दूसरे लेखक की गद्य कृतियों को प्रकाशित होने का अवसर नहीं सुलभ करा पाये (किया)। इसका एकमात्र कारण उनका व्यवसायिक दृष्टिकोण ही हो सकता है, जो आगे चलकर संस्कृत प्रेस के उनके द्वारा १८१५ में अपना बना लिये जाने से प्रमाणित हो जाता है। उन्हें या तो इस बात का भय रहा होगा कि 'नासिकेतोपाख्यान' या 'रामचरित' के प्रकाशन से सहज एवं सामान्य जनोपयोगी भाषा के कारण 'खड़ीबोली' के रूप में वे पुस्तकें अधिक मान्य हो सकती हैं और उसके बाद

---

① हिन्दी साहित्य का नया इतिहास - डॉ रामखेलावन पाण्डेय (पृ॰१६१)

प्रेमसागर का महत्त्व कम हो सकता है, या उनकी दृष्टि में हिन्दी का मानक रूप उनके द्वारा प्रयुक्त 'दिल्ली आगरे की खड़ीबोली की ब्रजभाषा मिश्रित भाषा ही थी सदल मिश्र द्वारा प्रयुक्त जन सामान्य भाषा नहीं।

प्रेस के स्वत्वाधिकारी लल्लूलाल

इस संबंध में यह आवश्यक है कि विद्वानों द्वारा लल्लूलाल के व्यक्तित्व के विश्लेषण से संबंधित तथ्यों की जाँच कीं जाय। डॉ॰ रामखेलावन पाण्डेय ऐसे एकमात्र प्रथम साहित्येतिहास लेखक हैं, जिन्होंने इस दृष्टि से श्री लल्लूलाल के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया है। "हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में इन्हें लल्लूलाल कहा गया है इन्होंने सदा अपने का लल्लू जी लाल कवि लिखा है। लाल इनका उपनाम था, जिसके कारण बिहारी सतसई की टीका को उन्होंने 'लाल चन्द्रिका' कहा। यह कहा गया है कि वे कवि थे, साहित्यकार और गद्य के प्रवर्तक नहीं। गिलक्राइस्ती योजना के अन्तर्गत इनकी रचनाएँ आती हैं जो विदेशी छात्रों के लिए भाषागत परिचय कराने के लिए लिखी गयी। ब्रजभाषा की पद्यात्मक रचनाओं का इन्होंने गद्य में रूपान्तर किया। ये न तो किसी साहित्यिक विधा के प्रवर्तक और न खड़ीबोली के आविष्कारक थे। जीविकोपार्जन के क्रम में कुछ पुस्तकों की रचना इनके द्वारा हुई। प्रेमसागर का महत्त्व साहित्यिक दृष्टि से अधिक नहीं। **संयोगवश मुद्रणयंत्रों का उपयोग प्रारंभ हुआ और हिन्दी क्षेत्र में ये सर्वप्रथम प्रेस के स्वत्वाधिकारी हो गये।** सिविलियन परीक्षा में यह पुस्तक पाठ्यग्रंथ रही। अधिक समय तक समस्त संकलन ग्रंथों में इसके कुछ अंश सम्मिलित किये गये।"

मुद्रक लल्लूजी पर प्रकाश डालते हुए श्री कृष्णाचार्य① ने लिखा है "लल्लूजी की कई पुस्तकों के अंत में संस्कृत प्रेस से छपी पुस्तकों की सूचियाँ मिलती हैं- ग्रंथचंद्रिका (१८१९) की भूमिका भाग के अन्त में लिखा है -

"ग्रंथ छपा संस्कृत-प्रेस से। छापा गुरुदास पाल ने जिस किसी को छापे की पोथी लेने की अभिलाषा हो। लालचंद्रिका। माधव विलास। ब्रजविलास। सभा विलास। सिंहासन बतीसी। बृन्द सतसई। तुलसीकृत रामायण। विनय पत्रिका गीतावली। राम सतसई। प्रेमसागर। राजनीति। नजीर के शेर। भाषा कायदा। लतायफ हिन्दी। सर्फ उर्दू। तिसे कलकत्ते में दो सैर मिलेगी। एक पटल डांगे में श्री लल्लूजी के छापेखाने में औ दूजे बड़े बाजार में श्री मोतीचन्द्र गोपालदास की कोठी में श्री हरिदेव सेठ के यहाँ। इति" यहाँ 'लल्लूजी के छापेखाने' से स्पष्ट है कि लल्लू जी का अपना प्रेस था और उसका नाम 'संस्कृत प्रेस' या 'संस्कृत यंत्र' था। यह उल्लेखनीय है कि लल्लू जी संस्कृत नहीं जानते थे और संस्कृत ग्रंथ छापने और उनके सम्पादन का श्रेय प्रेस के मूल स्वामी पं॰ बाबूराम को है। "१८०२ के बाद संस्कृत प्रेस से मुद्रित किसी भी पुस्तक का पता नहीं लगा है। यह ज्ञात नहीं है कि पं॰ बाबूराम के खिदिरपुर स्थित संस्कृत प्रेस के स्वामी लल्लू जी कब हो गये। आचार्य पं॰ रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार लल्लू जी १८२४ ई॰ में फोर्ट विलियम कालेज से पेंशन लेकर अपने छापेखाने को नाव पर लादकर आगरे लाये और वृद्धावस्था के दिन सुख से काटने लगे।"

सम्पादक लल्लू लाल

ऊपर के उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत प्रेस से संस्कृत, ब्रजभाषा एवं अवधी ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। "बहुत संभव है कि ब्रजभाषा ग्रंथों का सम्पादन लल्लू लाल जी और अवधी ग्रंथों का

①हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ - कृष्णाचार्य (परिशिष्ट- पृष्ठ ११)

सम्पादन सदल मिश्र करते थे। ब्रजभाषा काव्यों का संग्रह और सम्पादन लल्लू जी ने किया। मानस का सम्पादन सदल मिश्र ने किया था। यह भी उल्लेखनीय है कि लल्लू जी संस्कृत नहीं जानते थे और संस्कृत ग्रंथ छापने और उनके सम्पादन का श्रेय प्रेस के मूल स्वामी पं॰ बाबूराम को है।''

अतः लल्लू लाल की फारसी या ब्रजभाषा की योग्यता का पता तो चलता है, लेकिन यह प्रमाणित नहीं होता कि उन्हें संस्कृत या रामचरित मानस की भाषा की तथाकथित अवधी का सम्यक् ज्ञान भी था। क्योंकि यदि ऐसा होता तो 'रामचरित मानस' की लोकप्रियता को देखते हुए उसे प्रकाशित करने की माँग पर उसके सम्पादन का श्रेय भी लल्लू लाल जी स्वयं ही लिये होते और सदल मिश्र का नाम प्रकाशित रूप में नहीं आ पाता। 'प्रेमसागर एवं रामचरित मानस' ग्रंथों के संबंध में ब्रिटिश म्यूजियम का उद्धरण इस प्रकार है --

चतुर्भुज मिश्र

प्रेमसागर आर द हिस्ट्री आफ हिन्दू डिटी श्रीकृष्णा कंटेनिंग द टेंथ चापटर आफ श्री भगवत, आफ व्यासदेव, ट्रान्सलेटेड इण्टू हिन्दवी फ्राम ब्रजभाषा आफ चतुर्भुज मिश्र बाई श्री लल्लू लाल जी कवि, कलकत्ता, प्रिण्टेड ऐट संस्कृत प्रेस १८१०,४२९ पृ॰ ३०×२३ से॰ पृ॰४२४,४२९ तक अशुद्धनाम और सूचीपत्र''

तुलसीदास

रामायण, सम्पादक सदल मिश्र, कलकत्ता, संस्कृत प्रेस १८११ पृ॰ सर्व्तंत्र २७×२२ सें॰ इ॰ आफिस में प्रकाशन तिथि १८१० दी है। लगभग ५०० पृ॰ प्रकाशक बाबूराम ने प्रति पुस्तक २०.०० निर्धारित किया, फोर्ट विलियम कालेज के संरक्षण में प्रथम मुद्रित संख्या ब्रिटिश म्यूजियम प्रति १९३५ अनुमान से दिया है, विशेष विवरण प्राप्त कर स्पष्ट हो गया है कि यह सदल मिश्र द्वारा सम्पादित और संस्कृत प्रेस से मुद्रित प्रथम ज्ञात मुद्रित रामायण है। ①शीर्षक पृष्ठ के अनुसार पुस्तक की भाषा 'हिन्दुस्तानी' और मेमोअर्स औ॰ फोर्ट विलियम के अनुसार हिन्दी है।'' (ब्रिटिश म्यूजियम)

जॉन गिलक्रस्त एवं लल्लू लाल

फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष के रूप में जॉन गिलक्रस्त ही हिन्दुस्तानी पुस्तकों के लेखन एवं प्रकाशन के अधिकारी थे। जॉन गिलक्रस्त एक विदेशी थे और उनकी भाषा नीति क्रान्तिपूर्ण थी। जब उन्हें यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि हिन्दुई-हिन्दी के स्वरूपवाली भाषा का भी महत्त्व है तो वे हिन्दी एवं देवनागरी लिपि से पूर्णतः अपरिचित होने के कारण एक सहायक या विशेषज्ञ की खोज में थे कि उनकी भेंट लल्लू लाल से हो गयी। लल्लू लाल ने जॉन गिलक्रस्त से मिलकर फोर्ट विलियम कालेज का जो विवरण दिया वह लल्लू जी कृत 'लाल चन्द्रिका' (१८१९) से उद्धृत आत्मचरित के आधार पर इस प्रकार है कि जब लल्लू लाल कलकत्ते में नौकरी पाने से निराश होकर जगन्नाथपुरी गये तो वहाँ उनकी भेंट नागपुर के राज मनियाँ बाबू से हुई। उन्हीं के दबाव पर वह पुनः वापस कलकत्ता आये। उसके बाद उन्हीं के शब्दों में "कुछ दिन पीछे सुना कि एक पाठशाला कम्पनी से साहिबों को पढ़ाने का ऐसी बनेगी कि जिसमें सब भाषा जानने वाले लोग रहेंगे। यह समाचार पा चित्त

---

①हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ -१ कृष्णाचार्य - प्रथम खण्ड (पृष्ठ ८-९)

को अति आनन्द हुआ, औ सुना कि पाठशाला के लिए कई एक साहिब मुकर्रर हुए। यह बात सुन, मैंने आए, गोपी मोहन ठाकुर से कहा कि, आप कुछ सही करें तो मेरी आजीविका कम्पनी में हो जाती है। उन्होंने सुनकर दूसरे दिन अपने छोटे भाई श्री हरिमोहन ठाकुर का साथ कर दिया। उन्होंने ले जाए पादरी बुरन साहिब से मिलाया और साहिब ने कहा कि, तू हमारे पास हाजिर रह। मैं विनके पास नित जाया करूं। एक महीने त... मैं वुनके पास गया इसमें मेरे जी में आया कि न मैं उनकी बात समझता हूं न ये मेरी बात समझें। इससे कुछ और उपाय किया चाहिए। यह विचार दीवान काशीनाथ के छोटे पुत्र श्यामचरण बाबू के वसीले डाकतर रसल साहिब को चिट्ठी ले, डाकतर गिलकृस्त साहिब से भेंट की। उन्होंने मुझे देख अति प्रसन्न हो कहा, एक भाषा जाननेवाला हमें चाहिता था। तुमने अच्छा किया जो हमसे मुलाकात की। तुम्हारी चाकरी निःसन्देह पाठशाला में होगी। तुम हमारे पास नित आया करो उस दिन से मैं उनके पास जाने लगा, औ जो वे मुझसे पूछें तो बताते। एक दिन साहिब ने कहा कि "ब्रजभाषा में कोई अच्छी कहानी कहो, उसे रेखते की बोली में कहो। मैं ने कहा, बहुत अच्छा, पर इसके लिए कोई फारसी लिखने वाला दीजै तो भलीभांति लिखी जाए , उन्होंने दो शाइर मेरे तैनात किए, मजहर अली खान और मिर्जा काजम अली जवाँ। एक बरस में चार कोठी का तरजुमा ब्रजभाषा से रेखते की बोली में किया। सिंहासन बतीसी, बैताल पचीसी, शकुन्तला नाटक माधोनल। संवत् १८५७ में अजीविका कम्पनी कालेज में स्थित हुई।"

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि जान गिलकृस्त की भाषा सहायक के रूप नियुक्त प्रथम व्यक्ति लल्लू लाल जी थे। ये सदल मिश्र से इसी कारण सेवा में वरिष्ठ होते थे। जॉन गिलकृस्त के वरिष्ठ भाषा सलाहकार तथा उनका विश्वासपात्र होने के नाते उनकी कोई भी सलाह अवश्य ही मान्य होती। परिणाम यह हुआ कि मुद्रण के अवसर आने पर उन्होंने अपने 'एकाधिकार' का प्रयोग किया और अधिक-से-अधिक अपनी अनूदित पुस्तकें ही छापीं। सदल मिश्र की दोनों प्रतियों पर पुरस्कार भी मिले, लेकिन उन्हें संभवतः उपर्युक्त कारणों से ही लल्लू लाल जी की अनुशंसा से अभाव में प्रकाशित नहीं किया गया और ब्रजभाषा बहुल हिन्दी गद्य को ही खड़ीबोली की संज्ञा दी गयी। लेकिन सदल मिश्र के इस विश्वास ने कि "उत्पत्स्येते कोऽपि समानधर्मा" उनके ग्रंथों को १९०१ एवं १९६१ में प्रकाशित कराया। "गुण न हेरानो गुण ग्राहक हेरानो है" के सिद्धान्त के अनुसार आज सदल मिश्र की कृतियों की भाषा का सही मूल्यांकन यह अनुभव करता है कि यदि सदल मिश्र की उक्त दोनों पुस्तकें समय से छप गयी होतीं और उन्हें फोर्ट विलियम कालेज के कर्मचारियों के लिए पाठ्यपुस्तक बनाया गया होता तो विदेशी भी सही सर्वमान्य गद्य भाषा के स्वरूप से परिचित हुए होते और संभवतः वैसी स्थिति में उन्हें सुविधा भी होती। अतः यह ठीक ही कहा गया है कि "सदल मिश्र तथा लल्लू लाल दोनों ही उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दी के अध्यापक और लेखक थे। द्वितीय की तुलना में प्रथम ने अधिक परिमार्जित एवं सुगठित गद्य लिखा फोर्ट विलियम कालेज के तत्कालीन अधिकारियों ने इसका महत्त्व नहीं समझा या स्वीकार किया, किन्तु बाद का पीढ़ियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह उनकी गलती थी।"①

---

①सदल मिश्र ग्रन्थावली - नलिन विलोचन शर्मा (भूमिका)

हिन्दी गद्य
के
विविध प्रयोग

(अध्याय - चार)

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हिन्दी गद्य की कहानी आधुनिक भारतीय भाषा संघर्ष की कहानी है। प्राचीन काल से ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण यह राष्ट्र विदेशी आक्रांताओं के क्रूर एवं निर्दयी नियंत्रण में अभिव्यक्ति एवं विकास के लिए हजार वर्षों तक किस प्रकार आक्रान्त और विवश रहा, इसकी झांकी हमारी पद्यात्मक रचनाओं में से मिलती है। मुगल शासन की समाप्ति से हमें न दुःख हुआ, न खुशी। हम एक विदेशी के नियंत्रण से निकले नहीं कि दूसरे के नियंत्रण में आ गए। यह बात दूसरी है कि हमारे मन में एक क्षीण आशा बंधी कि हमारा दूसरा स्वामी कुछ उदार हो सकता है और वह हमें अपने समकक्ष जीवन-स्तर बिताने से भले ही रोके, हमें अपना मानसिक स्तर उठाने की स्वतंत्रता में बाधा नहीं डालेगा। इस देश के नागरिकों का प्रारंभ में उनसे ऐसी आशा करने का आधार भी था।

उन्होंने शासन-सूत्र संभालते ही देश में शिक्षा की व्यवस्था पर सर्वप्रथम ध्यान दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के प्रयास से सन् १७८१ ई० में "कलकत्ता मदरसा" एवं सन् १७९२ ई॰ में "हिन्दूकालेज" की स्थापना उनके इस लक्ष्य का प्रतिपादन करती है। इतना ही नहीं उन लोगों ने प्राच्य विद्या की तरफ अपनी उत्सुकता दिखाई और यहाँ की भाषा एवं रीति-रिवाज से परिचित होने के लिए १५ जनवरी, १७८४ को "एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल" की स्थापना की। फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना भी उनकी इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए की गई, लेकिन उनकी जिज्ञासा की यह वृत्ति या उदारता का यह लक्षण उनके शासन संभालने के एक सौ वर्ष के भीतर ही क्षीण होने लगा और सन् १८३५ ई॰ में लार्ड मेकाले के शिक्षा संबंधी निर्णय के बाद से इस देश के नागरिकों का विश्वास उन पर से उठने लगा जो सन् १८५७ ई॰ में प्रथम जन-क्रान्ति के रूप में सामने आया। भाषा के क्षेत्र में तो एक दूसरी ही विडम्बना हुई। अंग्रेजों ने अदालतों में फारसी की चलन देखकर यह समझा कि इस देश की जनता फारसी जानती है और उन्होंने सर्वप्रथम फारसी सीखने पर जोर दिया।

यह भी संयोग है कि इस देश में हिन्दी गद्य की दिशा में वैज्ञानिक दृष्टि अपनाकर चलने की योजना की दो निर्मात्री संस्थाओं--

(१) प्रोटेस्टेंट मिशन (२) फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना सन् १८०० ई॰ में मात्र चार-पाँच महीने के अन्तर पर हुई। उत्तर भारत में प्रथम प्रोटेस्टेंट मिशन की स्थापना श्रीरामपुर में १६ जनवरी, १८०० ई॰ को हुई, जबकि फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना ४ मई, १८०० ई॰ को कलकत्ते में हुई। दोनों संस्थाओं के उद्देश्य अलग-अलग थे; एक इस देश में ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अपने कार्यकर्ताओं को यहाँ की बोलियों एवं भाषाओं का ज्ञान दिलाने को आतुर थी, तो दूसरी संस्था का उद्देश्य इंगलैंड से आए नवयुवक राइटरों एवं सिविल सर्वेन्टों को यहाँ के नागरिकों पर शासन करने में उनकी कुशलता के लिए फोर्ट विलियम कालेज में यहां की भाषाओं एवं बोलियों का ज्ञान दिलाने

का कार्यक्रम था। प्रोटेस्टेंट मिशन, श्रीरामपुर के संस्थापक विलियम कैरी संस्कृत के अच्छे जानकार तथा कुशल भाषा वैज्ञानिक थे। उनके दृष्टिकोण का ही परिणाम था कि न्यू टेस्टामेंट का अनुवाद हिन्दी में कराने का कार्य सन् १८०२ ई० में ही शुरू कराया गया। लेकिन फोर्ट विलियम कालेज में "हिन्दुस्तानी" के ही अध्ययन अध्यापन पर अधिक जोर दिया गया और उसकी जानकारी रखने के कारण जॉन गिलकृस्त को हिन्दुस्तानी विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। जॉन गिलकृस्त यहाँ की अदालती भाषा तथा फारसी लिपि से परिचित हो गए थे, लेकिन उन्हें संस्कृत या तथाकथित हिन्दवी या हिन्दी से परिचय नहीं हो सका था। वे रोमन लिपि के पक्षपाती थे और फारसी और नागरी लिपि के प्रयोग को पसंद नहीं करते थे। लेकिन फारसी भाषा के कारण वे फारसी लिपि के प्रयोग को रोक नहीं सके थे। गिलकृस्त के रोमन लिपि के पक्ष पाती होने पर भी कम्पनी फारसी भाषा के लिए फारसी लिपि का और हिन्दुस्तानी (सरल उर्दू) के लिए नागरी लिपि का प्रयोग सन् १८३७ ई० तक करती रही। नागरी लिपि के प्रयोग का यह कार्य विलियम प्राइस के समय में प्रारंभ हुआ था। विलियम प्राइस ने अपने सात वर्षों के कार्यकाल में कालेज के शिक्षा क्रम में परिवर्तन कर दिया। उन्होंने हिन्दुस्तानी विभाग का कार्यभार संभालने के बाद हिन्दी के हित में नई व्यवस्थाएँ करनी चाही थी, किन्तु वे आर्थिक कारणों से कुछ कर न सके थे।

यह निर्विवाद है कि उन्नीसवी शताब्दी के आरंभ में फोर्ट विलियम कालेज एवं ईसाई मिशनरियों ने हिन्दुस्तानी या हिन्दी गद्य के प्रयोग के कार्य को किसी न किसी उद्देश्य से आगे बढ़ाने में अपना योगदान किया, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि यदि वे लोग योगदान नहीं करते तो भारतीय भाषा के आकाश में प्रकाश के आने की संभावना समाप्त हो जाती। अठारहवीं शती के अन्त में हिन्दी गद्य में जिन दो व्यक्तियों ने बिना किसी निर्देशन के अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की थीं उनके नाम हैं-- मुंशी सदासुखलाल "नियाज़" एवं "इंशा अल्ला खाँ"। मुंशी सदासुखलाल फारसी में लिखते रहे थे और उन्होंने "सुखसागर" की रचना शुद्ध हिन्दी में की थी।

इनकी शैली को देखते हुए इस बात के लिए आश्चर्य ①प्रकट किया गया कि जो व्यक्ति फारसी भाषा में लिखने को अभ्यस्त रहा हो, वह विदेशी शब्दों का बिल्कुल प्रयोग न कर इस प्रकार शुद्ध हिन्दी में अपनी रचना कैसे प्रस्तुत कर सका । उसे अपने उत्तरवर्ती लेखक लल्लू जी लाल तथा सदल मिश्र की तरह किसी संरक्षक का निर्देशन भी प्राप्त नहीं हुआ था और उसने अपनी इच्छा से इसकी रचना की थी। इसमें संदेह नहीं कि दार्शनिक ढ़ंग का विषय होने के कारण ही सदासुखलाल की ऐसी भाषा बन गई हो, जो स्पष्ट तथा अभिव्यक्ति पूर्ण है और जिसे व्यवहारिक दृष्टि से देखने पर १९वीं शताब्दी की खड़ी बोली की परवर्ती रचनाओं या कृतियों से भिन्न नहीं किया जा सकता।

कहने का तात्पर्य यह है कि ईसाई मिशनरियों एवं ईस्ट इण्डिया कंपनी ने हिन्दी गद्य की प्रगति में जो योगदान किया, उससे पहले से हमारे हिन्दी लेखक इस दिशा में प्रयत्नशील थे। अत: इसके लिए उन्हें अधिक श्रेय नहीं दिया जा सकता, लेकिन देवनागरी लिपि के टाइप ढ़ालकर सर्वप्रथम हिन्दी की पुस्तक के प्रकाशन का श्रेय तो उन्हें देना ही होगा। उनके द्वारा इस वैज्ञानिक साधन के उपलब्ध कराये जाने से ही हिन्दी गद्य की पुस्तकें पाठकों के हाथों में आने लगीं और गद्य के स्वरूप-निर्धारण की दिशा में हम आगे बढ़ चले। इसी प्रसंग में स्व० श्री नलिन विलोचन शर्मा की यह उक्ति उद्धरण योग्य है कि② "हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में गद्य साहित्य का आविर्भाव भारतीय जीवन में उस

---

① हिन्दी गद्य का विकास (डी०एच०पी०एल०) - श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार (पृष्ठ २६)

② हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ - श्री नलिन विलोचन शर्मा

मंजिल का द्योतक है जब वह मध्ययुगीन वातावरण से बाहर निकल कर वैज्ञानिकता का प्रतीक बना। हमारा समूचा गद्य साहित्य जीवन के परिष्करण और उत्थान का साहित्य है। आज हम उसके माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आए हैं। संसार के लगभग सभी प्राचीन साहित्यों में काल्पनिक या काव्य साहित्य को प्रधानता मिली हैं। वास्तव में यदि खड़ीबोली गद्य के इतिहास को हिन्दी प्रदेश के जीवन में बढ़ते हुए पाश्चात्य प्रभाव का इतिहास कहें, तो अनुचित न होगा। खड़ी बोली गद्य साहित्य के संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अधिकतर उपयोगी और व्यावहारिक विषयों से संबंधित रचनाएँ निर्मित हुई, इस समय खड़ी बोली में नाटक, उपन्यास, निबन्ध आदि के रूप में ललित साहित्य की रचना न हो सकी क्योंकि जिन-जिन साधनों द्वारा खड़ी बोली गद्य का विकास हुआ लगभग उन सभी में नवीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यवहारिक दृष्टिकोण ही सन्निहित था।''

इस काल के गद्य की विशदता एवं विविधता को ध्यान में रखकर श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय ने भारतेन्दु पूर्व के चार लेखकों - सदासुखलाल, इंशा अल्ला खाँ, लल्लू लाल तथा सदल मिश्र के युग को भाषा एवं साहित्य का ''विस्तार काल'' माना है और कहा है कि① ''विस्तार काल के लेखकों ने हिन्दी गद्य का क्षेत्र विस्तृत तो किया किन्तु वे भाषा के संबंध में से कोई निश्चित आदर्श उपस्थित न कर सके।'' इस संबंध में डॉ॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है - ''प्रारंभ में संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, और आधुनिक भारतीय भाषाओं को लेकर ईस्ट इडिण्या कम्पनी के कर्मचारियों में काफी वाद-विवाद हुआ। पहली तीन भाषाओं अर्थात् संस्कृत, अरबी, फारसी का जनता से सीधा संबंध नहीं था, यद्यपि परम्परानुसार राज्य कार्यों में कम्पनी अब भी फारसी भाषा का प्रयोग कर रही थी।'' वे आगे लिखते हैं-- 'कम्पनी की भाषा-नीद्रि निर्धारित करने में गिलकृस्त का बहुत हाथ था। फोर्ट विलियम कालेज से निकले हुए विद्यार्थी उस शासन के प्रत्येक विभाग में रखे जाते रहे। गिलकृस्त के बाद भी उनकी ही भाषा-नीति कम्पनी के दैनिक शासन में बरती जाती रही।'' जॉन गिलकृस्त की भाषा संबंधी भ्रांति के बारे में श्री रामकुमार वर्मा ने भी लिखा है--''रोमन लिपि और फारसी लिपि में विश्वास रखने वाले, अरबी और फारसी से आक्रान्त खड़ी बोली को ही (जिसे वे हिन्दुस्तानी कहते हैं) देश की विशिष्ट भाषा समझने वाले एवं संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों से मिश्रित खड़ी बोली को (जिसे वे हिन्दवी कहते हैं) गंवारू समझने वाले जॉन गिलकृस्त ने वास्तव में हिन्दुस्तानी नाम से उर्दू का प्रचार किया।''

वास्तविकता यह है कि, जब भी इस देश का सम्पर्क यूरोप वासियों से हुआ, वे शासन की भाषा को ही इस देश की भाषा समझते रहे। ऐसे भी अवसर आए, कि उनमें से किसी-किसी ने जन-सम्पर्क के बाद इसका भेद समझा और वे इस भ्रम से बचने की कोशिश में लगे भी।

हिन्दुस्तानी से डॉ॰ गिलकृस्त का उस भाषा से तात्पर्य था जिसके व्याकरण के सिद्धान्त, क्रिया रूप आदि ''हिन्दवी या ब्रज भाषा'' के आधार पर स्थित थे, पर जिसमें अरबी फारसी के संज्ञा शब्दों का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता था और लिखने में फारसी लिपि का प्रयोग किया जाता था। गिलकृस्त ने तीन शैलियाँ निर्धारित की थीं-

१- फारसी शैली २- हिन्दुस्तानी शैली ३- हिन्दवी शैली

हिन्दुस्तानी शैली का उनका सूत्र था :-

---

① हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास - अयोध्या सिंह उपाध्याय (पृष्ठ संख्या ६४९)

हिन्दवी + अरबी + फारसी = हिन्दुस्तानी

डॉ॰ वार्ष्णेय के मत में डॉ॰ गिलक्रुस्त की हिन्दुस्तानी का अर्थ उर्दू है। डॉ॰ गिलक्रुस्त ने "दि स्ट्रैंगर ईस्ट इण्डियन गाइड टू दि हिन्दुस्तानी" में हिन्दुस्तानी और हिन्दवी का भेद स्पष्ट किया है। उनके अनुसार इतवार, सोमवार, मंगल, बुध, जुमेरात, जुमा और सनीचर हिन्दुस्तानी है। हिन्दवी के अन्तर्गत रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार और शनिवार आते हैं। उनके अनुसार हिन्दुस्तानी शब्दों की सूची :--

आस-पास, गिर्द, घूमकर, हिसाब, चालाक, डरता, तीसरेपहर, उम्र, वकील है । उस समय जो पुस्तकें हिन्दुस्तानी में लिखी गईं, उनकी भाषा से ऊपर लिखे तथ्य का प्रमाण मिलता है या उल्लेखनीय है कि लल्लू जी लाल ने "प्रेम सागर" तथा उनके भाई "दया शंकर" ने "दाय भाग" की रचना की। "लल्लू लाल" की तथाकथित रचना "बैताल पचीसी" "एवं दाय भाग" की भाषा में अन्तर है । इनके उद्धरण इस प्रकार हैं--

१"**वैताल पचीसी" से एक उदाहरण** --(कलकत्ता हिन्दुस्तानी प्रेस १८०५ पृष्ठ संख्या ७१)

आठ पहर उसी के ध्यान में रहने लगा- यिह बुरी हालत उसके दोस्त ने देख उसके बाप से जा सब व्योरे वार कहा। उसका पिता भी यह सुनकर भौंचक हो रहा और अपने जी में चिन्ता कर कहने लगा-- कि इसकी दसा देख ऐसा मालूम होता है, जो उस कन्या से इसकी सगाई न होगी तो यिह अपना प्रान त्याग करेगा- इससे बिहतर यिह है कि उस लड़की से इसका व्याह कर दीजिए कि जिससे यिह बचे"

२- "बैताल पचीसी" का भाषा-वक्तव्य

अमुजिब फरमोन जनाबि जॉन गिलक्रुस्त साहिब (दाम इकबाल) के जबानि् सबल में जो खास ओ आम बोलते हैं और जिसे आलिम जो जाहिल गनी कूट सब समझें और हर एक की तबीयत पर आसान हो- मुशकिल किसी तरह की जिद्दन पर गुज़रे- और ब्रज की बोली अक्सर उसमें रहे :-

३- "दया शंकर की भाषा -- (भूमिका)

अति दयाल कपाल यशस्वी तेजस्वी धर्म्ममूर्ति श्री मिस्तर जमिल डाकतर ड्ंकीन साहिब की आज्ञा से श्री लल्लू जी लाल कवि के भाई दयाशंकर ने मिताक्षरा के दाय भाग को संस्कृत-वाणी से दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में बनाया पाठशाला के विद्यार्थी लड़कों के पढ़ने को आगरे नगर की पाठशाला के बीच।" -- पृष्ठ संख्या १

४- पृष्ठ संख्या १२ (दाय भाग)

तहां गौतम ने विशेष दिखलाया है । कि स्त्री धन बेटियों का होता है । परन्तु व्याही और अनव्याही दो होंय तो अनव्याही का धन होता है विवाहिता को उसके रहते नहीं मिलता। और जहाँ दोनों विवाहिता होंय। तहां दोनों में से जो निर्धन होय उसका होता है। डॉ॰ गिलक्रुस्त की स्वयं की रचना से एक उद्धरण प्रस्तुत किया जाता है।

"दो लड़के भूखे-प्यासे किसी से यहाँ गए, उसने हरेक के शोऊर की अजमाइश के वास्ते एक

तरफ मेज पर कुछ शराब और मिश्री रखदी, और दूसरी तरफ थोड़ा ठण्डा पानी और रूखी रोटी। अकलमंद लड़के ने रोटी और पानी से अपने पेट को भरा और प्यास को बुझाया अहमक लड़के ने शराब की लाल रंगत और मिश्री की मिठास जो देखी बहोत रगबत से उनको पीया और खाया।"

ओरिएन्ट फेबुलिस्ट की ३७ पृष्ठों की विद्वतापूर्ण भूमिका में डॉ॰ गिलकृस्त ने अपने भाषा लिपि संबंधी विचारों को अभिव्यक्त करते हुए तत्कालीन आलोचकों को उत्तर दिया है कि "ब्रिटिश भारत की देशीय भाषा हिन्दोस्तानी" हो सकती है। उनका विरोध संस्कृत, फारसी से नहीं था। वे हिन्दुस्तानी की नींव दृढ़ करने के लिए संस्कृत आदि भाषाओं की भिज्ञता पर बल देते थे। वे शासन की भाषा हिन्दुस्तानी को ही बनाना चाहते थे।" अनेक यूरोपीय लेखकों ने भी हिन्दुस्तानी के संबंध में अपने विचार दिए और उन्होंने हिन्दुस्तानी से संबंधित पुस्तकों की रचना भी की है। मेजर इ. एच. रोजर्स ने एक पुस्तक "हिन्दुस्तानी कैसे बोलें (हाउ टू स्पीक हिन्दुस्तानी)' लिखी है; ①जिसमें "हिन्दुस्तानी" के विषय में उनके विचार का सार यह है-- "हिन्दुस्तानी मिश्र भाषा है -- हिन्दुओं की संस्कृत और विदेशी मुसलमानों की अरबी और फारसी के मिश्रण से बनी। हिन्दू इसे हिन्दी कहते और मुसलमान उर्दू । हिन्दी में संस्कृत शब्दावली, उर्दू में अरबी फारसी। हिन्दी की लिपि देवनागरी, उर्दू की फारसी ।"

हिन्दी एवं हिन्दुस्तानी की यह विवादग्रस्त समस्या उस समय इतनी महत्त्वपूर्ण हो गई थी की इसका समाधान निकालना असंभव दीख पड़ता था। वास्तव में यह विवाद "हिन्दी-हिन्दुस्तानी" विवाद न होकर "हिन्दी-उर्दू" विवाद बन गया था। उस समय तक हिन्दी कई नामों से जानी जाती थी-- भाषा, हिन्दवी, हिन्दुई, हिन्दी, खड़ी बोली और नागरी । इसी प्रकार हिन्दुस्तानी या उर्दू को "हिन्दुस्तानी,उर्दू रेख्ता और दक्खिनी" के नाम से पुकारा जाता था। आलोच्य काल में पाश्चात्य लेखकों ने हिन्दुस्तानी के संबंध में जो प्रयोग किए, उसके कुछ और उद्धरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इन उद्धरणों से उस समय विदेशियों को हिन्दी सीखने के कार्य में होने वाली कठिनाइयों का तो पता चलता ही है, साथ ही यह भी पता चलता है कि सरकारी काम-काज में इसके प्रयोग को बढ़ाने के लिए किस प्रकार शब्दावली एवं वाक्यांशों का निर्माण किया जा रहा था। इंगलैंड एवं यूरोप के अन्य देशों से ईसाई मिशनरी के रूप में या ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नौकरी के अतिरिक्त डाक्टरी आदि पेशों के लिए भारत आए विदेशियों का सम्पर्क जनता एवं तत्कालीन अदालतों से होता था। उन्हें इस सिलसिले में बातचीत के अतिरिक्त पत्र व्यवहार आदि के भी अवसर मिलते थे। डॉ॰ रेनकिंग, लेफ्टिनेंट कर्नल, इण्डियन मेडिकल सर्विस, बोर्ड आफ इक्जामिनर्स, फोर्ट विलियम के सचिव थे। उन्होंने फारसी और रोमन लिपि में "हिन्दुस्तानी गाइड" नामक एक पुस्तक की रचना की, जो विशेषकर मिलिट्री अफसरों तथा चिकित्सा क्षेत्र में लगे अंग्रेज डाक्टरों के उपयोग के लिए तैयार की गई थी। उक्त पुस्तक में (पृष्ठ २२२) बोलचाल की वाक्यावली एवं अर्ज़ियों के नमूने हैं :-

१ - दैनिक जीवन में व्यवहृत वाक्यावली

"तुम मेरे बंगले को पहचानते हो, गिरजा घर से थोड़ी दूर है तुम आगे जाओ, हम पीछे से आएंगे,

---

① हाउ टू स्पीक हिन्दुस्तानी - मेजर इ॰ एच॰ रोजर्स (पृष्ठ सं॰ ५)

डाकखाना कितनी दूर है। यहाँ से कोई एक मील दूर''

२- मिलिट्री शब्दावली

''हमारी फौज के बहुत से जवान काम आए, तीन रोज की रसद साथ लिए हुए थे।''

३- चिकित्सा संबंधी वार्तालाप

''मैं लड़कपन में गोदा गया। अच्छा अपन बाजू और निशान दिखाओ। फिर टीका लगाना पड़ेगा, टीका लगाने का नश्तर दे देना उन दोनों रंगरूटों को बुलाओ, कपड़ों को उतारो, उसका कद जरा छोटा मालूम होता है। खबरदार कि इस चेचक वाले से कोई पलटन का शख्श मिलने न पाए ।''

४- अर्जियाँ

श्रीयुत् महाराजाधिराज राजा दौलत सिंह बहादुर के समीप में देवीसिंह जमीदार को राम-राम पहुँचे, विनती यह है कि सरकरी रिसाले के सिपाहियों ने कल के रोज मेरा बीस-५० बीघा खेत घोड़ों से चरवाय लिया और सारा खेत घोड़ों के टापुओं के पड़ने से नाकाम हो गिया अब उस खेत में कुछ भी अन्न नहीं पैदा होगा ।

ऊपर के उद्धरणों से ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि विदेशी जैसे-जैसे जनता के सम्पर्क में आते गए, वैसे-वैसे वे इस बात से अवगत होते गए कि इस देश की आम जनता का संबंध फारसी या तथाकथित ''हिन्दुस्तानी'' से उतना नहीं है, जितना बताया जाता रहा है। यही कारण है कि ''हिन्दुस्तानी'' के परवर्ती विदेशी लेखकों या शिक्षकों में से कुछ ने स्थिति को स्पष्ट करने की कोशिश भी की है। डॉ० फोर्ड्स डंकन सन् १८२३ से १८२६ ई० तक कलकत्ते में अध्यापन करते रहे और उसके बाद वे इंगलैंड के विभिन्न कालेजों में सन् १८२६ कसे १८६१ ई० तक भारतीय भाषाएं पढ़ाते रहे। उनकी पुस्तक ''ए ग्रामर आफ दि हिन्दुस्तानी लैंग्वेज'' की भूमिका से उनके द्वारा अभिव्यक्त विचार के अनुसार हिन्दुस्तानी का अर्थ उर्दू कदापि नहीं था। केपकेमैरिन से कन्याकुमारी और ब्रह्मपुत्र से सिन्धु तक हिन्दुस्तानी को ही प्रयुक्त किया जाता है-- **उसकी दो बोलियाँ हैं- एक तो मुसलमानों की, जिसे उर्दू कहते हैं, दूसरी हिन्दुओं की हिन्दी। उर्दू शब्दों और वाक्यों के लिए फारसी अरबी की आश्रित है। हिन्दी की शब्दावली देशीय है। यह संस्कृत से भी शब्द ग्रहण करती है। दोनों बोलियों के व्याकरण के नियम समान हैं। हिन्दुस्तानी का अर्थ नि:सन्देहात्मक रूप से हिन्दुस्तान की भाषा है। यह भाषा देवनागरी और फारसी लिपियों में लिखी जाती है।**

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की हिन्दुस्तानी एवं हिन्दी भाषा संबंधी प्रारंभिक एंव बाद में संशोधित धारणाओं पर सोदाहरण विचार करने के बाद यह भी आवश्यक है कि ईसाई धर्म-प्रचार-कार्य में लगे मिशनरियों के दृष्टिकोणों का भी विश्लेषण किया जाए और देखा जाए कि वे इस दिशा में स्थिति का अध्ययन एवं मूल्यांकन किस रूप में कर रहे थे। इनमें से दो एक विदेशी ऐसे भी थे, जिनका संबंध मिशनरी के साथ-साथ फोर्ट विलियम कालेज से भी था। विलियम केरी ईसाई मिशनरी तो थे ही वे फोर्ट विलियम कालेज में भी अध्यापन कार्य में अपना योगदान करते थे। हिन्दी हिन्दुस्तानी के विषय में केरी के विचार बड़े स्पष्ट हैं। ... ...कृत और बंगला का अच्छा ज्ञान रखते थे

तथा भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने के कारण उन्हें हिन्दी एवं हिन्दुस्तानी के अन्तर को समझने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। फोर्ट विलियम कालेज से संबंध होकर वे वहाँ हिन्दी-हिन्दुस्तानी के संबंध में होने वाले विकास-कार्य से भी परिचित थे। उन्होंने "न्यू टेस्टामेंट" के हिन्दी अनुवाद का कार्य हाथ में लिया और "हिन्दी" के महत्व एवं व्यापक रूप के बारे में सन् १७९५ ई॰ में ही कहा था कि "संस्कृत से उत्पन्न भाषा हिन्दी संभवत: सर्वाधिक व्यापक भाषा है।

न्यू टेस्टामेंट के प्रथम अनुवाद (१८०५) की भाषा उर्दू थी; दूसरा हिन्दी अनुवाद (१८११) था, जिसे विलियम केरी ने किया था। विलियम केरी के हिन्दी अनुवाद में "नापाक", "ज्यादा", "बीमारी", "कुदरत", "फरिश्ते" एवं "इश्तिहार" आदि शब्द मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विलियम केरी ने इन शब्दों को स्थानीय प्रयोग में देखा होगा।

इसी क्रम में मिशनरियों की ओर से खोले गए स्कूलों के लिए जो हिन्दी पुस्तकें रची जा रही थीं, उनमें प्रयुक्त गद्य के उद्धरण भी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि "हिन्दुस्तानी" के रूप में फारसी मिश्रित भाषा का रूप विदेशियों की दृष्टि में भी किस प्रकार धीरे-धीरे गौण होता जा रहा था। श्री रोवे द्वारा लिखित (१८२०) पुस्तक "मूल सूत्र" (हिन्दी स्पेलिंग बुक) का एक छोटा सा पैराग्राफ इस प्रकार है-

"वन के बीच गाछ की खोलड़ में आग होने से जैसे तमाम जंगल को जलाती है, तैसे कुपुत्र अपने कुल को जलाता है जो कानन के बीच सुगन्ध फूल रहने से जैसे सारे वन को खुशबो करता है तैसा सपूत सब कुल को सुन्दर प्रकाश करता है।" इसके पूर्व लिखित एवं प्रकाशित विलियम कैरी के अनुवाद की भाषा का एक पैरा ऊपर के पैरे से तुलनीय है।

"यिसुह मेरा चरावने हारा मेरा कुछ कमी होगा नहीं। वह घास वाले मैदान में मुझे सोलावता वा स्थिर पानी के पास मुझे चरावता है। वह मेरा प्राण फेर जिलावता है। मैं जब मौत के साये सूख सोह में जाता हूँ तब भी आफत का नहीं डरूँगा क्योंकि तू मेरे साथ तेरी छड़ी वा तेरी लाठी मुझे तसल्ली करती है।" (पृष्ठ ८६ तीसरी जिल्द १८१६)

ऊपर 'मौत के साथ", "आफत", आदि उर्दू के शब्दों का प्रयोग हुआ है लेकिन ये शब्द बोल-चाल में आ चुके थे। बाइबिल के अनुवाद की भाषा और ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा फोर्ट विलियम कालेज में सिखाई जा रही भाषा में कितना अन्तर था। एक वर्ग "हिन्दुस्तानी" को इस देश के काम-काज की भाषा समझता था, तो मिशनरी वर्ग ग्रामीण शब्दों के साथ उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग ही उपयुक्त समझता था; धर्म प्रचार के दृष्टि के कारण वे संस्कृतनिष्ठ हिन्दी से बचते थे। इसीलिए डॉ॰ अब्राहम ग्रियर्सन ने ब्रिटिश एवं फोरेन बाइबिल सोसाइटी के निमंत्रण पर एक बार बाइबिल के अनुवाद की भाषा के बारे में अपना विचार प्रस्तुत किया था -- "हिन्दी बाइबिल में अब तक घरेलू भाषा का ही प्रयोग होता आया है। संस्कृतनिष्ठ हिन्दी मध्य प्रदेश की "लिंग्वा फ्रांका" नहीं है।"

लेकिन इन्हीं विदेशियों द्वारा अनूदित कुछ अंश ऐसे भी हैं, जिनकी भाषा संस्कृत बहुल है। श्री जे॰ एच॰ बुडेन द्वारा संस्कृत से हिन्दी में अनूदित "मत परीक्षा" (इक्जामिनेशन हिन्दुइज़्म ऐण्ड क्रिश्चियानिटी) (१८५६) के एक अंश की भाषा का नमूना नीचे प्रस्तुत है :-

"हिन्दुस्तान के समस्त नगरों में काशी नगर अति प्रसिद्ध है वहाँ बड़े-बड़े राजगृह मन्दिर आदि जिनकी चोटियाँ आकाश को छू रहीं हैं अत्यन्त सुन्दर और शोभायमान बनी हैं। उसमें बड़े-बड़े श्रीमंत लखपति करोड़पति वास करते हैं और उसके महापंडितों का यश सारे संसार में फैल गया है।"

इस हिन्दी उद्धरण से यह स्पष्ट हो रहा है कि हिन्दी गद्य का क्रमिक विकास जारी था। इसी क्रम में १८२३ में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित "एन एपोलाजी फार फीमेल एजुकेशन" का एक उद्धरण इस प्रकार है :-

"अब भी परतक्ष देखते हैं जो इंगलैंड की रंडियों के सहारे से लड़कियों के पढ़ाने के लिए जो-जो चटसाल हुअे हैं उन्होंने जो-जो कन्या पाठ आरंभ किया है उन्हीं में से कोई अेक बरस में और कोई डेढ़ बरस में लिखना-पढ़ना अच्छी भाँति सिखा है ....।"

इस प्रकार यह द्रष्टव्य है कि शब्दों के चयन एवं प्रयोग में दिन पर दिन सावधानी तो बरती जाती रही थी, लेकिन विदेशी यहाँ की भाषा की प्रकृति से पूर्णत: परिचित हो नहीं पाते थे और यही कारण है कि उनके गद्य में कहीं-कहीं हास्यास्पद प्रयोग मिलता है, जैसे ऊपर "इंगलैंड की रंडियों" शब्द का प्रयोग भद्र महिला (इंगलिश लेडीज) के लिए किया गया है। शब्दों के निश्चित अर्थ की जानकारी न होने के कारण ही ऐसे प्रयोग किए गए ।

कहने का तात्पर्य यह है कि विदेशियों में फोर्ट विलियम कालेज एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी- दोनों के प्रतिनिधियों एवं कार्यकर्ताओं के दृष्टिकोण भिन्न थे। श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने अपने शोध-ग्रंथ १९वीं शताब्दी (पूर्व) में हिन्दी गद्य साहित्य का विकास (डी.एच.पी.एल.एन.सी.) (पृष्ठ २०५) में जो विचार व्यक्त किया है, उसका सारांश यह है कि स्पष्टत: फोर्ट विलियम कालेज ने हिन्दुस्तानी के प्रयोग को वरीयता दी क्योंकि उनके विचार से हिन्दी की तुलना में हिन्दुस्तानी अधिक व्यापक रूप में समझी जाती थी। लेकिन यह ध्यान देने की बात है कि मिशनरियों ने लोगों के साथ अपने सम्पर्क के ज़रिए इस बात को विधिवत् मान्यता दी कि हिन्दी अनेक प्रकार की विविधताओं के साथ बिहार से दिल्ली तक माध्यम के रूप में स्वीकृत की जाती है ।

विदेशियों द्वारा प्रस्तुत हिन्दी गद्य के विविध स्वरूपों की उपर्युक्त समीक्षा के बाद तत्कालीन भारतीय लेखकों की कृतियों की तरफ ध्यान जाना स्वाभाविक है। उस समय हिन्दी में प्रेस आदि की व्यवस्था न होने से आज की तरह प्रकाशकों की सुविधा भी नहीं थी। धार्मिक कथाओं का आयोजन ही ऐसा अवसर होता था, जब कोई व्यक्ति गद्य में संस्कृत के श्लोकों का अर्थ प्रस्तुत करता । अत: यह अर्थ प्राय: स्थानीय बोलियों में ही प्रस्तुत किया जाता था। प्रेस की सुविधा के अभाव में हस्तलिखित ग्रंथों की संख्या भी न्यूनतम होती थी। उस समय सामान्य प्रयोग के लिए संत एवं भक्त कवियों के काव्य तथा धार्मिक ग्रंथों के अनुवादकों के अतिरिक्त उनकी भाषा टीका प्रस्तुत करने वाले पंडितों की रचनाएँ भी होती रही हैं, लेकिन टाइपिंग या प्रेस की कोई सुविधा न होने से हस्तलिखित प्रतियों के अधिक से अधिक हाथों में सुलभ होने तथा उनके प्रचार-प्रसार के प्रश्न का समाधान एवँ दुर्गम कार्य था। फिर भी हिन्दी में रचनाएँ होती थीं। हिन्दुस्तानी हिन्दवी, हिन्दी एवं हिन्दुई आदि के झगड़े का समाधान आप ही आप निकल रहा था । इसकी पूर्व पीठिका लल्लू लाल एवं सदल मिश्र से पहले के लेखक मुंशी सदासुखलाल एवं इंशा

अल्ला खाँ तैयार कर रहे थे। मुंशी सदासुख लाल ने उर्दू में भी पर्याप्त रचनाएँ की थी। वे उर्दू से हिन्दी के क्षेत्र में आए थे। उनकी हिन्दी अरबी-फारसी शब्दावलियों से रहित होने के कारण शुद्ध हिन्दी कही गई है। मुंशी जी ने हिन्दी को भाषा कहा है "भाषा" का तात्पर्य संस्कृत के तत्सम शब्द मिश्रित हिन्दी से है। स्पष्टत: ऐसी भाषा हिन्दुस्तानी से भिन्न होगी। मुंशी जी के गद्य का एक नमूना नीचे प्रस्तुत है :- "यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिए कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका सतोवृति हो, वह प्राप्त हो। और उस निज स्वरूप में लय हूजिये। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कह के लोगों को बहकाइये और फुसलाइये और असत्य छिपाइये।"

उनकी भाषा पंडिताऊपन से युक्त है। साथ ही उर्दू शैली का आभास "कहाचाहिए और हूजिए" में है। लेकिन इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि मुंशी जी के गद्य में भावी खड़ी बोली के लक्षणों का आभास मिलता है। मुंशी जी का समय १८वीं शताब्दी के अन्त तथा १९वीं शताब्दी के प्रारंभिक चतुर्थांश के बीच का है।

आलोच्याधीन लेखक सदल मिश्र आदि के समकालीन लेकिन उनके दिवंगत होने कैसे बहुत पहले दिवंगत हुए लेखक इंशा अल्ला खाँ उर्दू के सिद्ध लेखक थे। ये दोनों लेखक दिल्ली के निवासी थे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि यद्यपि लल्लू जी लाल एवं सदल मिश्र ने हिन्दी गद्य की अनूदित एवं अन्य रचनाएँ जॉन गिलक्रुस्त की आज्ञा पर प्रस्तुत कीं, लेकिन इंशा अल्ला खाँ ने "रानी केतकी की कहानी" की रचना अपने अन्त:करण की प्रेरणा से की। उन्होंने अपनी उक्त कृति "रानी केतकी की कहानी" के आरंभ में ही लिखा है :- "एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले । बाहर की बोली और गंवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलने वालों में से एक कोई बड़े पढ़े-लिखे पुराने धुराने डांग बूढ़े घाघ यह खटराग लाए। सिर हिलाकर मुंह थुथाकर, नाक-भौं चढ़ाकर, आँखे फिराकर लगे कहने यह बात होती दिखाई नहीं देती। हिन्दवीपन भी न निकले और भाषापन भी न हो। (रानी केतकी की कहानी - पृष्ठ २) इंशा अल्ला खाँ के उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि "हिन्दवीपन न निकलने देने" से उनका तात्पर्य संभवत: "हिन्दुस्तानी" के अनुसार "हिन्दवी" शब्दों के स्थान पर फारसी या उर्दू के शब्दों को न रखना है और साथ ही बोलियों के शब्दों से बचना है। इसे और भी स्पष्ट शब्दों में यों कहा जा सकता है कि वे अपनी प्रस्तावित गद्य-रचना को अरबी-फारसी, ब्रज-अवधी एवं संस्कृत के शब्दों से मुक्त रखना चाहते थे। अब हम इसी परिप्रेक्ष्य में उनकी उक्त रचना के एक गद्यांश में प्रयुक्त शब्दावली की अध्ययन करें और देखें कि उनके गद्य का क्या स्वरूप है। रानी केतकी की कहानी की कुछ पंक्तियाँ इस संदर्भ में प्रस्तुत हैं :-

"यह बात सुनकर वह जो लाल जोड़े वाली सब की सिरधनी थी, उसने कहा हां जी बोलियाँ ठोलियाँ न मारो और इनको कह दो जहाँ जी चाहे अपने पड़ रहें और जो कुछ खाने को मांगे, इन्हें पहुँचा दो। घर आए को आज तक किसी ने मार नहीं डाला। इनके मुँह का डौल तमतमाए, और होंठ पपड़ाए और घोड़े का हाँफना और जी का काँपना और ठंढ़ी सांसें भरना और निढ़ाल हो गिर पड़ना इनको सच्चा करता है। बात बनाई हुई और सचौटी की कोई छिपती नहीं पर हमारे इनके बीच कुछ और

कपड़े लत्ते की कर दो।''

इस रचना को देखने से यह पता चलता है कि भाषा पूर्णतः कृत्रिम है। ''बोलियाँ ठोलियाँ'', ''तमतमाना'', ''पपड़ाना'', निढ़ाल हो गिर पड़ना'' ''एवं सचौटी'' के साथ ''कपड़े-लत्ते'' आदि शब्द उर्दू के न होकर भी उर्दू का आभास देते हैं और भावी खड़ी बोली के निकट प्रतीत होते हैं। इंशा अल्ला खाँ के गद्य के इस कृत्रिम प्रयोग का निर्वाह आगे नहीं हो सका।

मुंशी सदासुख लाल एवं इंशा अल्ला खाँ के गद्यांशों के विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि जिस प्रकार विदेशी लेखकों में से फोर्ट विलियम कालेज के प्रोफेसर एवं उनके सहयोगी ''हिन्दुस्तानी'' को जन भाषा मान फारसी-शब्द बाहुल्य भाषा लिख रहे थे और ईसाई मिशनरी विभिन्न बोलियों के घरेलू शब्दों का प्रयोग कर बाइबिल का अनुवाद प्रचार-प्रसार की दृष्टि से कर रहे थे, उसी प्रकार उर्दू के लेखकों के मन में एक तरफ फारसी शब्द-बाहुल्य भाषा उर्दू की सेवा की चाह थी, दूसरी ओर नई पीढ़ी के लिए संस्कृत एवं बोलियों के शब्दों से बचकर प्रचलित भाषा गढ़ने की आतुरता थी। मुंशी सदासुख लाल की भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली है, तो ''खाँ'' के गद्य में फारसी से प्रभावित मुहावरेदार भाषा का आभास है।

डा॰ उदय नारायण तिवारी ने अपने ग्रन्थ ''हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास'' (पृष्ठ १९०-१९३) में डा॰ ग्रियर्सन के मत की कठोर आलोचना करते हुए लिखा है--

''यह परिभाषा सर्वथा काल्पनिक है। उत्तरी भारत में हिन्दुस्तानी के रूप में कभी कोई ऐसी सर्वमान्य भाषा अस्तित्व में नहीं आई जिसका हिन्दू-मुसलमान समान रूप से व्यवहार करते थे और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती थी, ग्रियर्सन ने हिन्दी को हिन्दुस्तानी की शैली अवश्य माना, किन्तु उन्होंने न तो हिन्दी शब्द की निरूक्ति ही दी और न हमारी भाषा के इस नाम की प्राचीनता के संबंध में ही विचार किया ।''

डा॰ उदय नारायण तिवारी की दी गई उक्ति एक कटु सत्य है कि उत्तरी भारत में हिन्दुस्तानी के रूप में कभी कोई ऐसी सर्वमान्य भाषा अस्तित्व में नहीं आई। अतः यह नाम विदेशियों की कल्पना की उपज है ।''

डा॰ चटर्जी उपरोक्त हिन्दुस्तानी के पाँच रूप स्वीकार करते हैं ①

१- उर्दू

२- साधु हिन्दी या नागरी हिन्दी

३- हिन्दुस्थानी (हिन्दुस्तानी)

अर्थात् खड़ी बोली का वह रूप जिसकी शब्दावली में उर्दू तथा नागरी हिन्दी दोनों ही शब्दावलियों

---

① भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी - डा॰सुनीति कुमार चटर्जी (पृष्ठ १७१-७२)

का सुष्ठु समन्वय रखा गया है। इसमें फारसी-अरबी उपादान भी सम्मिलित हैं और साथ ही संस्कृत शब्द भी प्रयुक्त होते रहते हैं। इसे हम रोज़ के प्रत्यक्ष जीवन के व्यवहार की हिन्दी कह सकते हैं जो अत्यन्त संस्कृत पूर्ण नहीं है।

४- प्रादेशिक हिन्दुस्तानी-- इसमें पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा पूर्वी पंजाब के क्रमश: रूहेलखण्ड, मेरठ, अम्बाला तथा उनके निकटवर्ती प्रदेश करनाल, रोहतक, पेप्सु के कुछ भाग तथा जमुना की पश्चिमी तट पर के लगभग सारे दिल्ली में बोली जाने वाली बौगरू भी सम्मिलित है।

५- बाजारू हिन्दी या बाजारू हिन्दुस्तानी या आम जनता को हिन्दुस्तानी जो उर्दू या हिन्दी का सरलीकृत रूप है, डॉ॰ चटर्जी के शब्दों में "इस प्रकार हिन्दी, हिन्दुस्तानी (हिन्दुस्थानी) तथा उर्दू कहने पर एक भाषा के उपर्युक्त विभिन्न रूपों का बोध होता है।"

स्व॰ चटर्जी के उपर्युक्त वर्गीकरण में "हिन्दुस्थानी अर्थात् खड़ी बोली" की जो श्रेणी निर्धारित की गई है, वह बहुत ही उपयुक्त, जनोपयोगी एवं व्यावहारिक है। इस वर्ग की परिभाषा में "उर्दू तथा नागरी हिन्दी दोनों ही शब्दावलियों के सुष्ठु समन्वय", फारसी-अरबी उपादान का सम्मिलित किया जाना, एवं संस्कृत के शब्दों के प्रयोग आदि के वाक्यांशों के उल्लेख के साथ इसके रोज के प्रत्यक्ष जीवन को व्यवहार से जोड़ने की बात डॉ॰ चटर्जी जैसे शीर्षस्थ भाषा वैज्ञानिक की लेखनी से ही संभव थी।①

यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन के पूर्व लिखित रूप में गद्य की रचनाएँ बहुत कम होती थीं, फिर भी जनता को हिन्दी में लिखी कविताएँ ही कंठस्थ थीं। पं॰ श्री नारायण चतुर्वेदी ने अपनी "आधुनिक हिन्दी का आदिकाल"पुस्तक में लिखा है कि "उन दिनों यहां के ग्रामीण इतने अपढ़ और असंस्कृत लहीं थे, जितने कुछ लोग उन्हें समझते थे या आज भी समझते हैं। इसी रीति से रामचरित मानस छापेखाने के अभाव में भी उस प्रचारहीन युग में सारे उत्तर भारत में फैलकर जनता का कंठहार हो गया था।" इस बात की ओर शायद ही किसी विदेशी लेखक का ध्यान गया। विदेशी विद्वानों में से जिन लोगों ने भी हिन्दी व्याकरण लिखे, उनमें डॉ॰ एस॰ एच॰ कैलाग के व्याकारण का स्थान सर्वोपरि है। श्री कैलाग सन् १८६४ से १८७२ तक इलाहाबाद में थियोसोफिकल ट्रेनिंग स्कूल में पढ़ाते रहे।

डा॰ कैलाग ने वास्तविकता को समझा और यह अनुभव किया कि हिन्दी गद्य का निर्माण तुलसी, सूर एवं कबीर की हिन्दी के आस-पास की शैली पर ही आधारित होना चाहिए था। रामचरित मानस का पठन-पाठन उत्तर भारत में घर-घर होता रहा है। अत: कैंलाग ने हिन्दी के संबंध में कहा है कि "मुसलमानों"तथा सरकारी दफ्तरों के कारण लोग फारसी-मिश्रित हिन्दी का (जिसे उर्दू भी कहते हैं) व्यवहार करते हैं। लेकिन उर्दू को सरकारी मान्यता होने के कारण हिन्दी महान जन समुदाय की वास्तविक देशी भाषा होते हुए भी, उपेक्षित हो गई। विदेशी भी उर्दू का अध्ययन करने लगे। कई विद्वान भ्रम में पड़ गए और विश्वास करने लगे कि उत्तरी भारत के मुसलमानों के सदृश्य हिन्दुओं की भाषा उर्दू है।"

फोर्ट विलियम कालेज में जिस गद्य का निर्माण किया जा रहा था, उसका आधार संस्कृत फारसी एवं ब्रज भाषा में लिखित पुस्तकें थीं। इस प्रकार रचित गद्य कृतियों का उपयोग इंगलैंड से आए सिविल

---

① भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी - डा॰सुनीति कुमार चटर्जी (पृष्ठ १७१-७२)

सर्वेन्टों को हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा का ज्ञान देना था। फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष जॉन गिलक्रस्त १ नवम्बर १८०० से जनवरी १८०४ तक कार्यरत रहे और उसके बाद उन्होंने बीमारी के कारण त्याग-पत्र दे दिया। उनके बाद कैप्टेन माउन्ट (जनवरी १८०१ से २० फरवरी १८०८) कैप्टेन जॉन विलियम टेलर (२२ फरवरी १८०८ से मई १८२३) एवं कैप्टेन विलियम प्राइस (२३ मई १८२३ से दिसम्बर १९३१) हिन्दुस्तानी विभागाध्यक्ष रहे। इन प्रोफेसरों की सहायता के लिए कई स्थानीय पंडित एवं मुंशी थे, इनमें से कुछ स्थायी थे और शेष अस्थायी। फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के तुरन्त बाद ही १८०१ ई॰ में चौदह मुंशियों की नियुक्ति हुई। कालेज में मीर बहादुर उली मुख्य मुंशी थे तथा द्वितीय मुंशी तारणी चरण मित्र थे। इन दोनों के अतिरिक्त शेष सभी अधीनस्थ (सबोर्डिनेट) मुंशी के पद पर थे, फरवरी १८०२ में "भाषा मुंशी" के पद का प्रावधान किया और उक्त पद पर लल्लू जी लाल (लल्लू लाल) कवि की नियुक्ति की गई। वे फारसी से हिन्दुस्तानी में अनुवाद कार्य में पहले से ही सहायता-कार्य कर रहे थे। वे इस प्रकार की अनूदित रचनाओं का नागरी अक्षरों में प्रकाशन में भी सहयोग दे रहे थे। इस कालेज में "पंडित" के रूप में जो नियुक्तियाँ हुईं, उनमें "हिन्दी पंडित" या "हिन्दी मुंशी" के रूप में सदल मिश्र का नाम सबसे पहले आता है। श्री सुन्दर पंडित एवँ लोचन पंडित नागरी लेखक थे। हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी शब्द कोष के निर्माण में हंटर की सहायता करने वाले मुंशी इन्द्रेश्वर (१८१५-१८१९), नव सिंह (१८१८-१८२१), गंगा प्रसाद शुक्ल (१८२३-१८२७) और ख्याली राम (१८२७-१८२९) थे। इनमें से अधिकांश पंडित उत्तर एवं उत्तर पश्चिम प्रदेशों के थे। वे अपने-अपने प्रोफेसरों की तो सहायता करते ही थे, विद्यार्थियों को पढ़ाते भी थे और उनके लिए हिन्दी में "अभ्यास-पाठ" तैयार करते थे।

जैसा कि इससे पहले कहा गया है, कम्पनी की भाषा-नीति निर्धारित करने में सबसे अधिक हाथ जॉन गिलक्रस्त का ही था। जॉन गिलक्रस्त ने १८०२ में "हिन्दी स्टोरी टेलर"① नामक पुस्तक की रचना की। इससे पहले १८०१ में भी हिन्दी एवं हिन्दुस्तानी में कुछ अभ्यास-पाठ तैयार किए गए थे। गिलक्रस्त द्वारा "हिन्दुस्तानी" में रचित पाठ का नमूना इस प्रकार है :- (पृष्ठ ४३ डी॰एच॰पी॰एल॰)

"इस लड़की से दोनों सखीआं पूछने लगी ओं तू जो इन दरखतों को सींचती रहती है क्या उस बराहमन को ये तुझसे बहुत पेआरे हैं तू तो उनको जान से भी चाहिती ज्िआद: है से तुझको उन्होंने क्यूँ इनकी ख़िदमत को मुकरर कीआ है खुदा ने तुझे यिह सूरत वो शकल दी है कि कोई हुस्न वो अदा में तेरे मुकाबिल नहीं।"

गिलक्रस्त की "हिन्दी" की रचना के एक-दूसरे अभ्यास पाठ का उद्धरण इस प्रकार है-- (पृष्ठ ४४ डी॰एच॰पी॰एल॰)

"सुना है जो अेक भाट निपट दालिद्री था। अेक दिन उसकी जोरू बोली जो कहीं कुछ हाथ आवे तो यिह लड़की बेआही जावे। क्यूंकि मरना जीना साथ ही लग रहा है। जो साम्हने विबाह दे तो बहुत अच्छा। क्या जानीअे हमारे पीछे कैसी बन पड़े।"

---

①हिन्दी स्टोरी टेलर -जॉन गिलक्रस्त (डी॰ एच॰ पी॰ एल॰) (पृष्ठ ४५)

इन दोनों उद्धरणों में प्रथम उद्धरण का गद्य "पक्की हिन्दुस्तानी" का तथा द्वितीय खड़ी बोली हिन्दी का नमूना है। प्रथम अंश में "पेआरे", "सखिआ" जैसे फारसी के तथा द्वितीय में "जोरू", "बेआहे" एवं "बिबाह" जैसे तद्भव शब्द हैं। इसी क्रम में गिलकृस्त की "हिन्दुई" गद्य का एक नमूना इस प्रकार है :-

"अेक राजा ने अपना लड़का किसी जोंतिकी को सौंपा, जो इसे जोतिक सिखाओ जब उसमें यिह पूरा हो तो मेरे पास लाओ- पंडित ने बड़े प्यार और दु:ख से जितनी बातें उसकी थीं सो उसे अच्छी ढब से सिखाई- जब देखा वुह लड़का बड़ा गुनी हुआ तब राजा के साम्हने जाकर कहा महाराज आपका बेटा अब जोतिक में चौकस हुआ जब चाहिए उसे जांच लीजिए।"

यह स्पष्ट है कि ऊपर का उदाहरण तद्भव शब्द बाहुल्य के कारण "खड़ी बोली हिन्दी" है, लेकिन गिलकृस्त ने इसे भी "हिन्दुस्तानी" कहा। कालेज के प्रारम्भ से वहाँ "हिन्दी", "हिन्दुस्तानी" एवं हिन्दुई" की रचनाओं के नमूने मिलते हैं।

बात यह थी कि विदेशी इस देश में प्रचलित क्षेत्रीय बोलियों की शताधिक संख्या से भ्रमित थे और सबसे बड़ी कठिनाई उन्हें उनके अंतर को समझने में होती थी। वे यह नहीं समझ पाते थे कि इस देश में समान रूप से व्यवहृत भाषा का स्वरूप क्या है तथा उसका नाम क्या हो। बोली (डायलेक्ट) एवं भाषा (लैंग्वेज) के भेद को नहीं समझने के कारण ही देश में लिखित या बोल-चाल के रूप में व्यवहृत भाषाओं के अनेक नाम - हिन्दी, हिन्दुई, हिन्दवी,रेख्ता, भाषा, उर्दू एवं हिन्दुस्तानी आदि होते रहे। इनकी उलझन में समान रूप से व्यवहृत भाषा का रूप स्पष्ट ही नहीं हो पा रहा था। विदेशियों के सामने एक और कठिनाई यह थी कि उनकी दृष्टि में मराठी, पंजाबी, बंगला, एवं अन्य भारतीय भाषाएँ भी "हिन्दी" के अन्तर्गत ही थीं। वे हिन्द की सभी भाषाओं को हिन्दी समझते थे। इसी प्रकार उन्होंने "हिन्दुस्तान" शब्द से "हिन्दुस्तानी" शब्द बनाकर अदालतों में प्रयुक्त एवं प्रचलित भाषा का नाम "हिन्दुस्तानी" दे दिया था।

ऐसी परिस्थिति में अब समय की मांग यह थी कि प्रचलित भाषाओं के भिन्न-भिन्न रूपों में से उस "मानक" रूप की पहचान की जाए जिसका प्रयोग सामान्य जनता के सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक कार्यों में होता हो या हो सकता हो जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, विदेशी भी इस बात से सहमत हो चुके थे कि "हिन्दुस्तानी" जिसे वे जन भाषा समझते थे, उपर्युक्त "मानक" भाषा का स्थान नहीं ले सकती। अब यह कार्य इसी देश के किसी निष्पक्ष, प्रज्ञायुक्त एवं जन भाषा से सतत संपृक्त सुधी द्वारा ही संभव था। उक्त व्यक्ति के लिए यह भी आवश्यक था कि वह किसी दुराग्रह से ग्रस्त न हो तथा आवश्यकता पड़ने पर उस रूप को अपनी लेखनी से प्रस्तुत कर सकता हो। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है; फोर्ट विलियम कालेज में इसी आवश्यकता ने "सदल मिश्र एवं लल्लू लाल" जैसे परिश्रमी एवं धुन के पक्के व्यक्तियों को खोज निकाला। फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष जॉन गिलकृस्त कालेज में लगभग चार वर्षों तक रहे और सदल मिश्र एवं लल्लू लाल इनके पूरे कार्य-काल में इनके सहयोगी के रूप में कार्यरत रहे। वे इस समस्या पर उनके साथ विचार-विमर्श करते ही रहते थे और अनुमानित है कि एक मानक भाषा के स्वरूप के निर्धारण की समस्या भी उनकी बातचीत का विषय रहती होगी। फोर्ट विलियम कालेज के रिकार्ड से यह भी पता चलता है कि बाद में विभिन्न

भाषाओं एवं बोलियों के अध्यापन के लिए अलग-अलग जिन भाषा मुंशियों की नियुक्ति की गई उनमें श्री इन्द्रेश्वर सन् १८१५ से १८१९ तक ब्रज भाषा एवं पूर्वी बोलियों के ही शिक्षक रहे।

इन्हीं मुंशियों एवं पंडितों की नियुक्तियों से "हिन्दुस्तानी" की तुलना में जन-भाषा के प्रयोग के अधिक निकट किसी एक बोली की आवश्यकता की कल्पना की जा सकती है। मेरा विश्वास है कि जॉन गिलक्रस्त ने ऐसी बोली को अंग्रेजी में "स्टैंडिंग डायलेक्ट" कहा और उनके द्वारा प्रस्तुत व्याख्या के आधार पर किसी भाषा पंडित या मुंशी ने उस मानक बोली का नाम "खड़ी बोली" दिया। प्रारंभ में खड़ी बोली शब्द का प्रयोग जिन ग्रंथों में मिलता है वे हैं :-

१- प्रेम सागर (१८०३)

२- "द हिन्दी स्टोरी टेलर" (खण्ड दो १८०३)

३- चन्द्रावती (१८०३)

इस प्रकार ऊपर लिखे तीनों ग्रंथों से यह प्रकट होता है कि इन तीनों पुस्तकों में ही इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम हुआ। इसके बाद सन् १८०५ में सदल मिश्र ने अपनी दूसरी पुस्तक "रामचरित" की भूमिका में भी इस शब्द का प्रयोग किया । "खड़ी बोली शब्द के प्रथम प्रयोग के विषय में हमें गहराई से सोचना है कि इसके नामकरण या स्वरूप-निर्धारण में इन तीनों में से किस व्यक्ति का क्या योगदान है। इसके लिए इन लेखकों द्वारा दिए गए लक्षणों एवं भाषा के उदाहरणों की जाँच करनी होगी। प्रेम सागर के रचयिता श्री लल्लू लाल ने इसे अरबी फारसी के शब्दों से रहित दिल्ली आगरे की खड़ी बोली कहा, जबकि सदल मिश्र ने चन्द्रावती की भूमिका में कहा है कि --

(क) देववाणी से कोई समझ नहीं सकता, इस कारण खड़ी बोली में अनुवाद किया । (चन्द्रावती)①

"रामचरित" की भूमिका के अनुसार- "गिलक्रस्त साहब ने ठहराया और एक दिन आज्ञा की कि अध्यात्म रामायण को ऐसी बोली में कहो जिसमें फारसी-अरबी न आवे तब मैं इसको खड़ी बोली में करने लगा।"

गिलक्रस्त के अनुसार :- खड़ी बोली को

(क) "हिन्दुस्तानी शैली का एक विशिष्ट मुहावरा"

(ख) "हिन्दुस्तानी की शुद्ध हिन्दुस्तानी शैली"

(ग) "सिर्फ अरबी-फारसी के प्रत्येक शब्द को निकालते हुए हिन्दुस्तानी की शुद्ध हिन्दुस्तानी शैली कहा गया।"

उपर्युक्त उद्धरणों में जो समान कथन है, वह अरबी-फारसी के शब्दों को निकालने का है। यह आश्चर्य है कि पं॰ सदल मिश्र एवं लल्लू लाल ने "खड़ी बोली" को "हिन्दुस्तानी की शैली" नहीं कहा। बात यह थी कि जॉन गिलक्रस्त के भाषा सर्वेक्षण का मानदण्ड "हिन्दुस्तानी" था । यही जॉन गिलक्रस्त

---

① सदल मिश्र ग्रंथावली - पृष्ठ ५

की भ्रांति थी। सदल मिश्र एवं लल्लू लाल जी की परिभाषा में मात्र यही अन्तर है कि प्रथम इस भाषा में अनुवाद करने का कारण लोगों के देववाणी (संस्कृत) न समझना बताते हैं। जबकि दूसरे उसके लिए कारण न बताकर सिर्फ "दिल्ली-आगरे की खड़ी बोली" शब्दों का प्रयोग करते हैं।

ऊपर के दोनों कथनों में से सदल मिश्र द्वारा "चन्द्रावती" की भूमिका में अभिव्यक्त "कारण" उनके उद्देश्य की सत्यता को प्रमाणित करता है कि उन्होंने अनुवाद के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया वह जन भाषा थी और यही तथ्य इस बात के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि "खड़ी बोली" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग उन्होंने ही किया। स्पष्ट है कि लल्लू जी लाल ने इसे सिर्फ "खड़ी बोली" न कहकर, दिल्ली-आगरे की "खड़ी बोली" कहा ।

श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने इस संबंध में मिस्टर टी॰जी॰बेली॰ का उद्धरण देते हुए यह प्रमाणित किया है कि ① जॉन गिलकृस्त ने "खड़ी बोली" नाम को लल्लू लाल एवं सदल मिश्र से सीखा और उनके साथ नित्य विचार-विमर्श के दौरान इसका सही अर्थ समझने का अवसर उन्हें मिला। जॉन गिलकृस्त, लल्लू लाल एवं सदल मिश्र के साथ चार वर्षों तक फोर्ट विलियम कालेज में कार्यरत रहे। उनके (बेली के) अंग्रेजी में लिखित वाक्यों से सदल मिश्र के संबंध में इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि "खड़ी बोली" के नामकरण में उनका कितना योगदान था अर्थात् वे "खड़ी बोली" के प्रयोग की वरीयता को प्रतिष्ठा में सदल मिश्र एवं लल्लू लाल के सहभागी हैं। ऊपर के वाक्य में "वरीयता की प्रतिष्ठा" (आनर आफ प्रिआरिटी) की दृष्टि से सदल मिश्र का नाम पहले एवं लल्लू लाल का बाद में रखे जाने से श्री बेली के इस आशय का यह अर्थ है कि सदल मिश्र ने ही "खड़ी बोली" शब्द प्रस्तावित किया । दोनों ही पुस्तकों के मुख्य पृष्ठ अथवा भूमिका में उनकी रचना का समय १८०३ ई॰ (१८६० वि॰ सं॰) बताया गया है।

इस संबंध में एक बात यह भी ध्यान देने की है कि सदल मिश्र की दूसरी पुस्तक "अध्यात्म रामायण" या "रामचरित" की रचना का समय १८०५ ई॰ (संवत् १८६२) है और उक्त पुस्तक की भूमिका में लेखक ने "खड़ी बोली" के संदर्भ में अनुवाद की आवश्यकता के लिए लोगों के देववाणी न समझने को कारण नहीं बता कर मिस्टर "जॉन गिलकृस्त महोदय" की आज्ञा का उल्लेख किया है-- "अब इस पोथी के भाषा करने का कारण यिह है कि मैं जो सदल मिश्र पंडित हूं मुजको पाठशाला में जो साहब लोगों के लिए कलकत्ता में हुई, संस्कृत की पोथियाँ भाषा करने को महा उदार सकल गुण निधान मिस्तर जॉन गिलकृस्त साहब ने ठहराया औ एक दिन आज्ञा की कि अध्यात्म रामायण को ऐसी बोली में करो जिसमें फारसी अरबी न आवे। तब मैं इसको खड़ी बोली में करने लगा और संवत् १८६२ (सन् १८०५) में नौ आव गवरनर वेलेजली लार्ड मारंटग साहब बहादुर के राज्य में इस पोथी को समाप्त किया औ नाम इसका रामचरित रखा पर जहाँ कहीं कठिन वेदान्त था, मैंने देखा कि इसकी भाषा सब कोई समझ न सकेगा इस कारण उसे छोड़ दिया अब गुणवानों से यिह भरोसा है कि इस पोथी के बीच जिस जगह ऊंच नीच देखें तो कृपा कर उस दोष को छिपावें और अशुद्ध को शोधें अथ कथारम्भः ८ सदल मिश्र की इस भूमिका का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि (क) कोई पाठशाला (फोर्ट

---

①स्टडीज इन नार्थ इण्डियन लेग्वेज ; लंदन १९३८- श्री टी॰जी॰ बैली (डी॰ एच॰ पी॰ एल॰) (पृष्ठ ४८)

विलियम कालेज) में उनकी नियुक्ति (ठहराया) अनुवाद (संस्कृत की पोथियाँ भाषा करने) कार्य के लिए हुई थीं और (ख) "अध्यात्म रामायण" का अनुवाद करने की आज्ञा देते समय उन्हें कहा गया कि उक्त पुस्तक का अनुवाद "खड़ी बोली" में किया जाए बल्कि उन्हें मात्र इतनी ही आज्ञा मिली थी कि इसका अनुवाद "ऐसी बोली में करो जिसमें फारसी अरबी न आवे, तब वे इसको खड़ी बोली में करने लगे।" (ग) जहाँ कहीं कठिन वेदान्त था उन्होंने (मैंने) देखा कि इसकी भाषा सब कोई समझ न सकेगा इस कारण वुसे छोड़ दिया।"①

उपर्युक्त वाक्य (ख) से यह सिद्ध होता है कि जॉन गिलक्रस्त की आज्ञा मात्र फारसी अरबी के शब्दों से बचने की थी और "खड़ी बोली" शब्द सदल मिश्र जैसे विद्वान के मस्तिष्क की ही उपज है। मिश्र जी ने अनुवाद की भाषा के लिए इस बात का भी पूरा ध्यान रखा कि भाषा सबकी समझ में आ जाए और संस्कृत के शब्दों (कठिन वेदान्त) के कारण भाषा दुरूह न होने पाय। उन्होंने संस्कृत ग्रंथ के जिस अंश को तथाकथित बोली में अनूदित करने में भाषा दुरूह या कठिन होते देखी, उस अंश का अनुवाद ही छोड़ दिया। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि वे भाषा को सर्वजन सुलभ रूप देने के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील थे।

जहाँ तक लल्लू लाल② का संबंध है, वे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "प्रेमसागर" से पहले "सिंहासन बतीसी" (१८०१), बैताल पचीसी (१८०१), शकुंतला नाटक (१८०१), माधोनल(१८०१) एवं राजनीति (१८०२) आदि पुस्तकों की रचना कर चुके थे। उपर्युक्त पुस्तकों ("राजनीति" को छोड़कर) की रचना में उनके सहयोगी के रूप में दो मुंशी मजहर अली खाँ विला तथा मिरजा काजिम अली जवाँ के नामों का उल्लेख मिलता है। उपर्युक्त सभी पुस्तकों की भाषा उर्दू के निकट "हिन्दुस्तानी" है। इन पुस्तकों की एक ओर विशेषता यह है कि ये फारसी या संस्कृत से ब्रजभाषा में रचित कृतियों की प्रस्तुति मात्र हैं। अतः इन पर मूल भाषा फारसी या ब्रजभाषा का प्रभाव होना स्वाभाविक है। "प्रेमसागर" के संबंध में स्थिति किंचित् भिन्न है। यद्यपि यह ग्रंथ भी संस्कृत से ब्रजभाषा में पद्यानुवाद रूप में प्रस्तुत पुस्तक की ही फारसी-अरबी शब्दों से रहित और दिल्ली-आगरे की तथाकथित खड़ी बोली में पुनः प्रस्तुति-मात्र है, तथापि इसमें "खड़ी बोली" का वह रूप नहीं आ सका है, जो सदल मिश्र की कृति में आ सका है। "प्रेमसागर" की भाषा "खड़ी बोली" होकर भी ब्रजभाषा के संशोधित रूप की तरह है। इसी के समकक्ष यद्यपि सदल मिश्र की भाषा में पूर्वीपन है। फिर भी उसमें प्रयुक्त संज्ञा, सर्वनाम, कारक, विशेषण, एवं क्रिया रूपों आदि से उस खड़ी बोली की पीठिका प्रस्तुत होती है, जो भारतेन्दु के समय में स्पष्ट हुई। भारतेन्दु ने अपने "हिन्दी भाषा" नामक व्याख्यान में भाषा के भिन्न-भिन्न अंगों का उल्लेख करते हुए लिखने की भाषा की अनिश्चितता तथा उसकी विविध शैलियों पर प्रकाश डाला है और लिखा है-

"भाषा का तीसरा अंग लिखने की भाषा है और इसमें बड़ा झगड़ा है, कोई कहते हैं कि उर्दू शब्द मिलने चाहिए कोई कहता है संस्कृत शब्द होने चाहिए और अपनी-अपनी रूचि के अनुसार सब लिखते

---

① सदल मिश्र ग्रंथावली - पृष्ठ ३३

② हिन्दी भाषा - पृष्ठ सं० १२ -

हैं और इसके हेतु कोई भाषा अभी निश्चित नहीं है।" पूर्व लेखकों की तुलना में भारतेन्दु की भाषा-नीति के संबंध में आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है--①

उनकी भाषा में न तो लल्लू लाल का ब्रजभाषापन आने पाया, न मुंशी सदासुख लाल का पंडिताऊपन, न सदल मिश्र. का पूर्वीपन, न राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन और न राजा लक्ष्मण सिंह का खालिसपन और आगरापन। इतने पनों से एक साथ पीछा छुड़ाना भाषा के संबंध में बहुत ही परिष्कृत रूचि का परिचय देता है।"

इस उक्ति के संबंध में लल्लू लाल के ब्रजभाषापन एवं सदल मिश्र के पूर्वीपन पर हमने ऊपर संक्षेप में विचार किया है। इस विषय में गहराई एवं सावधानी से चिन्तन-मनन करने पर यह प्रमाणित होगा कि सदल मिश्र की भाषा पूर्वीपन-युक्त होकर भी "खड़ी बोली" के भावी रूप का आभास दे रही थी। इस आशय का उल्लेख ओरियंट ?िांगमेंस, कलकत्ता (बिहार-थ्रू द एजेज) (पृष्ठ ४४-४५) में संपादक श्री आर॰ आर॰ दिवाकर② ने निम्नलिखित शब्दों में किया हैं जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है :-

"सामान्य रूप से विचार करने पर संभवत: बिहार का प्रारंभिक आधुनिक गद्य हिन्दी का भी प्रारंभिक आधुनिक गद्य है। हिन्दी के चार सम-सामयिक गद्य-लेखकों अर्थात् सदल मिश्र, लल्लू लाल, इंशा अल्ला खाँ और सदासुख लाल में प्रथम आरा के थे और प्राय: सर्वसम्मति से उस गद्य-शैली के प्रतिष्ठापक थे, जो आगे चलकर स्वीकृति हुई । सदल मिश्र तथा लल्लू लाल दोनों ही उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दी के अध्यापक और लेखक थे। द्वितीय की तुलना में प्रथम ने अधिक परिमार्जित एवं सुगठित गद्य लिखा। फोर्ट विलियम कालेज के तत्कालीन अधिकारियों ने इसका महत्व नहीं समझा या इसे स्वीकार नहीं किया, किन्तु बाद की पीढ़ियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि उनकी गलती थी।

सदल मिश्र द्वारा प्रवर्तित परिमार्जित गद्य की उपेक्षा विदेशी शासकों के उस रूख का परिचय देते हैं, जिसे कचहरियों तथा सरकारी कामकाज में व्यवहृत होने वाली भाषा के संबंध में वे भविष्य में अपनाने जा रहे थे।"

इन पंक्तियों को उद्धृत करने का प्रयोजन सदल मिश्र द्वारा प्रयुक्त गद्य के वास्तविक मूल्यांकन का साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए यह निवेदन करना है कि भाषा के स्वरूप को देखते हुए भी यही प्रमाणित होता है कि सदल मिश्र को इस बात का पूर्ण आत्मविश्वास था कि जिस भाषा का प्रयोग वे अपनी कृतियों में कर रहे हैं, वह "खड़ी बोली" अर्थात् जन सामान्य द्वारा प्रयुक्त एवं समझी जाने वाली वह भाषा होगी जिसकी जरूरत जॉन गिलकृस्त को थी। इनकी तुलना में "खड़ी बोली" के संबंध में लल्लू लाल या

---

① चिंतामणि - रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ १८९

② सदल मिश्र ग्रंथावली - भूमिका (पृष्ठ संख्या ५)

जॉन गिलक्रिस्त की उक्तियों से इस बात का आभास नहीं मिलता। वे "खड़ी बोली" के स्वरूप की मात्र परिभाषा निर्धारित करना चाह रहे थे जबकि सदल मिश्र अपनी कृतियों में खड़ी बोली का वास्तविक एवं व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए प्रयत्नशील थे।

इस संबंध में (श्रीमती) शारदा (देवी) वेदालंकार ने लंदन विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में प्रस्तुत "उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में हिन्दी गद्य साहित्य के विकास" शोध प्रबंध (पृष्ठ ४७) में जो निष्कर्ष दिया है उससे भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि "खड़ी बोली" नामकरण का श्रेय सदल मिश्र को है। उनके इस कथन का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है :-

"लल्लू जी लाल ने अपने "प्रेमसागर" की भूमिका में कहा है कि मैंने अरबी और फारसी शब्दों को छोड़कर दिल्ली और आगरे की खड़ी बोली में कहानी कही, जबकि सदल मिश्र अपनी "चन्द्रावती" की भूमिका में कहते हैं कि कुछ लोग देववाणी में होने के कारण नासिकेतोपाख्यान को नहीं समझ सकते इसलिए मैं ने इसे "खड़ी बोली" में किया। इससे यह पता चलता है कि उन्होंने (सदल मिश्र ने) हिन्दी के सर्वाधिक प्रचलित स्वरूपों को "खड़ी बोली" नाम दिया तथा उसे गद्य की साहित्यिक भाषा का एक मात्र स्वरूप बतलाया।"

"Thus Sadal Misra's language is of a higher literary standard than his colleague's with less variation in the syntax, more restraintix in the style and is altogether more classical in tone" (Page 76)

In the introduction to his "Prem Sagar", Lalluji Lal stated that avoiding Arabic an Persian words, he had told the story Dilli Agre Ki Khari Boli me, in the Khari Boli of Delhi and Agra. while Sadal Misra in the introduction to his "Chandravati" says, some people cannot understand the "Nasi ketopakhyn" because of its being in Sanskrit so I have translated it into Khari Boli. This show that he denominated the most prevalent form of Hindi as Khari Boli, and the only form of prose literary language.

***

लिपि
एवं
वर्तनी

(अध्याय - पाँच)

हिन्दी और देवनागरी लिपि का संबंध प्राण और देह का संबंध है। यह लिपि देह उसे संस्कृत से मिली है। समय-समय पर यथोचित संशोधन-परिवर्धन को स्वीकार करने के बावजूद देवनागरी लिपि क्षीण न होकर बलशालिनी होती आई है। इस लिपि की उत्पत्ति ब्राह्मी लिपि से मानी जाती है। ब्राह्मी भारत की प्राचीनतम लिपि है।

मुगल काल के राज-काल में फारसी भाषा एवं फ़ारसी लिपि का प्रयोग होना स्वाभाविक ही हैं शासक की सुविधा को ध्यान में रखते हुए फारसी शब्दों के बढ़ते प्रयोग के कारण तत्कालीन राजभाषा सामान्य जनता के लिए कठिन होती गई।

जब अंग्रेज इस देश में आये तो उनके सामने भी भाषा एवं लिपि की समस्या आई। वे चतुर थे और उनका उद्देश्य भारत में रहने वाले लोगों पर शासन करने का था। उनके लिए देवनागरी या फारसी दोनों लिपियाँ अजनबीं थी। वे दोनों ही से अपरिचित थे। उनका विचार इस दोनों भाषाओं या लिपियों से अलग अपनी भाषा अंग्रेजी एवं रोमन लिपि में काम-काज करने का था। ऐसा स्वाभाविक ही था, क्योंकि हर शासक अपनी सुविधा का ध्यान पहले रखता है। लेकिन जिस जनता पर उन्हें शासन करना था, उसकी उपेक्षा वे पूरी तरह नहीं कर सकते थे और न वे भारत की समस्त जनता को तुरंत अपनी भाषा का ज्ञान ही दे सकते थे। इसलिए उन्होंने भारत की भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना शुरू किया। अंग्रेजी की उत्पत्ति लैटिन से मानी जाती है। लैटिन तथा संस्कृत दोनों योरोपीय परिवार की भाषाएँ हैं, इसलिए अंग्रेजों में से कुछ विद्वानों ने संस्कृत का अध्ययन रोमन लिपि के सहारे शुरू किया और इसी तरह वे अन्य भाषाओं को सीखने के लिए भी रोमन लिपि को ही सबसे अधिक उपयुक्त मानते रहे।

भारतीय भाषाओं के अध्ययन में रूचि रखने वाले ऐसे अंग्रेज विद्वानों में जॉन गिलकृस्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गिलकृस्त साहब अफीम की खेती के कारबार में गाजीपुर, आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश) में कुछ दिन रहे और वे वहीं उर्दू और हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करते रहे । उन्होंने ही सर्वप्रथम हिन्दी के एक शब्द कोष की रचना की जिसमें हिन्दी और उर्दू के शब्दों के अंग्रेजी अर्थ लिखे गये हैं। यह पूरा का पूरा कोष रोमन लिपि में है। इसके अतिरिक्त फोर्ट विलियम कालेज में गिलकृस्त की अध्यक्षता में जो पुस्तकें लिखवायी गईं उनमें से अधिकांश फारसी एवं देवनागरी दोनों लिपियों में थी। ऐसी कुछ ही पुस्तकें ऐसी थीं, जिनकी लिपि मात्र देवनागरी थी और जिनमें उर्दू और फारसी के शब्दों का अभाव था। स्वयं गिलकृस्त ने १७८७ से १८०० के बीच डिक्शनरी, ग्रामर और लिंग्विस्टिक संबंधी पुस्तकें लिखीं। हिन्दवी और हिन्दुस्तानी के झगड़े में हिन्दुस्तानी के समर्थक जॉन गिलकृस्त यद्यपि फारसी लिपि के समर्थक थे, लेकिन उन्होंने रोमन लिपि में ही लिखा। सन् १८१५ में प्राइस और टेलर नामक दो अंग्रेज शासकों ने गिलकृस्त की इस भूल को समझा और इस बात पर जोर दिया कि जनता की भाषा

फारसी बहुल हिन्दुस्तानी नहीं, वरन् हिन्दुई है और इसके लिए देवनागरी लिपि अधिक उपयोगी है। सन् १८१५ से १८३७ के बीच देवनागरी लिपि का विस्तार जोरों से बढ़ा और प्राइस के समय में ही 'नागराक्षरों' के टाइप ढ़ाले गये। बाइबिल का अनुवाद पहले उर्दू में हुआ था, बाद में हिन्दी में हुआ। सन् १८०० से १८३७ के बीच देवनागरी लिपि में अनेक पुस्तकों की रचना एवं प्रकाशन हुए। इस अवधि में फोर्ट विलियम कालेज में अनेक थीसिसें पढ़ी गईं। ये देवनागरी लिपि में ही लिखी गई थीं। उनके नाम इस प्रकार है :-

(१) हिन्दुस्तानी में कार्रवाई के लिए हिन्दी जबान और जवानों का ज्यादा दरकार है। (५ ले॰ डब्लू बी वेली १८०२)

(२) हिन्दी की जुबानों की असल बुनियाद संस्कृत है (लेखक जे॰ रोमर १८०४)

(३) सती प्रथा (विलियम चैपलीन १८०३)

इसी प्रकार 'न्यू टैस्टामेंट' की देवनागरी प्रति इसी समय तैयार कराई गई । राजाराम मोहन राय के वेदान्त सूत्रों एवं महात्मा शंभू राय के समय-सागर ग्रंथ भी देवनागरी लिपि में इसी समय प्रकाशित हुए। इस प्रकार इस अवधि में हिन्दी में दर्जनों पुस्तकें देवनागरी लिपि में तैयार की गई और उनका प्रकाशन भी हुआ।

१८३७ ई॰ में मैकाले के निर्णय ने स्थिति ही बदल दी। सरकारी कामकाज में फारसी चलने लगी, लेकिन तुरंत बाद अंग्रेजी का काम चलाऊ ज्ञान प्राप्त करने वालों की नियुक्ति के साथ धीरे-धीरे अंग्रेजी का प्रयोग बढ़ने लगा और रोमन लिपि का महत्व भी बढ़ा।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ के आलोच्याधीन हिन्दी गद्य लेखकों द्वारा देवनागरी लिपि में रचित कृतियों के अध्ययन के प्रसंग में देवनागरी लिपि के संघर्ष की उपर्युक्त कथा का अपना महत्व है। आधुनिक काल में ज्ञान-विज्ञान के विस्तार के इस युग की सबसे बड़ी देन टंकण, मुद्रण एवं दूर मुद्रण यंत्र है। पिछले अध्याय में गद्य के विविध प्रयोगों पर विचार करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि पाश्चात्य विदेशियों के संपर्क से हिन्दी गद्य के विकास कार्य में उनका योगदान भले ही बहुत अधिक महत्वपूर्ण न रहा हो लेकिन भाषा के प्रचार-प्रसार एवं विकास के लिए वैज्ञानिक साधनों से संपर्क कराने में उनका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। यह ठीक है कि इस देश में लिखने पढ़ने के लिए कागज का उत्पादन मुगल शासन काल में ही प्रारंभ हो गया था, फिर भी काव्यकाल (भक्तिकाल एवं रीति काल) में इसके पर्याप्त रूप में उपलब्ध न होने के प्रमाण मिलते हैं। लैटिन भाषा में रचित "हिन्दी के तीन प्रारंभिक व्याकरण"① यूरोप के मिशनरियों की हिन्दुस्तानी भाषा एवं नागरी लिपि से अवगत कराने के लिए लिखे गये थे। तीनों व्याकरणों में से प्रथम व्याकरण में हिन्दुस्तानी शब्द केवल रोमन लिपि में दिये गये हैं। द्वितीय व्याकरण में इन हिन्दुस्तानी शब्दों को रोमन और फारसी दोनों लिपियों में दिया गया है। केवल "अल्फावेतुम ब्रह्मा निकुम" में नागरी अक्षरों का प्रयोग हुआ है। तीनों रचनाओं की मूल भाषा लैटिन है।

"अल्फा बेतुम ब्रह्मानिकुम" के लेखक का निम्नलिखित उद्धरण इस बात को प्रमाणित करता है

---

①हिन्दी के तीन प्रारम्भिक व्याकरण - मैथ्युवेच्यूर (पृष्ठ १४ एवं १२६)

कि अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक सामान्य जनता को लिखने पढ़ने के उपयुक्त साधनों के अभाव की स्थिति में किस प्रकार काम चलाना पड़ता था :-

"हिन्दुस्तानी वर्णमाला के अध्यापक बालू बिछाकर उस पर छड़ी से वर्णों को लिख देते हैं। पीछे विद्यार्थी अपनी छड़ी से उसी बालू पर उन्हीं रेखाओं पर उन वर्णों को लिखते हैं। जब रेखाएं खराब हो जाती हैं, तो वे फिर से नये अक्षर बनाते हैं। और बार-बार लिखवाते हैं। जब यह अभ्यास पूर्ण हो जाता है, तो छात्र कागज पर लिखना आरंभ करते हैं। यह कागज ताड़ या भोज पत्र का होता है जो वृक्ष के विशेष छाल से बनाया जाता है। इस पर नये रूप से लिखने का अभ्यास कराया जाता है। कभी-कभी इस प्रकार का आरंभिक अभ्यास पत्थर से निर्मित स्लेटों पर ही कराया जाता है। ये स्लेट लगभग दो फीट लंबे और तीन चौथाई फीट चौड़े होते हैं। इसी पर सफेद खड़िया से लिखने का अभ्यास कराया जाता है। कागज पर लिखने के लिए कलम सरकण्डे से बनायी जाती थी।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन काल के आरंभ में इनके क्रांतिकारी कदमों को पहचानने वाले समाज सुधारक राजाराम मोहन राय ने देश में नयी शिक्षा का खुले हृदय से स्वागत किया। लेकिन विदेशियों के दृष्टिकोण के इस महत्व के बावजूद फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष जॉन गिलकृस्त की भ्रांति के कारण जिस प्रकार हिन्दी गद्य का विकास रेख्ता, "हिन्दुस्तानी" हिन्दवी, हिन्दी आदि विविध प्रयोग से ग्रस्त होकर गति नहीं पकड़ पा रहा था उसी प्रकार रोमन, फारसी एवं देवनागरी लिपियों की स्वीकार्यता के प्रसंग में उलझनें आ रही थीं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, जॉन गिलकृस्त के समय से लेकर अर्थात् फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना (१८०१) से लेकर फोर्ट विलियम कालेज के अनौपचारिक रूप से समापन (१८३६ ई०) होने तक उपर्युक्त तीनों लिपियों के अस्तित्व या एक-दूसरे से अधिक प्रभावशाली होने के पारस्परिक संघर्ष में कभी फारसी बढ़ जाती तो कभी देवनागरी। नये शासक को रोमन लिपि का मुकाबला भारत की इन दोनों ही लिपियों से था। विदेशी यहाँ की भाषाओं की उसी लिपि के माध्यम से सीख रहे थे।

फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दुस्तानी भाषा के संबंध में फारसी और देवनागरी दोनों ही लिपियों में कार्य किये गये। लेकिन देवनागरी लिपि में लिखवाई गई पुस्तकों की भाषा भी उर्दू या फारसी बहुल थी। जॉन गिलकृस्त फारसी लिपि के समर्थक थे, उन्होंने जो भी लिखा वह रोमन लिपि में लिखा।

इस अवधि में फारसी लिपि का प्रयोग चिट्ठी-पत्री में भले ही कम होता हो, लेकिन थाने एवं कचहरियों में इसका प्रयोग प्राय: सभी कार्यों के लिए होता था। यह प्रयोग बीसवीं शताब्दी तक जारी रहा जिसका प्रमाण तत्कालीन थाने की रिपोर्टों में मिलता है। सरस्वती के भूतपूर्व संपादक एवं हिन्दी के सुप्रसिद्ध सेवक पं. श्री नारायण चतुर्वेदी ने इसी प्रसंग में अपने एक भाषण① में बताया था कि उन्नीसवी शताब्दी के एक थाने की रिपोर्ट में महाकवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का नाम फारसी लिपि में लिखा होने कारण "सुरैया कान्ता तिरपाठी निराला" पढ़ा गया था। इसी कारण कायस्थ चित्रगुप्त को "मुंशी चितरगुप्त साहब" लिखने लगे थे। फारसी लिपि की असमर्थता के ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। उसकी तुलना में देवनागरी लिपि की बड़ी भारी विशेषता यह है कि जो भिन्न-भिन्न प्रकार के नाद हमारे भारतीय नाद यंत्रों द्वारा साधारण हो सकते हैं, उनके नामकरण भी उन्हीं नादों के अनुसार किए गये हैं। अ या

---

① हिन्दुस्तानी एकेडेमी में आयोजित भाषण माला - इलाहाबाद

क अक्षरों के सूचक नाद भी 'अ' और 'क' ही है, यह नहीं है कि ए 'अलिफ' या 'अलफा' तो अक्षरों का नाम हो और वे सूचित करें अ या मिलते-जुलते नादों की। अपनी आंतरिक शक्ति के बावजूद देवनागरी लिपि को शासन-परिवर्तन की स्थिति में शासक की भाषा लिपि के साथ प्रतिद्वन्द्विता में उपेक्षित होना पड़ा। इस संघर्ष में इसकी धारा ग्रीष्म ऋतु की जाहन्वी की तरह क्षीणतीया भले ही हो गई कभी सूखी नहीं। ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन प्रारंभ होते ही इस देश की एक नई विदेशी जाति का सामना करना पड़ा। फोर्ट विलियम कालेज में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष जॉन गिलकृस्त ने कहा कि

"यद्यपि रोमन-लिपि में एक ही ध्वनि को प्रकट करने के लिए दो या दो से अधिक अक्षरों का उपयोग करना पड़े, लेकिन यह लिपि सभी अनेक प्राच्य ध्वनियों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण रूप से पर्याप्त है।"

जॉन गिलकृस्त अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कुछ हद तक न्यायोचित प्रतीत होते हैं, और यह कहते हैं "तो भी संबंधित भाषाओं के सही उच्चारण सीखना आरंभ करने के लिए भी नागरी अक्षरों को प्रयोग वांछनीय है।"

देवनागरी लिपि के संबंध में भी विवाद की स्थिति लगभग वही रही, जो हिन्दुस्तानी या 'हिन्दवी' भाषा के संबंध में रही । समय के प्रवाह में सत्य सामने आया। कैप्टेन प्राइस (१८१५ ई०) ने हिन्दुस्तानी एवं हिन्दी के बीच का एक महत्वपूर्ण अंतर यह बताया कि हिन्दी के सही उच्चारण के लिए उसका "नागरी अक्षरों" में लिखा जाना जरूरी है । जॉन गिलकृस्त भी इस बात को अनुभव करने लगे थे और इसी कारण लल्लू जी लाल द्वारा ब्रज भाषा से हिन्दुस्तानी में रचित अनेक ग्रंथ नागरी लिपि में रचे गये। जिस पुस्तक का प्रचार प्रसार फोर्ट विलियम कालेज की अन्य हिन्दी पुस्तकों की तुलना में सर्वाधिक हुआ वह है- देवनागरी लिपि में दिल्ली-आगरे की खड़ी बोली एवं नागरी लिपि में रचित "प्रेमसागर" उस समय "खड़ी बोली" के नाम से एक नवीन गद्य-शैली की परिकल्पना एवं नामकरण करने वाले सदल मिश्र की रचित कृतियों की लिपि भी देवनागरी ही थी। सदल मिश्र बिहार निवासी थे। बिहार में देवनागरी लिपि के साथ उसकी सहलिपियाँ कैथी एवं महाजनी भी प्रयुक्त की जाती रही हैं। अनेक समय में संस्कृत की शिक्षा-दीक्षा तो देवनागरी लिपि में ही होती थी, लेकिन कचहरी एवं आपसी चिट्ठी-पत्र में कैथी लिपि का भी प्रयोग होता था। ऐसी भी स्थिति थी कि कुछ कागजात में देवनागरी लिपि के साथ कुछ अक्षरों के लिए कैथी लिपि के संकेत-चिन्ह भी आंशिक रूप से स्वीकार किये जाते थे। महाजनी लिपि का प्रयोग व्यापारिक बहियों एवं बाजारू हिसाब-किताब के काम में किया जाता था।

नागरी लिपि में ध्वनियों के संकेत-चिन्हों की विविधता की समस्या आरंभ से रही है और आज प्रेस, टंकण एवं दूरमुद्रण जैसे वैज्ञानिक आविष्कार के युग में इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किये जा रहे हैं। इस परिवर्तन के क्रम में इस बात का पूरा ध्यान रखा जा रहा है कि भारत की अन्य भाषाओं की ध्वनियों को भी देवनागरी के अक्षरों द्वारा कैसे प्रकट किया जाय। संस्कृत की कितनी ध्वनियों के पुरातन से चले आ रहे संकेत-चिन्हों को इस कारण छोड़ा जा रहा है कि जब उनकी आवश्यकता नहीं रही। फारसी के शब्दों की ध्वनियों की अभिव्यक्ति के लिए अक्षरों के नीचे बिन्दी (नुख्ता) लगाने की आवश्यकता भी अब नहीं अनुभव की जातीं। फलत: टाइप के अक्षरों में उसका स्थान नहीं रह गया। पंचमाक्षरों के "ङ" एवं "ञ" आदि के स्थान पर अनुस्वार का उपयोग होने लगा है।

पं० सदल मिश्र की कृतियों में प्रयुक्त देवनागरी संकेत चिन्हों के ऊपर विचार करने से पूर्व उनकी प्रमाणिकता के विषय में दो शब्द कहना आवश्यक हैं। उक्त ग्रंथों के बारे में 'सदल मिश्र' ग्रन्थावली की

भूमिका के पृष्ठ १५ पर (भूमिका लेखक के रूप में) बिहार के ख्याति प्राप्त आलोचक पं० नलिन विलोचन शर्मा ने लिखा है ①

"बिहार राष्ट्र भाषा परिषद के आद्य संचालक आचार्य शिवपूजन सहाय की योजना के अनुसार परिषद के अधिकारियों की आज्ञा से, श्री वीरेन्द्र नारायण ने अपने लंदन के प्रवास-काल में इंडिया आफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित पांडुलिपि से इसकी प्रतिलिपि की थी। श्री वीरेन्द्र नारायण ने बिन्दु-विसर्ग का परिवर्तन किये बिना प्रतिलिपि करके प्राय: चित्र-प्रतिलिपि जैसी प्रामाणिक सामग्री सुलभ बनाई थी। उन्होंने बड़े मनोयोग से प्रत्येक पृष्ठ के नीचे संपूर्ण मूल का आधुनिक हिन्दी रुप भी दिया था जिसका उपयोग अनावश्यक प्रतीत हुआ। मैंने अप्रचलित या अस्पष्ट शब्दों के आधुनिक रूप या अर्थ देकर ही संतोष किया है, जो वस्तुत: उपर्युक्त आधुनिक हिन्दी रुपान्तरण में भी प्राय: नहीं दिये गये थे।

इस पांडुलिपि, जिसकी अविकल प्रतिलिपि अध्ययन के लिए सुलभ है, का अपने आप में भी अनेक दृष्टियों से महत्व है। तदयुगीन वर्तनी, वाक्य-रचना, विराम-चिन्हों आदि के प्रयोग के संबंध में इस पांडुलिपि के विश्लेषण से लाभप्रद प्रकाश पड़ता है।"

इस प्रसंग में मैं यह निवेदन करना चाहूँगा कि जब मैंने अध्ययन के दौरान उक्त ग्रंथ में श्री वीरेन्द्र नारायण जी का नाम पढ़ा, तो मेरे मन में उनसे मिलने की जिज्ञासा हुई। उन्होंने हिन्दी नाटकों के संबंध में अपने कई महत्वपूर्ण प्रयोग एवं अनुभव सुनाने के साथ यह बताया कि वे १९५-५६ में १४-१५ महीने की छुट्टियों पर इंम्पिरियल ब्रिटिश म्युजियम लंदन में हस्तलिखित कृतियों की खोज एवं उनकेअध्ययन में लगे रहे। उन्हें इम्पिरियल ब्रिटिश म्युजियम में अनेक प्रकाशित एवं अप्रकाशित कृतियाँ भी देखने को मिलीं। उन्होंने इंडिया आफिस लाइब्रेरी के अंग्रेज लाइब्रेरियन की भूरि-भूरि प्रशंसा की कि उन्होंने उनके अध्ययन के लिए 'पांडुलिपियाँ' उपलब्ध कराने में उन्हें पूरा सहयोग प्रदान किया था। श्री वीरेन्द्र नारायण जी ने बताया कि वे संगीत की दो प्रसिद्ध पुस्तकों "संगीत पारिजात एवं नम मातुल अशयी-स्बाब-वादक" को देखना चाहते थे और उन्हें ढूंढने के क्रम में उन्हें सदल मिश्र की रचना "नासिकेतोव्याख्यान" (प्रकाशित) तथा "रामचरित" की पांडुलिपि मिली। यह रचना प्रकाशित रूप में अप्राप्त थी। उन्हें इससे अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उन्होंने अत्यंत मनोयोग से उस पुस्तक की हू-बहू प्रतिलिपि की । उन्होंने इसी क्रम में वहाँ कई महत्वपूर्ण प्रतिलिपियों का अवलोकन किया। मेरठ के श्री अनबर अली द्वारा १८९५ ई० में रचित 'बिजली दीपिका' की पांडुलिपि देखने का अवसर भी उन्हें इसी क्रम में मिला। श्री नारायण ने 'रामचरित' में प्रयुक्त देवनागरी लिपि एवं लेखन-विधि की दो प्रमुख विशेषताएँ बतायी-

(१) पूरी पांडुलिपि में कहीं पैराग्रफ नहीं था पूरा अनुवाद एक ही क्रम में था।

(२) 'र' एवं 'ख' के रूप देवनागरी की सहलिपि कैथी के क्रमश: " ^ " एवं " ऽ " थे।

उन्होंने अत्यन्त जोरदार शब्दों में अपना यह विचार प्रकट किया कि इंडिया आफिस लाइब्रेरी में उपलब्ध पांडुलिपियों के आधार पर "हिन्दी की टाइपोग्राफी के विकास" (Development of

---

① सदल मिश्र ग्रंथावली- भूमिका (पृष्ठ १५)

Typography) का उपयोगी अध्ययन सम्पन्न किया जा सकता है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त देवनागरी लिपि का अध्ययन करने से पूर्व उक्त ग्रंथ में ही संलग्न सदल मिश्र द्वारा हस्ताक्षरित दान पत्र की फोटो प्रतिलिपि में प्रयुक्त 'अक्षरों' की बनावट एवं स्वरूपों पर विचार करने से तत्कालीन प्रचलित ① लिपि एवं भाषा की एक झाँकी तो मिल ही जाती है। यदि दान पत्र के विवरण के लेखक सदल मिश्र स्वयं होंगे, तो उनके हस्ताक्षर में प्रयुक्त अधिकांश अक्षरों का अध्ययन हो जाएगा, अन्यथा उनके हस्ताक्षर एवं उसके ऊपर लिखित संस्कृत के श्लोक "रोचतेयमर्थोतिय मधरशर्मणे सम्यक" में आये अक्षरों से भी बहुत से अक्षरों का अध्ययन सम्पन्न हो जाएगा।

प्रयुक्त स्वर तथा उनकी लिपि इस प्रकार है :-

अ से औ तक

ध्वनि	प्रयोग	लिपि	संदर्भ
अ	अर्थे		दानपत्र
आ	आगे		,,
इ	इ स म		,,
ई	भाई		,,
उ	-	-	प्रयोग नहीं मिला

ध्वनि	प्रयोग	लिपि	संदर्भ
ऊ	-	-	,,
ए	एह में		दानपत्र
ऐ	-	-	नहीं मिला
ओ	ओ जहाँ जहाँ		दानपत्र
औ	---	-	नहीं मिला
क से ह तक			
क	के		दानपत्र
ख	दश त, खरीदगी, वष्त, ताखबंदी		,,
(ग)	लगा		,,
घ	मेघमणि		,,
ङ **	----		नहीं मिला
च			,,

① हिन्दी के तीन प्रारम्भिक व्याकरण - मैथ्युवेच्यूर (पृष्ठ १४ एवं १२६)
** ध्वनि के लिए द का प्रयोग किया गया है

छ	कुछ		दानपत्र
ज	जमीन		,,
झ	झगरा		,,
	-		नहीं मिला
ट	वाट		दानपत्र
ठ	ठहरे		,,
ड	पेड		,,
ढ	-		नहीं मिला
ण	मणि		दानपत्र
त	रोचते		हस्ताक्षर
थ	लेथु		दानपत्र
द	सदल		हस्ताक्षर
ध	आधा		दानपत्र
न	दुनो		,,
प	पुराना		,,
फ	फेड		,,
ब	लगाबल		,,

ध्वनि	**प्रयोग**	**लिपि**	**संदर्भ**
भ	भाई		,,
म	मिश्र		हस्ताक्षर
य	तेयस		श्लोक
र	राम, और		दानपत्र
ल	सदल		हस्ताक्षर
व	कठवा		,,
श	दशत		,,
ष	हरष, पौष		,,
ह	मोहन		,,

संयुक्ताक्षर

ध्वनि	**प्रयोग**	**लिपि**	**संदर्भ**
त्र	त्री		दानपत्र
ल्ल	बल्लभ		,,

ख्त	वष्त	,,
न्द	तोषबन्दी	,,
न्ह	लरिकन्ह	,,
र्ण	कर्ण	,,
प्र	प्रति	,,

मात्राएं

ा/आ	वाग	,,
ि/इ	मित्र	,,
ी/ई	तीनो	,,
ु/उ	महुआ, दुई	,,
ू/ऊ	वैजू	,,
ए	मे	,,
ै/ऐ	वगैर	,,
ो/ओ	ओ, मो	,,
ौ/औ	--	नहीं मिला।
् (हलन्त)	प्रतियत् मंगल	,,

: अनुस्वार एवं विसर्ग का प्रयोग नहीं मिला।

ऊपर अक्षरों के जो उदाहरण दिये गये हैं, उनके संबंध में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि

(१) 'र' के स्थान पर र"ृ " (कैथी) दोनों का प्रयोग मिलता है।

(२) अ के लिए सिर्फ 'अ' रूप ही सर्वत्र मिलता है।

(३) ख के लिए खरीदगी, लिख देख में तो 'ख' का प्रयोग है, लेकिन तोखबन्दी व वष्त में 'ष' का प्रयोग किया गया है। इसकी तुलना में दशतखत में 'ष ' (कैथी का ख) का प्रयोग है।

(४) अक्षर मिलाकर लिखने के बदले प्राय: अलग-अलग लिखे गये हैं जैसे- 'सदल मिश्र' । कहीं कहीं शिरोरेखाएं मिल भी गई हैं।

(५) दानपत्र में १८८८ अंक में रूप १८८८ मिलता है।

इसके अतिरिक्त सदल मिश्र द्वारा प्रयुक्त देवनागरी लिपि के संबंध में स०मि० (सदल मिश्र) के भूमिका लेखक ने जो मुख्य बातें पायी हैं, वे इस प्रकार हैं-

"इस पुस्तक के प्रस्तुत प्रथम मुद्रित संस्करण में '०' इस चिन्ह का तात्पर्य यह है कि मूल पांडुलिपि में पंक्ति इसके पूर्व समाप्त हो गई है। कोष्ठकों में जो विराम-चिन्ह हैं, वे सम्पादक के द्वारा सुविधा के लिए दे दिये गये हैं।

१- अधिकतर व, ब नहीं- पृष्ठ २८१ (पर पहली बार ब)

२- केवल ष (ख के लिए), ख नहीं, किन्तु धनुष, वर्ष हर्षित ऋषि, हविष्य आदि में ष।

३- रूप इत्यादि में सर्वत्र रू के बदले शब्द के मध्य या अन्त में प्राय: रू, र किन्तु अरू, सारा इत्यादि में भी कहीं कहीं यथा प्रदर्शित कैथी 'र' का प्रयोग है।

४- 'ङ' नहीं।

५- ण प्रयुक्त, किन्तु पाषान, पाषाण नहीं।

६- ध्वनि विशेष के तुरंत बाद उसी ध्वनि के रहने पर बहुधा एक का लोप, उदाहरणार्थ बालक की, के लिए 'बालको', राक्षस सव' के लिए 'राक्षसव'

'अधिक कहा' के लिए 'अधिक हा' 'चैन नहीं' के लिए 'चैनही' 'अधिक काम' के लिए 'अधिकाम' 'स्वभाव वश' के लिए 'स्वभावश' तथा अनेक अन्य उदाहरण।

७- कहीं-कहीं ज के बदले य, उदाहरणार्थ 'काम काय'

८- कहीं-कहीं य के बदले उ उदाहरणार्थ- आउर्वल

९- (क) पृ० १३४ पर पहली बार पूर्ण विराम का चिन्ह/प्रयुक्त । इसके पूर्व कोई विराम चिन्ह नहीं।

(ख) पृ० ४५३ पर पहली बार अर्ध विराम के लिए '०' यह चिन्ह ।

१०- छूट के लिए प्रयुक्त चिन्ह --- "/"

संयुक्ताक्षरों के प्रयोग के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

इन्द्रिय, स्तोत्रन, एवं सिद्धाश्रम, आदि। लेकिन कुछ संयुक्ताक्षरों में लिखने में भूल या अस्वाभाविकता मिलती है जैसे- दधिवत (पृ० १४३) शकक्ते (१४३)

लाछ शकक्ता (पृ० १४५), (१५०) ऐत्ता (पृ० १५७) ।

लिपि के अनुपयुक्त प्रयोग के अन्य उदाहरण -

बडा(ड़ा)	(पृ० १५७)	ऐकेले	(पृ० १५७)
लीजेगा	(पृ० १६२)	बधायी	(पृ० १७१)
रष्या	(पृ० १७३)	शक्ता	(पृ० १७३), परता (१७९)
वीर्ज	(पृ० १८८)	सुर्त्त	(पृ० २००)

लेकिन यह आश्चर्यजनक ही है कि यद्यपि पं० सदल मिश्र संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे, फिर भी उन्होंने अनुवाद गद्य के लिए जिन तद्भव या देशी शब्दों को प्रयुक्त किया है, उन्हें बोलियों की ध्वनि के अनुसार ही लिपि वद्ध किया है। उन्होंने उनके लिए संस्कृत में परम्परागत रूप से चले आ रहे "अक्षरों" का प्रयोग नहीं किया। इसमें उन्हें प्रारंभिक स्थिति होने के कारण कठिनाइयाँ अवश्य हुई होंगी, और उन्हीं कठिनाइयों के कारण कहीं-कहीं त्रुटियाँ भी आ गई। ब/'व', 'ष'/ख, ए/ऐ, जैसे वर्णों के प्रयोग में अनियमितता का उल्लेख भी इसी प्रसंग में किया जा सकता है और इनके निम्नलिखित

उदाहरणों से इसकी पुष्टि की जा सकती है। महावली (पृ॰ ९५), वहन (बहन के लिए) (पृ॰ ९५), षोज (पृ॰ १०९), ऐकेले (पृ॰ ९५), चोषे (चोखे) (पृ॰ ९७), षैंच (पृ॰ ९६), देषिओ (पृ॰ ९८) आदि। बोलियों की ध्वनि के प्रयोग के उदाहरण, लछुमण (पृ॰ ५७), पारवती (पृ॰ ३६)।

वर्तनी-भेद

लिपि-समस्या के साथ वर्तनी-समस्या का भी अध्ययन युक्तिसंगत ही होगा। सदल मिश्र ने शब्दों की जो वर्तनी दी है, वह जनता में प्रयुक्त सामान्य ध्वनियों की अभिव्यक्ति में बहुत सीमा तक सक्षम है। देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता के बारे में नाना प्रकार की पक्ष एवं विपक्ष की उक्तियों को देखने से ऐसा सिद्ध होता है कि इस लिपि का भविष्य उज्जवल है। भारत जैसे विशाल एवं बहुभाषा-भाषी देश के लिए समान भाषा से भी अधिक आवश्यकता समान लिपि की है। हिन्दी के प्रारम्भिक गद्य लेखकों के सामने विभिन्न बोलियों में प्रयुक्त एवं विभिन्न क्षेत्रों में देवनागरी में पृथक वर्तनी द्वारा लिखे जाने वाले शब्दों के लिए (वर्तनी की) एकरूपता की समस्या पर अभी भी पर्याप्त रूप से विचार नहीं हुआ है। इन बोलियों के अतिरिक्त बंगला, तमिल, तेलुगु , कन्नड़, मराठी, गुजराती, पंजाबी, एवं असमी के अतिरिक्त द्रविड़ भाषाओं के शब्दों की वर्तनी की समस्या अब व्यवहारिक रूप में सामने आने लगी है।

सदल मिश्र ने जो वर्ग विन्यास किये हैं उनमें से अधिकतर आज भी उसी रूप में स्वीकार किये गये हैं। लेकिन भोजपुरी आदि बोलियों से अपनाये गये शब्दों की वर्तनी में जितनी एकरूपता या सटीकता होनी चाहिए उतनी नहीं आ सकी। लेकिन वे इस बात के लिए श्रेय पाने के अधिकारी हैं कि उन्होंने ऐसे शब्दों की खड़ी बोली में खड़ा तो कर दिया। कहीं वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ शीघ्रता के कारण भी "हो गयी" प्रतीत होती है।

इन वर्तनी भेदों की स्वर तथा व्यंजनभेदों के अनुसार नीचे वर्गाकृत किया जाता है।

स्वर भेद

१- ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण एवं दीर्घ स्वर का ह्रस्वीकरण

स॰मि॰ग्रं॰ में प्राप्त वर्तनी	पृ॰ सं॰	मानक वर्तनी
की	६	कि
जीसमें	३१	जिसमें
फीरते	३५	फिरते
बीछू	२०	बिच्छू
चरण चिन्ह	९२	चिन्ह
हुई	९४	हुई
चूका	१२७	चुका
कीर्ती	१५६	कीर्ति
शुषकर	८८	सूखकर
शिषने	३८	सीखने

हूए	६८	हुए
मीलियें	९५	मिलिये
स्त्रीयां	१३५	स्त्रियां

कुछ शब्दों की वर्तनी में द्विविध प्रयोग मिलता है, लेकिन इसके उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

(क)	अनुठी	पृ० ८२
	अनूठी	९२
(ख)	आईये	१९९
	समझाइये	३४
(ग)	झुठ	८३
	झूठा	६२
(घ)	एकेले	६२
	ऐकेले	९५
(ङ)	भांत	७
	भांति	७
(च)	न्यात्र	२२
	न्याय	२२

स्वर परिवर्तन के अन्य उदाहरण

स०मि०ग्रं० में प्राप्त वर्तनी	पृ० सं०	मानक वर्तनी
क्यूंकि	३४	क्योंकि
चहुँक	९	चिहुंक
क्रुधिक	९	क्रोधित
हरनी	९	हरणी
फलैगी	१२	फलेगी
देखोंगी	१५	देखूंगी
अर्जुन	३४	अर्जन
कैकयी	८३	कैकेयी
शालग्राम	३५	शालिग्राम
किसु	२२	किसी
दिश	३१	दिशा
ओरों	३६	औरों

पसेनों	१५४	पसीनों
जाइऐगा	८२	जाएगा

स्वरागम

मूरति	३३	मूर्ति
पदारथ	८१	पदार्थ
स्वारथ	१९	स्वार्थ
बदरिकाश्रम	३१	बद्रिकाश्रम
आध्यात्म	३३	आध्यात्म
सुनाइऐ	३६	सुनाइए
वरनन	३५	वर्णन
भरमा	३६	भ्रम
लपिटाय	३६	लपटाय
ऐसे	३६	ऐसे
करतूति	२०१	करतूत
जनम	८०	जन्म
लछुमन	८३	लक्ष्मण

अनुस्वार तथा अनुनासिक भेद एवं उसका अनावश्यक प्रयोग

अनुनासिक ध्वनियों के प्रयोग की अनियमितता क्रिया रूपों में यत्र-तत्र मिलती है। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं :-

स०मि०ग्रं० में प्राप्त वर्तनी	**पृ० सं०**	**मानक वर्तनी**
रहेगें	१७०	रहेंगे
मै	१५४	मैं
मे	१५४	में
पसेनों	१५४	पसीनो
है	१५२	सेना है
है	१५२	,,
सांपो	१६८	सांपों
कभीं	१७०	कभी
देगीं	३४	देंगी

रामचंन्द्र	३५	रामचन्द्र
*मुंङ्गरों	२०	मुंगरों
*कलङ्क	९	कलंक
पहुचे	५४	पहुँचे
आंन	५४	आन
सैंकड़न	३६	सैकड़न

स्वर-लोप

हिन्दी गद्य के प्रयोग की आरंभिक स्थिति होने के कारण सर्वनाम एवं क्रिया को ध्वनियों के उच्चारण के अनुसार लिखने के प्रयास में वर्तनी आज की तुलना में उस समय भिन्न थी। यद्यपि सदल मिश्र ने इस दिशा में पूरी सचेष्टता दिखायी फिर भी ऐसे कुछ शब्दों की वर्तनी में स्वर लोप उदाहरण मिलते हैं।

सर्वनाम

स०मि०ग्रं० में प्राप्त वर्तनी	पृ० सं०	मानक वर्तनी
विस्से	६०	
तिस्से	१७८	
वक्ते	३६	वकते
उन्ने	३३	उनने

लेकिन उसका, इसका आदि शब्दों की वर्तनी ठीक है।

बर्जा	३५	बरजा
गर्जता	१६२	गरजता

परिवर्तित तथा अनुपयुक्त व्यंजन

स०मि०ग्रं० में प्राप्त वर्तनी	पृ० सं०	मानक वर्तनी
श्यारों	२३	स्यारों
च्येत	२६	चेत
भाषते	२९	भाखते

*इन दोनों शब्दों में 'ङ' और ड के लिए ड का ही प्रयोग किया गया है।

बभूत	१७	भभूत
कंधी	२३	कभी
शास शसुर	३४	सास ससुर
अछी	३४	अच्छी
मुजमें	३४	मुझमें
रषा	३१	रक्खा
बिशील	२०	बेशील
परता	२६	पड़ता
कोश	२७	कोस
हुवा	१४	हुआ (स्वर के स्थान में व्यं०)
ल्याने	२९	लाने
काण्टों	२६	काँटों
तुलशी	३४	तुलसी
दोस	१६१	दोष
जश	१३	यश
आसीस	१४	आशीष
वस	२२	वश
शकेगा	३३	सकेगा
झोरी	७३	झोली
आँशू	५४	आँसू
सरूप	२००	स्वरूप
धनधा	३३	धन्धा
जोति	३३	ज्योति
पीपर	३५	पीपल
मुज	८०	मुझ
जोग्य	८२	योग्य

***ण/न का अभेद**

शरन	६	शरण
क्षन	९	क्षण
हरनी	९	हरिणी
रामायन	३४	रामायण

* कई स्थानों पर न के लिए भी ण का ही प्रयोग मिलता है

*ब/व का भेद

सव	६५	सब
वात	७०	बात

र/ड़/ड का अभेद

परता	२६	पड़ता
पहार	२३	पहाड़
खडी	१०६	खड़ी
भर	१०६	भर

व्यंजन लोप

अछी	३४	अच्छी
इछा	३५	इच्छा
क्षत्री	३४	क्षत्रिय
जों का तों	१६८	ज्यों का त्यों
जोतिस	३६	ज्योतिष
अछे	३६	अच्छे

व्यंजन-द्वित्व

अर्च्चा	१०	अर्चा
धर्म्म	१८	धर्म
निर्द्दयी	२०	निर्दयी
पर्व्वत	२६	पर्वत
सूर्प्पनषा	९५	सूर्पनखा
तरर्कारी	६५	तरकारी
झंझकार	६५	झंकार
कन्दर्प्प	७१	कन्दर्प

* ब के लिए भव व संकेताक्षर का प्रयोग अधिकांश स्थानों में मिलता है।

अर्ज्जन	३४	अर्जन
दुर्ल्लभ	४२	दुर्लभ
आचार्य्य	१	आचार्य
ब्रम्हचर्य्य	६	ब्रम्हचर्य

भोजपुरी के प्रभाव के कारण वर्तनी भेद

पं॰ सदल मिश्र की क्षेत्रीय बोली 'भोजपुरी' होने के कारण उनके द्वारा प्रयुक्त गद्य में पूर्वीपन (भोजपुरी) का प्रभाव मिलना स्वाभाविक है। यों उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों पर भोजपुरी के अतिरिक्त अवधी, ब्रजभाषा एवं बंग्ला के प्रभाव भी दृष्टिगत होते हैं, पर भोजपुरी का प्रभाव सर्वाधिक है। चूंकि उनकी रचनाएं संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद हैं, इसलिए हिन्दी में प्रचलित तत्सम एवं तद्भव शब्दों को ही वरीयता दी गई है। सदल मिश्र का प्रथम लक्ष्य सबकी समझ में आने वाली भाषा का प्रयोग करना है और इसके लिए तत्कालीन जनभाषा-अर्थात् क्षेत्रीय बोलियों में प्रयुक्त शब्दों को भी उन्होंने उनकी उच्चारणगत वर्तनी में रखा। इस कारण स॰मि॰ग्रं॰ में जो वर्तनी भेद मिलते हैं, उनके उदाहरण इस प्रकार हैं-

स॰मि॰ग्रं॰ में प्राप्त वर्तनी	**पृ॰ सं॰**	**मानक वर्तनी**
महतारी	१५	माता
बिलाई	२३	बिल्ली
परछाहीं	३८	परछाई
धूर	८	धूल
कवाड़	११५	किंवार
विपत	१३	विपत्ति
डाढ़	१३६	डाल
ठोंठ	१५८	ओठ
गड़हा	१०५	गढ़ा
अधार	१२	अंधकार
नछावर	१७६	न्योछावर
तलाब	१११	तालाब
चचा	१६२	चाचा
किरिया	६०	क्रिया
भाग	३४	भाग्य
भाल	१७३	भालू
बांदर	१०१	बंदर
भिखार	९८	भिखारी

नानीहार	५८	ननिहाल
गरे	५२	गले
माथ	४५	मस्तक
रखवारी	९१	रखवाली
लूक	९८	लू
सोपारी	११८	सुपारी
वानर	१२१	बन्दर
पाथर	२७	पत्थर
नयाव	२२	न्याय
पछिम	१८८	पश्चिम
रूपैया	१५	रूपया
संदेशा	७६	संदेश

इन उदाहरणों में स्वर-भेद के अतिरिक्त व्यंजन-भेद अधिक है। भोजपुरी भाषा के प्रभाव स्वरूप 'ल' के 'र' हो जाने के उदाहरण के लिए धूर, गरे, रखवारी जैसे बहुत से शब्द हैं स्वर-परिवर्तन कवाड़, विपत, नछावर, तलाब, चचा, भिखार, एवं सोपारी आदि शब्दों में मिलता है। व्यंजन परिवर्तन एवं व्यंजन-लोप का व्यंजनागम के भी उदाहरण के रूप में ठोठ, गड़हा, नानीहार, माथ, वानर, पाथर, एवं भाग आदि शब्द रखे जा सकते हैं।

क्रिया-स्वर भेद-

देखाते	१७५	दिखाते
न्हा	१७८	नहाकर
देओ	१९८	दो
झुठाना	१७	झूठ बनाना
चोरा ले जाना	११९	चुरा ले जाना
पछिता	८	पछता
सेवैं	५	सेवें
लीपौंगी	१२	लीपूंगी

व्यंजन-भेद

आवना	१४	आना
गवाना	३४	गाना
धिरकारना	९३	धिक्कारना

दुबराकर	१९	दुवला कर
फ़यलाय	५४	फैलाय
ल्याने	२९	लाने

ऊपर आवना, एवं गावना आदि में 'व' व्यंजनागम भोजपुरी भाषा का ही प्रभाव है।

लिपि एवं वर्तनी के सम्बन्ध में उपर्युक्त उदाहरणों का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि कैथी, महाजनी, एवं फारसी आदि लिपियों की विविधता एवं भिन्नता के कारण सामान्य जन की उपयोगी लिपि का निर्णय करना भी आदि गद्य लेखक के समक्ष एक दुर्गम कार्य था। यदि वे संस्कृत के शब्दों को ज्यों का त्यों लिख देते, तो सामान्य जनता को वे शब्द अपरिचित लगते। यही कारण है कि उन्होंने 'फलेगी' को "फलैगी" तथा "वर्णन" को "वरनन" या "लपटाय" को "लपिटाय" लिखकर जन-मानस को छूने का प्रयास किया। यह प्रयास सामान्य बोलचाल के शब्दों तक ही सीमित नहीं था, बल्कि व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों में भी यह परिवर्तन "लक्ष्मण" के लिए "लछुमण" के रूप में मिलता है। परिवर्तन तथा अनुपयुक्त व्यंजनों की यह स्थिति तत्कालीन सभी गद्य लेखकों के साथ थी। जब तक इन अनियमितताओं पर नियंत्रण के लिए चाबुकधारी पं॰ महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन नहीं हुआ, हिमालय से निकलनेवाली गंगा की तरह हिन्द्री गद्य अपने प्रवाह में शब्द-जाल लेकर अनवरत रूप से चलता रहा। यह प्रवृत्ति सिर्फ लल्लू लाल, सदल मिश्र या राजा लक्ष्मण सिंह एवं राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद तक ही नहीं रही, बल्कि स्वयं भारतेन्दु के गद्य में लिपि एवं वर्तनी की अनियमितताओं की भरमार है।

***

शब्द-चयन

(अध्याय -छः)

सदल मिश्र ग्रंथावली के "नासिकेतोपाख्यान" एवं "रामचरित" दोनों ही ग्रंथ संस्कृत से अनूदित है। अत: इनमें संस्कृत के तत्सम शब्दों के बाहुल्य को देखकर आश्चर्य नहीं किया जा सकता। आज संस्कृत से हिन्दी में अनूदित ऐसे ग्रंथों में जहाँ तत्सम शब्दों का प्रतिशत ६०% से ७०% से बीच होना एक विवशता माना जाता है, वहाँ उक्त दोनों ग्रंथों में ऐसे शब्दों का प्रतिशत ४०% से ४५% के भीतर ही है। यह बात इस आधार पर कही जा रही है कि ग्रंथावली के अंतिम पृष्ठ (२००) की कुल शब्द संख्या और उस पर प्रयुक्त तत्सम एवं उससे भिन्न शब्दों की संख्या का प्रतिशत यही आता है। सर्वेक्षण में उक्त पृष्ठ पर प्रयुक्त कुल शब्दों की संख्या लगभग तीन सौ है, जब कि उसमें तत्सम शब्दों कि संख्या लगभग एक सौ पैंतीस है। इस स्थिति की जाँच के लिए अंतिम पृष्ठ को चुनने का उद्देश्य यही है कि अनुवाद क्रम में उस पृष्ठ तक पहुँचते-पहुँचते अनुवादक के अनुभवों का भी अनुमान हो जाता है। इसकी तुलना में रामचरित के प्रथम पृष्ठ (पृ० ३३) के कुल शब्दों की संख्या २२५ है और उसमें से तत्सम शब्दों की संख्या १३३ है। इस प्रकार उक्त पृष्ठ पर तत्सम शब्दों का प्रतिशत लगभग ६७% आता है। यह द्रष्टव्य है कि अनुवादक लगातार इसी प्रयास में रहा कि जहाँ तक संभव हो तत्सम शब्दों के प्रयोग से बचा जाय। अनुवादक तत्सम शब्दों की इस ६८ प्रतिशत की स्थिति की कम करते हुए अंतिम पृष्ठ तक तत्सम शब्दों का ४०% कर लेता है।

इस प्रसंग में यह स्पष्ट करना जरूरी है कि यह प्रतिशत सभी जगहों में एक समान नहीं है। जहाँ स्तुति परक या दार्शनिक प्रसंग आते हैं, वहाँ तत्सम शब्दों की संख्या स्वभावत: अधिक हो जाती है, लेकिन जहाँ घटनाओं के वर्णन की बात आती है, वहाँ इनकी संख्या न्यूनतम है और उसी के अनुपात में तद्भव एवं देशी शब्दों की संख्या अधिकतम है। इस क्रम में क्रमश: ऐसे श्लोकों के अनुवाद में प्रयुक्त शब्दावली की समीक्षा की जाती है :-

(कौसल्योवाच)

देव देव नमस्तेअ्स्तु शङ्खचक्र गदाधर।
परमात्माच्यूतोअ्नन्त: पूर्णस्त्वं पुरूषोत्तम:।
(बालकाण्ड, तृतीयसर्ग २०)
हे पुरूषोत्तम आदि अनन्त पूरन परमात्मा,
हे देवन के देव, शंख चक्र गदाधारी अच्युत
मैं आपको वार वार नमस्कार करती हूँ।
स०मि०ग्रं० (पृ० ४१)

यहाँ २० शब्दों में से लगभग १३ शब्द तत्सम है और शेष तद्भव। तद्भव शब्दों के सर्वनाम एवं सहायक क्रिया तथा कारक-चिन्ह भी सम्मिलित हैं। इसी के विपरीत निम्न लिखित श्लोक के अनुवाद की भाषा में तत्सम शब्दों की संख्या इस कारण बहुत कम है कि इसमें एक घटना का वर्णन है।

वाल्मीकिरपि तौ प्राह सीतापुत्रौ महाधियौ।
तत्र तत्र च गायन्तौ पुरे वीथिषु सर्वतः।।
(उत्तर कांड सप्तम सर्ग)

अनुवाद-
लवकुश से वाल्मीकि ने कहा कि हे पुत्रो
अब तुम इस नगर की सब गलीन में
मधुर स्वर से गाते हुए राम पास जाओ
(पृ० १९४ स० मि० ग्रं०)

द्रष्टव्य है कि घटना परक वर्णन के कारण इस श्लोक की अनुवाद की भाषा में तत्सम शब्दों की संख्या न्यूनतम है। कुल शब्दों-संख्या २४ उनके अनुपात में तत्सम शब्दों की संख्या चौथाई भी नहीं है।

स०मि०ग्रं० में देशी शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है, लेकिन मात्र उसी कारण लेखक की शैली को पूर्वीपन का प्रभाव बताकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता, ऊपर पृष्ठ ३३ पर जहाँ तत्सम शब्दों का प्रतिशत ६८ आता है, भोजपुरी शब्दों का प्रतिशत .००३ भी नहीं है। यह ठीक है कि ज्यों-ज्यों तत्सम शब्दों का प्रतिशत घटता जाता है, तद्भव एवं बोली के शब्दों की संख्या अनुपाततः बढ़ती जाती है।

स०मि०ग्रं० में प्रारंभ की प्रस्तावनाओं में अंग्रेजी के दो-चार शब्दों के अतिरिक्त अन्यत्र अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता। जहाँ तक उर्दू या फारसी के शब्दों का प्रश्न है लेखक ने इनके प्रयोग से बचना तो अपना कर्तव्य माना है। फलतः देववाणी (संस्कृत) में लोगों की कठिनाई को दूर करने के उद्देश्य से रचित ग्रंथ में तद्भव एवं बोली के शब्दों का अधिकतम प्रयोग होना आश्चर्यजनक नहीं। शब्दों का अध्ययन करते समय उनका वर्गीकरण नीचे लिखे मूल एवं यौगिक शीर्षों के अंतर्गत निम्नलिखित पांच वर्गों में किया जा सकता है।

(१) तत्सम

(२) तद्भव

(३) अर्धतत्सम एवं

(४) विदेशी

(५) देशी या भोजपुरी (पूर्वी)।

मूल शब्द

सदल मिश्र ग्रंथावली की दोनों ही पुस्तकें धार्मिक तथा दार्शनिक तत्वों से पूर्ण है। ऐसी स्थिति

में इनमें प्रयुक्त शब्दों में कम या अधिक रूप में तत्सम शब्दों का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। उदाहरण के लिए संग्रहीत शब्दों को पूरी ग्रंथावली से लेने का प्रयास किया गया है। इसमें विशेष ध्यान रखा गया है कि शब्दों का चयन आरम्भिक, मध्य एवं अंतिम पृष्ठों से अर्थात् सभी स्तरों से किया जाय ताकि सर्वेक्षण का उद्देश्य पूरा हो।

१- संज्ञा -

वस्तुवाची

धर्म सम्बन्धी

मंत्र	पृ० सं०	६	स्वर्ग	पृ० सं०	८
ब्रम्हचर्य		६	प्रदक्षिणा		१९
वेद		६	देवता		२४
दान		५	ब्राम्हण		३४
पूजा		५	आचार		३४
यज्ञ		५	ईश्वर		३४
पाप		५	माया		३५
मुक्ति		५	मूर्ति		३५
पातकी		२९	परिक्रमा		८३
स्वर्गलोक		२०९	माया		१६२

जाति सम्बन्धी

सिहिंका	१३२	बृषभ	५,८०
देव	१९१	मुनि	२०२
देवता	५	किन्नर	१८३
नायक	५	नारी	३४

संज्ञा वस्तु वाची, जाति सम्बन्धी

कृषि	पृ०	५	वैश्य	पृ०	३४
मनुष्य		५	स्त्री		६
राक्षस		११०	गन्धर्व		७
स्त्री		११०	नर		३३
वानर		१३३	ब्राह्मण		७
प्राणी		३६	क्षत्रिय		७१
अप्सरा		४९	व्याघ्र		९
दानव		९४	नाग		९५
गन्धर्व		९५	मर्कट		१६३

गन्धर्व सम्बन्धी-

भरत	२०२	हनुमान	१७१
वशिष्ठ	२०२	शरम	१५२
लक्ष्मी	७	राम	९०
इक्ष्वाकु	६	भरद्वाज	७१
पिप्पलाद	६	वाल्मीकि	७१
जनमेजय	६	सीता	६५
वैशम्पायन	६	मन्थरा	५८
रघु	७	अदिति	४४
ब्रह्मा	६	मारीच	४५
उद्दालक	७	कैकेयी	५७
रावण	१५८	इन्द्र	५९
लक्ष्मण	१५९	अयोध्या	८५
आत्रि	८५	अनसूया	८५
अगस्त्य	१८५	पुलस्त्य	१८३
विश्रवा	१८३	विष्णु	१८३
कुवेर	१८३	लंका	१६०

संबंध संबंधी

रक्त सम्बन्धी-

सन्तति	पृ० ६	पुत्र	पृ० ६
पितामह	६	सन्तान	६
कन्या	७	वंश	६
माता	१५	पिता	१५
भाई	५७	सुत	६४
कुल	६४	पुत्री	४७
जननी	८२		

संस्कार संबंधी-

पति	पृ० ४१	स्त्री	पृ० ४७
स्वामी(पति)	४८	भार्या	८६
बंधु	१७०		

व्यवहार संबंधी-

पथिक	१३२	मित्र	१११

व्यवसाय संबंधी-

भूपति	४	गुरू	४४
नृपति	४	आचार्य	४८
भात	७	मंत्री	५०
राजा	७	विप्र	१७१
नृप	१४	वेश्या	५६
गुरू	५७	शिष्य	८५
सैन्य	५९	सेवक	७९
यती	१८०		

शरीर एवं उसके अवयव संबंधी-

चरण	पृ० १	अधर	पृ० ८६
लोचन	४७	नाक	९६
शिर	४७	नख	१२८
देह	८३	लिंग	१२८
उपस्थ	१२८	कटि	१२८
रोम	१२८	केश	१२८
रूधिर	४४		

खाद्य संबंधी-

हविष्य	४०	संजीवनी	१५७
पायस	४०	औषधी	१५६
फल	७१	रस	१२८
विष	७७	अमृत	९१

ग्रह एवं स्थान संबंधी-

सागर	६१	पृथ्वी	७
ग्रह	४१	त्रैलीक्ष्य	१५०
सूर्य	४१	धाम	१८१
चन्द्रमा	४१	पाताल	१६३
बृहस्पति	४१	लोक	१६३
शुक्र	४१	वन	७९

वेष-भूषा संबंधी-

भूषण	पृ० ४१	केशर	पृ० ४१
कुंडल	४२	वल्कल	९४

किंकिनी	४२	आभरण	५०
जटा	८१	मुकुट	८१
वस्त्र	८४	किरीट	१५७

काल संबंधी-

नित्य	पृ० ५	ऋतु	पृ० ६
समय	६	मास	४१
वर्ष	१८१		

धन संबंधी-

सुवर्ण	५६	गृह	८९
धेनु	१८०	रत्न	१७१

विविध-

विवाह	पृ० १३	तोमर	पृ० १६३
विघ्न	१	खड्ग	१६३
समीर	२५	वृष्टि	१६३
पथ	२५	विमान	१७६
चक्र	४४	वृद्ध	१७७
शस्त्र	४५	वाहन	१७७
धनुष	४५	दुदुंभी	१६२
वाण	४५	पुष्पक	१८२
रथ	५२	गंध	१९७
दंडवत्	५६	पुण्य	१९७
ध्वजा	८१	मदम्ब	८१
अंकुश	८१	शंख	४४

(२) भाववाची संज्ञा

भाव एवं मनोविकार संबंधी-

श्रद्धा	पृ० ८९	शाप	पृ० ७
करूणा	१७३	अभिमान	१७३
इच्छा	१९९	क्षमा	१९९
लज्जा	५३	चिन्ता	१४५
अहंकार	१९७		

गुण-अवगुण संबंधी-

प्रीति	२०१	सुख	१९७
उत्पात	५२	प्रभुता	१९७
स्तुति	१९७	ज्ञान	१९६

अवस्था संबंधी-

उपवास	१९९	प्रतिज्ञा	१९९
आदर	१९८	आपदा	१४८
विश्राम	१३२	पुण्य	१११
मृत्यु	१९०	अवतार	१९६
वन्धन	१९६	योग	१९७
आराधना	१९७		

२.विशेषण

लोभी	३४	अद्‌भुत	८१
आतुर	८१	मिथ्या	२००
उचित	२००	ज्ञानी	३४
द्रोही	३४	महा	४४
पापी	४६	दुष्ट	४६
विशाल	४७	सहस्त्र	१०६
कोटि	१८०	दश	१८१

तत्सम संज्ञा एवं विशेषण शब्दों के प्रयोग में लेखक ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि उनका प्रयोग अभिव्यंजना की सार्थकता के लिए ही हो। धर्म संबंधी शब्दों के स्थान पर तद्‌भव या देशी शब्दों से उसी प्रकार काम चलाना संभव नहीं होता, जैसे किसी तकनीकी विषय पर स्थानापन्न शब्दों से काम नहीं चलाया जा सकता । ये तत्सम शब्द आज भी व्यवहार में आ गये हैं। इसी प्रकार जिन जातिवाची एवं शब्दों के उच्चारण में परिवर्तन नहीं हुए हैं, उन्हें उसी रूप में रखा गया है। कुछ जाति वाचक शब्दों के जैसे व्याघ्र, नाग आदि तत्सम रूप ही रखे गये हैं।

३- क्रिया (धातु)

कीर्त्त	(कीर्तने)	पृ०	३५
हृष्	(हर्षाने)		८१
वध्	(बधते हैं)		२६/४८
याच्	(याचने की)		१४
शक्	(शकते)		९२

शक्	(शक्कते)	१४३
तज्	(तज)	५३
हर	(हर लिया)	११०
पूज्	(पूजते हैं)	१५
वह्	(बहती है)	१७
गा	(गावें)	२०
सह्	(सहते हैं)	२१
चल्	(चलते हैं)	५३

अव्यय एवं क्रिया विशेषण

सदा	पृ० ३४	पर	२०१
अति	४७	शीघ्र	`
निकट	१४	सहित	१५
समेत	१५	निमित्त	१०९

तत्सम धातुओं से बनी क्रिया का रूप बहुत कम मिलता है। लगभग सभी क्रियायें तद्भव का रूप लेकर चली हैं। फिर भी स०मि०ग्रं० में "वध्, कीर्त एवं धाच्" धातुओं की क्रियाओं के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं ।

तद्भव एवं अर्ध तत्सम शब्द

सदल मिश्र ग्रंथावली में तत्सम और तद्भव शब्दों की संख्या ही अधिकतम है। जहाँ लेखक ने देखा कि तत्सम शब्दों के बिना तद्भव शब्दों से अभिव्यक्ति में कोई त्रुटि नहीं रह जाती, वहाँ उन्होंने यथासंभव तद्भव,शब्दों से काम लिया है। ग्रंथावली के पृष्ठ ३६ के तत्सम, तद्भव अर्ध तत्सम एवं बोली के शब्दों का अनुपात निकालने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि कुल शब्दों के ५० प्रतिशत तत्सम, ४० प्रतिशत तद्भव है और शेष १० प्रतिशत में अर्ध तत्सम एवं बोली के शब्द आते हैं। सर्वेक्षण के अनुसार उक्त पृष्ठ के शब्दों की संख्या इस प्रकार है :-

कुल शब्द संख्या	२७६
तत्सम	१४०
तद्भव	११२
अर्ध तत्सम	१२
बोली	१२

ऊपर के आँकड़े से यह स्पष्ट है कि तत्सम और तद्भव शब्दों का ही प्रयोग अधिक किया गया है। जिस पृष्ठ के शब्दों की संख्या ऊपर दी गई है, वह "रामचरित" का प्रारंभिक पृष्ठ है। तत्सम शब्दों की संख्या बाद के पृष्ठों में क्रमानुसार घटती गई है और उसके स्थान पर प्रयुक्त तद्भव या देशी शब्दों की संख्या में बृद्धि होती गयी है। विदेशी शब्दों का प्रयोग नगण्य है।

सच पूछा जाय तो स०मि०ग्रं० के दो ग्रंथ खड़ी बोली के मानक स्वरूप को निर्धारित करने की दिशा

में लेखक के लक्ष्य एवं प्रयास के अद्‌भुत संयोग के उदाहरण हैं। तद्‌भव शब्दों का अध्ययन पर्वोक्त वर्गों के अंतर्गत ही किया जा रहा है :-

(१) तद्‌भव शब्द

(१) संज्ञा- (वस्तु वाची)

१ - जाति एवं योनि संबंधी अर्ध तत्सम

लोग	पृ॰३६	बाघ	व्याघ्र	पृ॰ २०
गुह	८०			
नाव	८०			
पंछी	८२			
गाय	८२			
घोड़ा	२०१			
भालू	४०			
कुत्ता	२०			
हरनी	९			
हाथी	१४			
बीछू	२०			
साँप	२०			
गिद्‌ध	२०			
कौए	२०			
बिच्छू	२०			
चाण्डालिन	६६			
मगर	१३१			
सुग्गा	८			

२. संबंध संबंधी

(१)रक्त संबंधी अर्ध तत्सम

बाप	पृ॰	१३	पितर पृ॰ ३५ पितृ
भाई		८०	
गोतियाँ		१३,१५	
बेरी		१३	
बहन		९६	
लड़कन (पुत्र के अर्थ में)		२०	

पोता	३९		
पूत	१३		
नाती	५९		

(२) संस्कार संबंधी-

शसुर	३८		
सवति	५८		
सहाय	११४		
पाहुन	९०		
जंवाई	१५		
हित-मीत	१५		

(३) व्यवसाय संबंधी

रानी	५८०		
सखी	८		
सहेली	७		
रंडी	१२३		
साथी	९६		
वटमार	११५		

शरीर एवं उसके संबंधी-

पाँव	८०	अर्ध तत्सम	
हाथ	७	कान	कर्ण पृ० १५६
दाँत	१६६		
लोहू	११३		
पीप	२७		
कांध	१४२		
कांख	१८७		
पेट	८		
रोंए	८		
छाती	९		
गले	२३		
माथ	१८४		

वेष एवं परिधान

लंगोट	८०	सिंगार	श्रृंगार

हार	५२		
कपडे	१०९		
खड़ाऊँ	८३		
गहना	१५		
अंगोछा	२०१		
धोती	२०१		

खाद्य अर्ध तत्सम

पानी	८२	दूध	दुग्ध पृ० ६९
कटहल	८१		
पेड़े	४३		
पकवान	४३		
खीर	४०		

स्थान एवं समय

आज	८०	पहर	प्रहर (पृ० ९४)
पहाड़	८१	वरस	वर्ष (प० ६)
जंगल	४३	रात	रात्रि (पृ० ४५)
वाट	७१		
पहार	४७		
नैहर	७६		
सुदि	४१		
घर	१४		
अटारी	५		

साधन अस्त्र संबंधी

मुंगड्रों	२०		
परसा	--		
बरछी	२३		
लाठी	२३		
पालकी	१७७		

वस्तु, द्रव्य संबंधी

चौकी	३६	आम	आम्र
छिलका	८०	चौर	चमर
विछौना	८०	बाजा	वाद्य (पृ० २४)

केला	८१
मिट्टी	७३
कौड़ी	१८०
कचनार	८१
गाद्य	८१
फूल	२००
खंभ	५०
इंधन	९
तामा	२२
लोहा	२२
रूपा	२६

विविध

		अर्ध तत्सम		
डाढ़	८१	धूर	धूलि	पृ० ८१
राज्यपाट	८२	वीज	वीर्य	८
करतूति	८२	घर	गृह	८२
पहाड़	३५	तीरथ	तीर्थ	५६
नगर	२०१	बाजा	वाद्य	५२
रस्सी	१४२	लछुमन	लक्ष्मण	४५
बरात	५०	परव	पर्व	४४
धूम	६४	काज	कार्य	१२
छांह	६४	अगिन	अग्नि	४०
उपाय	७३	मूरति	मूर्ति	११८
पलंग	७०	सिया	सीता	६६
घड़ा	५१	जनम	जन्म	७१
पत्ता	४२			
जनेऊ	३९			
आग	८३			
सिन्दूर	२४			
आँसू	५५			

भाववाची

भाव एवं मनोविकार संबंधी

नेम	३३	नेह	स्नेह

पीर	५२	स्वारथ	स्वार्थ	१९
विनती	३४	आशीसु	आशीष	९०
भूख	४३	धीरज	धैर्य	२०१
धिकार	७३			
प्यार	७१			
भरोसा	६६			
रोस	६१			
डौल	६५			
प्यास	७५			

गुण एवं अवस्था तथा व्यापार अर्ध तत्सम

अंधेरा	३६	वरनन	स्वरागम	८२
वात	८०	जेतिस	ज्योतिष्	
टहल	८०	काम	कर्म	
बातचीत	८१	जोति	ज्योति	३५
उपाय	३४	भाग	भाग्य	४८
गोद	४६	महात्म	माहात्य	३४
चूक	७४			
पदवी	५६			
बड़ाई	३३			
बषान	५८			
बकझक	४७			
समाचार	७६			
उथल-पुथल	१५			
झंझट	३४			
व्याह	१२			
बधावा	१५			

सभी सर्वनाम तद्भव शब्द होते हैं, अतः उनका वर्गीकरण यहाँ आवश्यक नहीं है। इस पर व्याकरण प्रकरण में विस्तार से विचार किया जाएगा।

तद्भव

विशेषण

मूल विशेषणों की संख्या अधिक नहीं हैं । विशेषण का निर्माण प्रायः प्रत्ययों के योग से होता है और विभिन्न भेदों के अन्तर्गत इनका वर्गीकरण किया गया है। विशेषण की दो श्रेणियाँ हैं- विकारी एंव अविकारी। मूल विशेषण दोनों श्रेणियों के अंतर्यत आते हैं। यहाँ हम विकारी विशेषणों के तिर्यक् रूपों पर विचार न कर उनके सामान्य रूप पर ही विचार करेंगे। इन्हें रूपान्तरशील एवं रूपांतर रहित विशेषण भी कहते हैं।

रूपान्तरशील विशेषणों के मात्र एक रूप उद्धृत किये जा रहे हैं।

तद्भव	रूपान्तर शील		रूपान्तर रहित	
	अच्छा	पृ० ५	मलीन	पृ० १०
	सुथरा	पृ० ६	डरावने	पृ० १७
	कड़ी	५२	लाल	१०
	मीठी	१४	कठोर	१७
	खड़ी	५	सिगरे	३३
	बड़ी	५	तनिक	१४७
	सुंदरी	६		
	सारी	७		
	बड़ा	९		
	भली	९		
	अच्छा	१०		
	छोटे	१९४		
	बिचली	६१		
	कड़ुआ	८३		
	अँधे	४१		
	प्यासा	१५९		
अर्ध तत्सम				
	मूरख (मूर्ख)	१९१		

संख्यावाचक विशेषण

व्याकरणिक अध्ययन के अंतर्गत दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ एवं नौ के अलावा बीस, तीश, अशी, नब्बे, सौ, सहस्त्र, आदि शब्दों के प्रयोगों पर विचार किया गया है। इसमें 'सोलह' के स्थान

पर 'सोरह' भोजपुरी शब्द का प्रयोग मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संख्यावाची शब्द प्राय: तद्भव या बोली के ही हैं। लेकिन एक, दश, एवं सहस्त्र जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। क्रम वाचक एवं समुदाय वाचक संख्यावाची विशेषण मूल शब्द न होकर यौगिक हैं।

धातु (क्रिया)

स॰मि॰ग्रं॰ में तद्भव धातुओं की संख्या सबसे अधिक है। लेकिन इसके साथ ही नाम धातुओं का प्रयोग आरंभिक गद्य लेखक की अपनी विशेषता तथा अभिव्यक्ति की सफलता के लिए उनकी प्रयत्नशीलता का परिचायक है।

धातु		नामधातु	
आ	पृ॰ १,२०	भूल्	पृ॰ १२
पहुँच्	६	चाह्	१२
ठहर्	६	उपज्	११
बोला	१३	उठ	११
आव्	१४	चुक्	१८
जुड्	१५	खा	१२
पाव्	१८	जनम	११ (जनमा)
जना	२०	चितौ	११ (चितौने)
बताव	२२	व्याह्	२१ (व्याहते)
नाच्	२३	नाश्	२३ (नाशते)
पूछ	३१	निन्द्	२३ (निन्दते)
पढ़ा	३४ (पढ़ावने)		
गाव्	३४ (गावते)		
पूरा	१८ (पूराओं)		
देख	१९		
फट्	१५		
जा	१३		
गंव	२३ (गंवाना)		

मुख्य धातुएँ 'करना' तथा 'होना' (भया, भये सहित) वाक्य रचना के आधार पर ही है। इनके अतिरिक्त अन्य धातुओं में से कुछ के उदाहरण ही ऊपर प्रस्तुत किये जा सके हैं।

अव्यय एवं क्रिया विशेषण

स॰मि॰ग्रं॰ में प्रयुक्त अव्यय एवं क्रिया विशेषण के मूल शब्दों में तद्भव शब्दों की संख्या की ही प्रमुखता है। अर्ध तत्सम एवं बोली के भी शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो युग के प्रचलित प्रयोग एवं स्थानीय प्रभाव का द्योतक है। इनमें से कुछ शब्दों के उद्धरण इस प्रकार है :-

आजतक	पृ० ११	इतने	पृ० १५
बार बार	११	पीछे	१६
झट	१७	तब तक	२२
पंहर भर में	१७	यहाँ	१४
आगे	१०	पास	१४
चहुँ दिशि	१५	मत	१७
कैसे	२०	क्योंकर	११
क्यों	१२	बहुत	११
समान	१५	सा	१५
वो	१९	ओर	१०९
आगे (सामने के अर्थ में)	१०९	आगे (भविष्य में)	५६
आगे (पहले)	४६	अकेले	२२
बृथा	५३	जहाँ	६७
तहाँ	६७	तुरन्त	७६
अभी	७६	समान	५
जबतक	६६	दूर	१०६
तलक (तक)	१०६	एकबारगी	६८

विदेशी शब्द

स०मि०ग्रं० में विदेशी शब्द का प्रयोग नगण्य रूप में मिलता है। जहाँ उनके सहयोगी अपनी रचनाओं में अरबी एवं फारसी के शब्दों के प्रयोग से बचने की पूरी कोशिश रखते रहें, वहाँ पं० सदल मिश्र की कृतियों की भाष में विदेशी शब्द अनायास अप्रयुक्त रहे। इनकी कृतियों में देशी या भोजपुरी शब्दों का प्रयोग बहुत हुआ है लेकिन शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है।

मिस्तर	पृ० ३३	अंग्रेजी
जॉन	३३	,,
गिलकृस्त	३३	,,
लार्ड	३३	,,
मारटंग बहादुर	३३	,,
कम्पनी	५	,,
साहब	५	फारसी
कलिकत्ता	५	अंग्रेजी
जामा	१७२	फारसी
जगह	८३	फारसी
आहिस्ते आहिस्ते	१२८ (धीरे धीरे)	फारसी

लोगबाग	५०	फ़ारसी
तैलंगे	१९३	फारसी
हूजिए		फारसी

"जॉन गिलकृस्त" की हिन्दी में आजतक प्राय: सभी लेखक गिलक्राइस्ट लिखते आये है। सदल मिश्र द्वारा इनका नाम "गिलकृस्ट" लिखे जाने से यह निश्चित है कि उनके नाम की इसी रूप में उच्चरित होते सुना और इस दृष्टि से उनके नाम का यही उच्चारण मान्य होना चाहिए। इस संबंध में "फोर्ट विलियम कालेज" विषय के प्रसिद्ध अध्येता डा॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपनी एक भेंट में मुझे बताया कि यद्यपि उन्होंने सभी ग्रंथों में इनका नाम 'गिलकृस्ट' लिखा है, फिर भी इनका सही उच्चारण "गिलकृस्ट" है। उन्होंने बताया कि इस विषय पर उनकी बातचीत एक विदेशी विद्वान से भी हुई थी और उससे भी इस बात् की पुष्टि हुई। पं॰ सदल मिश्र ने 'गिलकृस्ट' शब्द को ही भारतीय उच्चारण के अनुसार गिलकृस्ट लिखा है। अत: प्रस्तुत शोष ग्रंथ में सर्वत्र इसी शब्द का प्रयोग किया गया है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में विदेशी शब्दों के प्रयोग की न्यूनता का अर्थ यह कदापि नहीं लगाया जा सकता कि लेखक ने इंशा अल्ला खाँ की तरह फारसी या अरबी के शब्दों से बचने की कोशिश की है। इस ग्रंथ में प्रयुक्त शब्दावली के चयन में लेखक का यही प्रयास रहा है कि कोई भी शब्द दुरुह या अपरिचित न हो। जहाँ जरूरत पड़ी, उन्होंने सामान्य जन की समझ में आने वाले शब्दों को ही चुना और इसके लिए जन प्रचलित शब्दों मुहावरों का भी लाभ उठाया जैसे :-

बक-झक	पृ॰ ४७
भला-बुरा	३३
झगरा-झंझट	३४
सुने-सुनावे	३५
रोते-कलपते	३६
झूठ-मूठ	३७

जैसा कि स्पष्ट है, सदल मिश्र ने अपने ग्रंथों के मात्र-भूमिका अंशों में अंग्रेजी की सिर्फ उन्हीं संज्ञाओं का प्रयोग किया जो समकालीन सहयोगी अंग्रेज अधिकारियों से संबंधित हैं।

देशी या भोजपुरी

पं॰ सदल मिश्र बिहार के आरा जिले के निवासी थे और उनकी मातृ-भाषा भोजपुरी थी। फलत: इस आरंभिक गद्य लेखक की रचनाओं में उनकी मातृभाषा भोजपुरी के शब्दों का प्रयोग मिलना आश्चर्य की बात नहीं।

यद्यपि बिहार में शिक्षा का माध्यम हिन्दी रही है, तथापि मातृभाषा के रूप में वहाँ तीन प्रमुख भाषाओं- मैथिली, मगही और भोजपुरी का जनता में मुख्य रूप से व्यवहार होता है। इन तीनों भाषाओं में भी जनसंख्या एवं विस्तार की दृष्टि से भोजपुरी का महत्वपूर्ण स्थान है। भोजपुरी केवल बिहार में ही नहीं अपितु उत्तर प्रदेश के एक बड़े भूभाग में मातृभाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। यह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है क्योंकि अपने क्षेत्र के बाहर हिन्दी-महासागर के अफ्रीका के पास के कई द्वीपों- मरीशस, सुरिनाम,

ब्रिटिश गाइना, त्रिनिडाड एवं नैरोबी आदि स्थानों में भी इसके बोलने वाले निवास करते है। भोजपुरी लगभग आठ करोड़ लोगों की भाषा है।

कुछ पृष्ठों के शब्दों की संख्या के सर्वेक्षण से यह प्रमाणित हो चुका है कि स०मि०ग्रं० में प्रयुक्त भोजपुरी शब्दों के प्रयोग के बारे में जो कुछ कहा गया है उसमें अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है। पं० सदल मिश्र ने जिन भोजपुरी शब्दों का प्रयोग किया है, उनमें से कितने ही आज की परिनिष्ठित हिन्दी में आत्मसात् होकर उसकी शक्ति एंव शोभा को बढ़ा रहे हैं।

भोजपुरी शब्द-

संज्ञा- **(क) वस्तुवाची**

जाति या योनि संबंधी :-

भारू	पृ० ८	बिलाई	पृ० २३
विखार	८	भाल	२०२ (भालू)
दियकों	७३ (दीमक)	बाँदर	१०१ (बंदर)
		भोर*	१९५

संज्ञा- **(क) वस्तुवाची-**

व्यक्ति वाचक-

लछुमण	६९

संबंध संबंधी-

संस्कार व रक्त संबंधी-

गोतिया	पृ० १३ (गोत्र)	सवत	पृ० ३९ (सौत)
मतारी	१७ (माता)	धिया	८५ (बेटी)
चचा	१६२ (चाचा)	नैहरे	७६ (मैके)
पोता	५५ (पौत्र)	पतोहू	११५ (पुत्रबधू)

शरीर एवं अवयव संबंधी-

लोहू	पृ० १६८	बार	पृ० १७२ (बाल)
जाँघ	१६२	ठोठ	१५८ (ओठ)
कनषी	१०५	गरे	५२ (गले)
पाव	७१	ठेहुन	१८७ (घुटना)

विविध-

लत्ता	६८ (कपड़)	पैरकिया	४३ (खाद्य)
पनही	२७ (जूता)	पादचार	१७२ (पैदल)
ढोल	१६९	लक	१६९ (बिजली)

ढोल	१६९	लुक	१६९ (बिजली)
बाट	१९ (राह)	भूका	१६६ (मुक्का)
धूर	११६ (धूल)	सीता	१६६(डंडा)
झोरी	७२ (झोली)	फरसों	१५५ (परसा)
तार्करा	६५ (सब्जी)	डंटी	५४
वैदकी	१६० (चिकित्सा)	गंजन	२१ (दुर्दशा)
गोबरी	१२(गोबर की घोल)	अशीसु	८७
अंकबार	२२(गले से लगाना)	अहेर	१०४ (खोज)
इन्दरा	१११ (कुँआ)	अँधारे	१२
भंटकाव	१४	ठावँ	११६ (जगह)
उबटन	४५	टील्हे	७३
ठट्टा	१०२	मनक	१४३ (आवाज)
पारण (ब्रत के बादभोजन)	१३४	मूंड़ी	१११ (सिर)
महूरत	३८	डाढ़	१३६ (डाल)
तड़के (सबेरे)	१९२	किरिया	६० (क्रिया)
हरिअरी (हरापन)	४६	अकाज	१४९
सोपारी (सुपारी)	११८	रखवारी	९१ (रखवली)
विपत (विपत्ति)	१३	कवाड़	११५ (किवाँड़ा)
परछाहीं	३०	भाग	३४ (भाग्य)
जाड़ (जाड़ा)	६५	तलाव	१११ (तलाब)
नछावर (न्योछावर)	१७६	गड़हा	१०५ (गढ़ा)
घाहिल (घायल)	११५	गोदी	१ (गोद)
चेले	१५९	लौंडी	४८ (दासी)
हुंडार (भेड़िया)	२०	परात	४० (एक बड़ा बर्तन)
जजमनिका (पूजा कराने का व्यवसाय)	१५७	लोहू	९४
न्याव (न्याय)	९३	निहोरा	८८ (अनुनय)
निकाश	३५	भेंहरा	१६५ (तहखाना)
बिल (छेद)	१९६	बिछौना	१५ (बिछावन)
बतकहा (बातचीत)	२५	भेव	४८ (भेद)
घुसा (घुस्सा)	११२	झोरी	२०० (झोली)
अंगने (आँगन)	४०	कोश	१२७
रीस	९७	खराऊँ	१७४
भेष (वेष)	१९८	पीप	२१ (घाव की मवाद)

रूपैया	१५	जवांई	१५ (दामाद)
लड़कई (लड़कपन)	९		

सर्वनाम

स॰मि॰ग्रं॰ में तद्‌भव सर्वनाम शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। फिर भी दो एक सर्वनाम शब्द ऐसे हैं, जिनका रूप भोजपुरी के प्रभाव के कारण थोड़ा भिन्न हो गया है। इनका प्रयुक्त रूप इस प्रकार है :-

जौन जौन (पृ॰ २१) (जो-जो)

सबही के (पृ॰ ११) (सभी के)

विशेषण

भोजपुरी के मूल विशेषण शब्दों का प्रयोग बहुत मिलता है। स॰मि॰ग्रं॰ में प्रयुक्त विशेषणों के विषय में सम्बन्धित स्थान पर यह कहा जा चुका है कि धार्मिक ग्रंथ होने के कारण अधिकांश विशेषण तत्सम है। लेकिन तद्‌भव विशेषणों का प्रयोग भी कम नहीं है। यहाँ भोजपुरी के उन विशेषणों को उद्धृत नहीं किया जा रहा है, जो प्राय: हिन्दी में प्रयुक्त हो रहे हैं।

ज्यादिक	पृ॰ ११६ (ज्यादा)	एकईश	पृ॰ ४५ (इक्कीस)
डरावन	१३९ (डरावना)	सोरह	
सोहावन	३६ (सुहावना)	लहुरे	
चोख	१९६(तेज)	तीते	६५ (तेज)
भुरकुस	२६ (चूर)	मढ़	१५३ (मूर्ख)
अजगुंत	१२ (आश्चर्यजनक)	बिजली	१२०

धातु (क्रिया)

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त क्रिया पदों (धातुओं) में बोलियों का प्रभाव सर्वाधिक मिलता है। यह प्रभाव न सिर्फ भोजपुरी का है बल्कि इन पर ब्रजभाषा एवं बंगला के प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। कुछ धातुएँ ऐसी भी मिली हैं, जो पूर्णत: भोजपुरी में ही प्रयुक्त होती हैं और उनके प्रयोग से भोजपुरी क्षेत्र के बाहर के पाठकों की किंचित् असुविधा हो सकती है।

हेल्	पृ॰ १३०	बिना तैर पार करना
रगेद्	१०	रगेदना- दौड़ना
ढाह	१६६	ढाहना-गिराना
गांज्	९६	गांजना-एकत्र करना
खन्	१११	खनाना-खुदवाना
ताक्	१६२	जुड़ाना-खुश होना
जुड	१५	जुड़ाना-खुश होना
पसर्	१०	पसरना-फैलना

पसर्	१०	पसरना-फैलना
बतर्	६६	बतराना-बात करना
बिसाह्	२२	बिसाहना-खरीदना
बरज्	६३	बरजना-बर्जना मना करना
पहिर्	१५	पहिराना-पहनाना
बद्	१५	बदा-लिखा
पियर्	८	पियराना-पीला पड़ना
बा	१८७	बाना-मुँह खोलना
धीय्न	२६	धीयना-गर्म होना
अरर्	६७	अरराना-गिरने की आवाज
हाँक	१७८	हाँकना-चलाना
डांह	६०	डांडना-दंड देना
टाप्	१६१	टपना-छलाँग लगाकर
मुंद्	१५९	मूँदना-बंद करना
सध्	१५१	सधना-पूरा होना

भोजपुरी भाषा की कुछ ऐसी धातुओं का प्रयोग हुआ है, जो मात्रा एवं व्यंजन में किंचित् संशोधन के पश्चात् परिनिष्ठत हिन्दी की मानी जाएँगी।

बोला	१३	बोलवाना-बुलाना
बोहार	१२	बोहारना-बुहारना
लीपौंना	१०	लौपौंगी-लीपूंगी
संताना	१५१	संताना-सताना
फिराव्	१४२	फिरावना-फिराना
बाज्	१५	बाजना-बजना
चहुंक	९	चहुँक-चिहुँक
लहरा	११०	लहराना-आग लगाना
हड़बड़ा	५८	हड़बड़ाना-घबराना
धिरकार	९३	धिरकारना-धिक्कारना
चीन्ह्	१२	चीन्हना-पहचानना
दुबरा	१९	जनाना-दुर्बल होना
जना	१४५	जनाना-बताना
निहार्	७४	निहारना-ध्यान से देखना
समुझँ	१५०	समुझना-समझना

भोजपुरी में प्रयुक्त क्रिया विशेषण एवं अव्यय कतिपय उच्चारण-भेद के कारण भिन्न हो गये हैं। सदल मिश्र ग्रंथावली में ऐसे जिन शब्दों का प्रयोग मिलता है, उनमें से बहुत से शब्दों का प्रयोग उस समय ब्रजभाषा एवं अवधी में भी हो रहा था। कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जो आज हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे हैं और कुछ का प्रयोग अब बिलकुल नहीं होता।

कालह	पृ० १२०	कल
तहाँ	१	उस जगह
नीके	६३, १४९, १५९, १७७ - ठीक तरह से	
मारे (लाठिन)	२२	से
भर	१, १४३	पूरा-प्रयोग-भर जन्म
इहाँ	१२	यहाँ
साहने	१२	सामने
कहूँपर	८	कहीं
कबहूँ	१५४	कभी
बेर	३३,१५७	बार-एकबार
अबहीं	१२	अभी
जिन, जन	११३	मत
ढेर	२९	बहुत
एत्ता	१३७	इतना
अरू	३३,३४	और
कतहीं	८	कहीं
कधी	१	कब
कभू	१०	कभी
ह्यां	१३९	यहाँ
ओतना	१८१	उतना
औ	१९८	और
वो	५	और
इहाँ	७, १४	यहाँ

इहाँ	७, १४	यहाँ
सगरे	१८, २६	सर्वत्र, सभी जगह,
तैसे ही	२८	वैसे ही
निपट	८६	बिलकुल
नीक	१५९	ठीक तरह

यौगिक या व्युत्पन्न शब्द

ऐसे शब्दों के पाँच भाग किये जा सकते हैं।

१- उपसर्गयुक्त

२- प्रत्यय युक्त

३- समास

४- द्विरूक्त

५- शब्द-युग्म

उपसर्ग एवं प्रत्यय का महत्व उनके किसी शब्दों के पहले या अंत में जुड़कर शब्दों के अर्थ में परिवर्तन ला देने में ही है। उदाहरणार्थ "अधिकार" एवं अध्ययन दोनों शब्दों के पूर्व "अधि" जुड़ा है। इसी प्रकार "अधिकार" एवं "विकार" में उपसर्ग बदलने के कारण 'कार' के संयोग से दो भिन्नार्थक शब्दों की रचना हो गई है। सदल मिश्र ग्रंथावली के संस्कृत शब्दों में जिन परम्परागत उपसर्गों का प्रयोग मिलता है। उनमें से कुछ के उदाहरण इस प्रकार है :-

उपसर्ग	**अर्थ**	**उदाहरण**			
सत्	अच्छा	सज्जन	पृ० २००	सद्गति	पृ० ३५
सम्	अच्छी तरह	संसार समाचार	२०० २०१	संहार	२०१
अभि	हरतरह से	अभिषेक	२०१		
परा	परे	पराक्रमी	९४		
नि:	बिना	नि:शंक	२००	निर्मल	३६
अन	बिना	अनंतर	१४३		
अधि	ऊपर	अध्यात्म	३४		
प्र	आगे	प्रताप	३६	प्रसिद्ध	३६

पर	परे, दूसरा	परब्रम्हा	३६	परलोक	३४
		परउपकार	३३		
वि	विशेष	विज्ञान	३६	विधाता	३३
		विहार	५७		
सु	अच्छी	सुकुमारी	८०		
		सुतपस्या	९	सुचित	४६
अ	बिना	अज्ञानता	८३	अधर्म	२८
		अविनाशी	३५		
परि	चारोतरफ	परिक्रमा	८३	आभरण	५७
		आचार	३४		
आ	तक, इधर	आगमन	८३		
नि	रोध	निषिद्ध	३५	निडर	३५
कु	खराब	कुवाच्य	३५	कुमारग	४४
उत्	ऊपर	उच्चारण	३५		
अति	बहुत	अतिहर्षित	३३		
दु	खराब, छोटा दुखित				
अब	नीचे	अवस्था	६	अवतरे	११४
अप	बुरा	अपराध	१०१		
परि	चारोतरफ	परिवार	२७		
उप	पास	उपस्थित	३३		

हिन्दी के उपसर्ग बहुत थोड़े हैं, जिनका प्रयोग उपलब्ध हुआ है।

अध	आधा	अधमुआ	११३
एक	पूरा	एकमत	११५
अन	निषेध	अनगिनत	५०
नि:	बिना	नि:कारण	८७
नि	विना	नियुक्ती	

प्रत्यय

जहाँ तक प्रत्ययों का संबंध है, संस्कृत के 'अ' अन, आन, आ, लिन् अनट् एवं तव्यत् एवं ल्यप् कृदन्त प्रत्ययों से बने तत्सम शब्दों की बहुलता है, लेकिन इसके साथ ही हिन्दी के अपने प्रत्ययों के भी उदाहरण पर्याप्त रूप में मिलते हैं। संज्ञा में वचन एवं लिंग के कारण होने वाले शब्द-परिवर्तन

ल्यप् कृदन्त प्रत्ययों से बने तत्सम शब्दों की बहुलता है, लेकिन इसके साथ ही हिन्दी के अपने प्रत्ययों के भी उदाहरण पर्याप्त रूप में मिलते हैं। संज्ञा में वचन एवं लिंग के कारण होने वाले शब्द-परिवर्तन में जिन तद्धित प्रत्ययों का योग मिला है, उनके संबंध में वचन एवं लिंग प्रकरण में विचार किया जा चुका है। कृदन्त प्रत्ययों के संबंध में क्रिया प्रसंग में विचार किया जा रहा है। मूलतः प्रत्यय के दो भेद हैं- कृदन्त तथा तद्धित ।

अ-	हार, प्रकाश (पृ॰ २०३), बोध (पृ॰ ३४), पाठ (पृ॰ ३४)
अन	दर्शन (पृ॰ ४८), मरण (पृ॰ १६१)
आ-	कथा (पृ॰ ५) चिन्ता (पृ॰ ७)
इ-	सुमति (पृ॰५) सम्मति (पृ॰ ६)
ई-	गुणो (पृ॰ ५)
क्त	मोहित (पृ॰ ७), दुखित, मुर्च्छित (पृ॰ २००)
ई-	योगी (पृ॰ २०), सुकुमारी (पृ॰८०), पातकी
य-	राज्य (पृ॰ २००), गोष्य (पृ॰ २८) आचार्य (पृ॰ ३३)

इन प्रत्ययों पर विचार करने से अधिक महत्वपूर्ण उन प्रत्ययों पर विचार करना होगा जो समकालीन लेखक प्रयोग में ला रहे थे या जो पहले से थोड़ा बहुत प्रयोग में थे।

प्रत्यय इस प्रकार हैं-

हारा	विनाशन हारा	पृ॰ ३८
हारों	धूमनिहारों	३६
	करनहारी	३७
भावत	मनभावत	३१
आव	भटकाव	१४
	अटकाव	१४
आवन	डरावन	१६७
वाला	उपजाने वाला	६
दायक	फलदायक	३३
	सुखदायक	८४
आदिक	हत्यादिक	३५
हार	जननिहार	३३

पदों की संख्या अत्यन्त नगण्य है। अतः यहाँ संस्कृत के कतिपय समासिक पदों को ही उद्धृत कर इस प्रासंगिक अध्ययन को पूरा करने का प्रयास किया जाएगा।

तत्पुरुष

केहरि-कटि	(पृ० १०)	षष्ठी तत्पुरुष
राजपुत्री	(पृ० १०)	,, ,,
अन्तर्यामी	(पृ० ११)	द्वितीय ,,
यज्ञशाला	(पृ० १०)	षष्ठी ,,
शोक-सागर	(पृ० १२)	,, ,,
गंगा जल	(पृ० १३)	,, ,,
कन्यादान	(पृ० १३)	,, ,,
चरणोदक	(पृ० १४)	
स्वर्गलोक	(पृ० १४)	
देवचरित्र	(पृ० १५)	
वेद रीति	(पृ० १५)	
यम लोक	(पृ० २०)	

तद्भव =	आनन्द-बधावा	(पृ० १५)	
	देश निकाला	(पृ० १५)	पंचमी तत्पुरुष
तत्सम =	वनवास	(पृ० १५)	सप्तमी ,,
	इनद्रजीत	(पृ० ४७)	द्वितीय ,,

कर्मधारय

चंचल नयन	(पृ० १०)
महापुरुष	(पृ० १०)
महा तेजस्वी	(पृ० ११)
पुण्य स्थान	(पृ० ११)
महोत्सव	(पृ० ५६)
कुकर्म्म	(पृ० २२)
सिद्धाश्रम	(पृ० ४५)

पदों की संख्या अत्यन्त नगण्य है। अतः यहाँ संस्कृत के कतिपय समासिक पदों को ही उद्धृत कर इस प्रासंगिक अध्ययन को पूरा करने का प्रयास किया जाएगा।

तत्पुरुष

केहरि-कटि	(पृ० १०)	षष्ठी तत्पुरुष	
राजपुत्री	(पृ० १०)	” ”	
अन्तर्यामी	(पृ० ११)	द्वितीय ”	
यज्ञशाला	(पृ० १०)	षष्ठी ”	
शोक-सागर	(पृ० १२)	” ”	
गंगा जल	(पृ० १३)	” ”	
कन्यादान	(पृ० १३)	” ”	
चरणोदक	(पृ० १४)		
स्वर्गलोक	(पृ० १४)		
देवचरित्र	(पृ० १५)		
वेद रीति	(पृ० १५)		
यम लोक	(पृ० २०)		
तद्भव =	आनन्द-बधावा	(पृ० १५)	
	देश निकाला	(पृ० १५)	पंचमी तत्पुरुष
तत्सम =	वनवास	(पृ० १५)	सप्तमी ”
	इनद्रजीत	(पृ० ४७)	द्वितीय ”

कर्मधारय

	चंचल नयन	(पृ० १०)
	महापुरुष	(पृ० १०)
	महा तेजस्वी	(पृ० ११)
	पुण्य स्थान	(पृ० ११)
	महोत्सव	(पृ० ५६)
	कुकर्म्म	(पृ० २२)
	सिद्धाश्रम	(पृ० ४५)

द्वन्द समास = यह समास बहुत अधिक संख्या में मिलता है, लेकिन यहाँ थोड़े उद्धरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

तत्सम

भोग-विलास (पृ॰ २०)

कन्द-मूल (पृ॰ १४)

कुशल-क्षेम (पृ॰ १४)

धर्म-अधर्म (पृ॰ २०)

भरत-शत्रुघ्न (पृ॰ ५४)

पूजा-पाठ (पृ॰ ५६)

तद्‌भव एवं भोजपुरी

आवागमन (पृ॰ १०)

कांटे-कुश (पृ॰ १५)

मतारी-लड़की (पृ॰ १५)

हित-मीत (पृ॰ १५)

गीत-नाच (पृ॰ १५)

द्विगु समास

त्रिलोकी नाथ (पृ॰ ११)

दशरथ (पृ॰ ४३)

बहुव्रीह समास

सुग्रीव = सुन्दर हो ग्रीव जिसका (सुग्रीव) (पृ॰ १२६)

भक्त वत्सल = जो अपने बच्चों का भक्त हो (भगवान) (पृ॰ ३४)

अव्ययी भाव

तीर-तीर (पृ॰ १२)

फिरते-फिरते (पृ॰ १३)

द्विरुक्ति

शब्दों की द्विरूक्ति भावाभिव्यक्ति की एक अद्‌भुत विद्या है। अपने कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए बोल-चाल में इसका प्रयोग सर्वाधिक होता है। साधारणतया द्विरूक्त शब्दों से वर्गीकरण, वितरण, अतिशयता, क्रम, विभिन्नता, निश्चय, भाव, विह्वलता, न्यूनता, प्रत्येकता, निरंतरता एवं तात्कालिकता आदि को प्रकट करने में बहुत अधिक सहायता मिलती है।

अतिशयता, क्रम, विभिन्नता, निश्चय, भाव, विह्वलता, न्यूनता, प्रत्येकता, निरंतरता एवं तात्कालिकता आदि को प्रकट करने में बहुत अधिक सहायता मिलती है।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के आरंभिक गद्य लेखकों में सिर्फ सदल मिश्र ही ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने द्विरूक्त शब्दों के महत्व को समझा और इसका प्रयोग अधिक से अधिक किया। द्विरूक्तादि शब्द बहुत कुछ मुहावरे का काम तो करते ही हैं, इनसे भाषा में सौष्ठव तथा अलंकारिकता आ जाती है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया एंव क्रियाविशेषण सभी कोटियों में द्विरुक्त शब्दों का प्रयोग बड़े सटीक रूप में किया गया है। ये शब्द तत्सम, तद्भव एवं भोजपुरी सभी स्रोतों के हैं। सदल मिश्र कथावाचक थे अत: निश्चित है कि उन्होंने इन शब्द प्रयोगों को जन-सामान्य की बोल -चाल से ही ग्रहण किया। हम इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर उनकी सार्थकता का अनुमान लगा सकते हैं :-

१.संज्ञा

(क) प्रत्येकता

घर-घर (पृ॰ ७)

अक्षर-अक्षर (पृ॰ ३४)

(ख) क्रम

दिन-दिन - दिन-दिन अश्वमेघ करने का (पृ॰ ३४)

(ग) अतिशयता

गली-गली में (पृ॰ ५८)

कूचों-कूचों में (पृ॰ ५८)

तीर-तीर (पृ॰ १०, १२, २५)

अनुकारणात्मक

कहूँ-कहूँ (पृ॰ १०)

२.सर्वनाम

(क) अतिशयता

जौन-जौन (पृ॰ २१) (जो-जो)

(ख) अनिश्चितता

कोई-कोई (पृ॰ ५)

(ग) प्रत्येकता

अपना-अपना (पृ॰ १०)

अपने-अपने (पृ॰ ४)

क्या-क्या (पृ॰ १३)

(घ) संबंध

जिस-जिस (पृ॰ २२)

(ङ) निश्चितता

३- विशेषण

(क) अतिशयता

सुन्दर-सुन्दर अटारिन	(पृ० ५)
बड़ी-बड़ी अटारिन	(पृ० ५)
सुथरे-सुथरे	(पृ० १२)
साँची-साँची (सच्ची-सच्ची)	(पृ० १)
बड़ी-बड़ी छाती	(पृ० १०)
घने-घने पेड़ों	पृ० १०
अच्छे-अच्छे, मीठी-मीठी वस्तु	२२
उत्तम-उत्तम	५
काली-काली	२०
महा-महा सुखर	२०
मन्द-मन्द	२५
चोखे-चोखे	२६
कड़ी कड़ी वैन	५२
भयंकर भयंकर राक्षसीन	११५
लाल-लाल	२२
युवती-युवती स्त्रियों	२५

निश्चितता

सोरह-सोरह वर्ष की	२५

४- क्रिया

भाव विह्वलता

देखो-देखो	८
पुकार-पुकर	१५
गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ाकर	१०
हाहाभूत	२६

पूर्वकालिक क्रिया-

रो-रो कहने लगा	पृ० ९, १५, १९
मार मार	२६
घसीट घसीट	२९

मार मार २६
घसीट घसीट २९
काट-काट २१
बांध-बांध २२

निरन्तरता सूचक पूर्वकालिक क्रिया-

आय-आय ५,१५
उतार-उतार १५
जा-जा १७
बोला-बोला (बुला-बुँला) १५

अतिशयता सूचक पूर्वकालिक क्रिया-

छाती पीट-पीटकर ९

तत्कालिक वर्तमान

फिरते-फिरते पृ० १२
चलते-चलते २
आँसूभर-भर १२२
विलक-विलक अंगद ने कहा १२५

क्रिया विशेषण एवं अव्यय

समय की तात्कालिका

साथ-साथ १०

पृथकता सूचक

विलग-विलग ८
अलग-अलग ९
लग-अलग १०

स्थान सूचक

कहूँ-कहूँ (कहीं-कहीं) १०

विविध

भाँति-भाँति २३
नित-नित ३५
बार-बार ११, १४, १७
एक-एक २०
धीरे-धीरे १२६

विस्मयादिबोधक शब्द

इन द्विरूक्तादि शब्दों के अन्तर्गत ही उन शब्दों का भी अध्ययन करना वाँछनीय होगा, जिनमें उन्हीं शब्दों की द्विरूक्ति तो नहीं की जाती, लेकिन उनमें समानुप्रास होता है । इस समानुप्रासिकता में द्विरूक्त शब्द की सार्थकता एवं निरर्थकता के ऊपर भी विचार किया जा सकता है, लेकिन उनका वास्तविक महत्व ध्वनि की दृष्टि से ही होना चाहिए। यह द्विरूक्ति कभी-कभी अनुकरणात्मकता के कारण भी हो सकती है। सदल मिश्र ग्रंथावली में इस प्रकार के अनन्त प्रयोग मिलते हैं। लेकिन विषय की विशदता को संक्षेप रूप देते हुए कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :-

संज्ञा

न्याव-विचार	पृ. १७
भाई-बंधुन	१६०
कुच-नितंब	८
काट-कुश	६६
पीप-लोहू	९३
आवभगति	८५
शिंगार-पटार	१७८
हित-मीत	१५
गोबरी-मिट्टी	१२
सेवा-टहल	८०
भोर-भार	८१
देवता-पितर	५७

सर्वनाम- इस संदर्भ में उदाहरण का अभाव है।

विशेषण- ऊँच-नीच ३३ भला-बुरा (पृ. ३३)

क्रिया-		**क्रिया विशेषण**	
मिल-जुल	पृ. ८०	चुप-चाप	(पृ. २००)
रोते-पीटते	८२		

***

व्याकरणिक कोटि
का
निर्धारण एवं संज्ञा

(अध्याय - सात)

भाषा के अध्ययन के अन्तर्गत शब्द कोटियों (पार्ट्स आफ स्पीच) का निर्धारण परमावश्यक है। इस दृष्टि से यदि विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल से वैयाकरणों में इस सम्बन्ध में मतभेद है। निरूक्त के आचार्य यास्क मुनि ने शब्दों के चार भेद माने हैं ये हैं- १- नाम (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण) २- आख्यात (क्रिया) ३- उपसर्ग और ४- निपात (अव्यय)। उपसर्ग से पूर्व प्रत्यय है, जो शब्दों से संयुक्त होकर उनमें अर्थ-परिवर्तन कर देते हैं :- यथा-प्रहार, आहार विहार संहार, आदि । यहाँ प्र, आ, वि, एवं सम जैसे प्रत्यय 'हार' शब्द से संयुक्त होकर अर्थ में परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं, इन्हीं पूर्व प्रत्ययों को उपसर्ग कहते हैं। महर्षि पाणिनी ने उपसर्ग को पृथक शब्द भेद के रूप में स्वीकार न कर उनका अन्तर्भाव अव्ययों में करके तीन ही शब्द भेद माने हैं । ये हैं- १- नाम २- आख्यात ३- अव्यय । अव्ययों के समान उपसर्ग में भी किसी प्रकार का रूप परिवर्तन नहीं होता। कदाचित् इसी कारण संक्षिप्तता की दृष्टि से महर्षि ने ऐसा किया। यद्यपि रूप-परिवर्तन न होने के कारण उपसर्गों को अव्यय कहा जा सकता है परन्तु उपसर्ग और अव्यय में एक मूलभूत अन्तर यह है कि उपसर्ग किसी शब्द के साथ संयुक्त होकर ही अर्थवान बनते हैं, स्वतंत्र रूप से उनका प्रयोग संभव नहीं है। किन्तु इसके विपरीत अव्यय स्वतंत्र अर्थ रखते हैं और उनका स्वतंत्र प्रयोग होता है। बात यह है कि उपसर्ग पूर्व प्रत्यय है, आबद्धरूफ्मि (बाउन्ड मार्फिम) हैं। मक्तरूपिम (फ्री मार्फिम) नहीं। इसी कारण आचार्य पाणिनी ने इनकी पृथक् गणना नहीं की। उनका यह वर्गीकरण बहुत वैज्ञानिक है। हिन्दी की दृष्टि से भी यह स्वीकार्य हो सकता है। परन्तु अव्यय के अन्तर्गत क्रिया विशेषण, संबंध सूचक, समुच्चय बोधक, विस्मयादिबोधक आदि शब्द भी आ जाते हैं। यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो क्रिया विशेषण और अव्यय में भी किंचित् अन्तर है। हिन्दी के अनेक वैयाकरणों ने इन दोनों को एक ही कोटि में रखा है। वास्तव में हिन्दी शब्द के विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए यदि हम निम्नलिखित छ: भेदों को स्वीकार कर लें, तो यह समीचीन होगा। ये हैं- संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया विशेषण तथा अव्यय । इन कोटियों को स्वीकार करने से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि हम अंग्रेजी व्याकरण के आठ शब्द भेद (पार्ट्स आफ स्पीच) से मुक्त हो जाएँगे और हमारा यह वर्गीकरण वैज्ञानिक भी हो जायेगा। हम पं॰ सदल मिश्र की भाषा का अध्ययन इन्हीं छ: शब्द भेदों के अन्तर्गत करेंगे तथा अन्य कृतियों में विशेषरूप से लल्लू लाल के प्रेम सागर का तथा कलकत्ता तथा फोर्ट विलियम कालेज में उनके समकालीन सहयोगियों की कुछ कृतियों का यथास्थान अध्ययन करेंगे।

रूपिम, अर्थात्व (मूल रूपिम) के रूप में यदि एक ओर शब्द से जुड़ा है, तो दूसरी ओर सम्बन्ध तत्व (अबद्ध रूपिम) के माध्यम से इसका वाक्य से भी सम्बन्ध है इस प्रकार यह शब्द और वाक्य के बीच का सेतु है, दोनों को जोड़ने वाली कड़ी है।

पद के सम्यक् अध्ययन के लिए उसका वाक्य स्तर पर भी अध्ययन करना आवश्यक है। एक ही पद विभिन्न वाक्यों में प्रयुक्त होकर विभिन्न रूप धारण कर लेता है। संज्ञा एवं विशेषण पदों के मामले में इसके अनके उदाहरण मिल जाते हैं-

जैसे - वह **अच्छा** लड़का है (विशेषण)

वह **अच्छा** लिखता है। (क्रिया विशेषण)

इस प्रकार लिंग और वचन हिन्दी में पद और वाक्य दोनों स्तरों पर कार्य करते हैं, जैसे :-

अच्छा कुत्ता मालिक का आज्ञाकारी होता है

अच्छे कुत्ते मालिक के आज्ञाकारी होते हैं।

अच्छी बात से मन प्रसन्न होता है।

अच्छी बातें अच्छी लगती हैं।

ऊपर के वाक्यों में कर्त्ता (संज्ञा) की विशेषण और क्रिया के साथ लिंग वचन की अन्विति है।

'पद' के अर्थ निर्धारण में भारतीय एवं अमरीकी- दो दृष्टिकोण हैं। भारतीय (संस्कृत) वैयाकरणों के अनुसार- "सुप्तिङन्ते पद" अर्थात् सुप् और तिङ् विभक्तियों (संश्लिष्ट) प्रत्ययों से युक्त प्रातिपदिक या शब्द ही पद कहलाते हैं। इस दृष्टि से "बालक" शब्द प्रातिपदिक है और 'बालकों' पद दूसरे शब्दों में 'बालक' प्रातिपदिक है और "औं' विभक्ति प्रत्यय । अमरीकी विद्वानों के अनुसार 'बालकों' के 'उच्चारण' में दो पद हैं- (१) बालक् (२) ओं। इनमें पहला मुक्त रूपिम (फ्री मार्फिम) है, तो दूसरा आबद्ध रूपिम (बाउन्ड मार्फिम) हैं। इस प्रकार प्रातिपदिक धातु, विभक्ति, उपसर्ग प्रत्यय सभी पद (रूपिम) हैं। दूसरे शब्दों में 'मूलरूपिम' और आबद्ध रूपिम के बारे में यह कहा जा सकता है कि पाणिन जिन्हें उपसर्ग तथा प्रत्यय नाम देते हैं, उन्हें अमरीकी विद्वान आबद्ध रूपिम नाम देते हैं। प्रातिपदिक तथा धातु-दोनों ही अमरीकी विद्वानों की दृष्टि में 'मूलरूपिम' है। रूपिमों के निर्धारण में अर्थ का सहारा लेना सर्वथा अपरिहार्य है।

हम सदल मिश्र ग्रंथावली एवं "प्रेम सागर" आदि कृतियों में प्रयुक्त संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, विशेषण तथा अव्यय पदों का अध्ययन करते समय उपर्युक्त दृष्टिकोण को ही अपनाने का प्रयास करेंगे।

सर्वप्रथम 'संज्ञा' शब्दों पर विचार करेंगे। विचार की प्रक्रिया की एक प्रमुख विशेषता यह होगी कि सिद्धान्त स्तर पर कारक के भेद केवल तीन ही माने जाएंगे। कारक के भेदों की विविधता के संबंध में हम "कारक" के प्रसंग में विचार करेंगे, लेकिन यहाँ संज्ञा शब्दों का अध्ययन ऋजु, तिर्यक एवं संबोधन के अन्तर्गत किया जाएगा।

-संज्ञा-

संज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं, जिसमें प्रकृत किंवा कल्पित सृष्टि की किसी वस्तु का नाम सूचित हो, जैसे- आकाश, गंगा, आदि । (हि॰व्या॰का॰प्र॰गु॰पृ॰ ४५)

व्यंजनांत संज्ञा शब्द :- सदल मिश्र ग्रन्थावली में प्रयुक्त अकारान्त संज्ञा शब्दों का अध्ययन करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना है कि वास्तव में उनके युग में ये अकारान्त शब्द न रहकर व्यंजनांत बन चुके थे।

व्यंजनांत पुलिंग संज्ञा शब्द :- व्यंजनांत संज्ञा शब्दों के दो वर्ग हैं-

(क) जिनका रूप परिवर्तन केवल तिर्यक् बहुवचन में होता है। इसके अन्तर्गत समस्त व्यंजनांत प्राणिवाचक संज्ञाएं तथा स्थूल अप्राणिवाचक संज्ञाएँ आ जाती हैं- जैसे फूल्, हाथ्, कान्, जंगल्, राक्षस् ,आदि

स॰ ग्रं॰	"फूल"	(पृ॰ १५)	पुलिंगव्यंजनांत		
	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	फूल्	फूल्	फूल्	०	०
तिर्यक्	,,	,,	फूलन्ह	०	न्ह
		द्वारपाल् (पृ॰ १४)			
ऋजु	द्वारपाल्	द्वारपाल्	द्वारपाल	०	०
तिर्यक्	द्वारपाल्	द्वारपाल्	द्वारपालों	०	ओ
		हाथ् (पृ॰ २३)			
ऋजु	हाथ्	हाथ्	हाथ	०	०
तिर्यक्	हाथ्	हाथ्	हाथन	०	अन
		कान (पृ॰ २३)			
ऋजु	कान्	कान्	कान्	०	०
तिर्यक्	,,	,,	कानन	०	अन
		वानर (पृ॰ १५५).			
ऋजु	वानर्	वानर्	वानर्	०	०
तिर्यक्	वानर्	वानर्	वानर (सब)	०	०सब
		ग्वाल् (प्रेम सागर)			
ऋजु	ग्वाल्	ग्वाल्	ग्वाल्	०	०
तिर्यक्	,,	,,	ग्वालों	०	ओं
			ग्वालन	०	अन

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि व्यंजनांत पुल्लिंग संज्ञा शब्दों के बहुवचन तिर्यक्रूप

में जिन आबद्ध रूपिमों का प्रयोग हुआ है, वे "ओं, अन, एवं अन्ह" हैं। इनके उदाहरण के लिए पूंलन्ह, हाथन, कानन, बन्देनवारों, राक्षसों कड़ाहों आदि शब्द उद्धृत किये जा सकते हैं। 'अन' एवं 'अन्ह' आबद्ध रूपिमों का प्रयोग कथावाचक शैली की अपनी विशेषता है। प्रेम सागर में भी इनमें "ओं एवं अन" आबद्ध रूपिमों के प्रयोग पर्याप्त रूप से मिलते हैं। कहीं तिर्यक् वहुवचन में भी ऋजु रूप का प्रयोग हुआ है। जैसे रिसिया के दोनों हाथ से (पृ॰ ८७)

जहाँ तक व्यंजनांत उन पुलिंग शब्दों का संबंध है, जिनका रूप परिवर्तन बिलकुल नहीं होता, इनके अन्तर्गत वे संज्ञाएँ आती हैं जो भाववाचक होती हैं तथा उनके विषय में वचन भाव गौण होते हैं-

	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	प्रणाम्	प्रणाम	प्रणाम	०	०
तिर्यक	,,	,,	,,	०	०

हिन्दी में पुलिंग हो या स्त्री लिंग व्यंजनांत संज्ञाओं की संख्या सर्वाधिक है। इनमें भी प्राणिवाचक की अपेक्षा अप्राणिवाचक संज्ञाएँ अधिक है। वस्तुत: इनमें से अधिकांश शब्द अकारांत है, जो हिन्दी के अत्यन्त अकार को लुप्त करके बोलने की प्रवृत्ति के कारण व्यंजनांत हो गये हैं। अत: अकारांत संज्ञाओं का स्त्रीलिंग और पुलिंग दोनों में ही सर्वथा अभाव है

जिस प्रकार ऊपर व्यंजनांत पुलिंग संज्ञाओं के ऋजु एवं तिर्यक् रूपों का अध्ययन किया गया, व्यंजनांत स्त्रीलिंग संज्ञाओं के रूप परिवर्तन पर भी उनकी अन्त्य ध्वनि के आधार पर ही विचार किया जा रहा है :-

व्यंजनांत स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द

स॰मि॰ग्रं॰		बात (पृ॰ ५०)			
	प्रातिपदिक (मूल रुपिम)	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	बात्	बात् (पृ॰ ३४)	बातें	०	ए
तिर्यक	,,	,,	बातों (पृ॰ १४)	०	ओं
		आंष (पृ॰ ८३)			
ऋजु	आंष्	आंष्	आंष	०	ए
तिर्यक	,,	,,	आंषों	०	ओं
			आंषन (पृ॰ ५४)	०	अन
	प्रेम सागर-	बात (पृ॰ २३)			
ऋजु	बात्	बात्	बातें	०	एं
तिर्यक	,,	,,	बातों	०	ओं

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि व्यंजनांत स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों के प्रातिपदिक के "आवद्ध रूपिम" ऋजु- एकवचन में 'एं' तथा तिर्यक् बहुवचन में 'ओं' हो जाते हैं। यह भी स्पष्ट है कि आबद्ध रूपिम (तिर्यक् बहुवचन) में 'अन' का भी प्रयोग 'आंषन' में मिलता है। इसी प्रकार स०मि०ग्रं० में "चोंचन से (पृ० १०१)" 'चोचों से' (पृ० २०) आदि शब्द मिलते हैं। व्यंजनांत स्त्रीलिंग के 'जड़' (पृ० ६४) 'छाँह'(६४) एवं चालू (पृ० १०५) आदि भावचाचक शब्द भी ऋजु एक वचन में प्रयुक्त मिलते हैं।

प्रेम सागर में स्थिति कुछ भिन्न है । वहाँ तिर्यक् बहुवचन में व्यंजनांत स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों को आबद्ध रूपिम प्रायः 'ओं' ही मिलता है।

आकारांत संज्ञा शब्द

अकारांत शब्दों के मूल रूपिमों एवं आबद्ध रूपिमों की समस्या के संबंध में उनके प्रातिपदिक के रूप में 'आ' स्वर को हटाकर शब्द को व्यंजनांत मान लिया जा सकता है। जैसे-

लड़का	लड़क्	आ
लड़के	लड़क्	ए
लड़कों	लड़क्	ओं

इस प्रकार ऐसे आकारांत संज्ञा शब्दों के दो वर्ग हो सकते हैं-

(क) वे, जिनके ऋजु बहुवचन एवं तिर्यक् एकवचन में 'आ' का 'ए' हो जाता है जैसे- ताला, लड़का

(ख) वे जिनके ऋजु बहुवचन और तिर्यक् एक वचन में अन्त्य 'आ' अपरिवर्तित रहता है, तथा तिर्यक बहुवचन में अन्त्य 'आ' के बाद 'ओ' जुड़ता है। जैसे राजा, चन्द्रमा, आदि ।

इन दोनों ही वर्गों के आकारान्त पुलिंग संज्ञा शब्दों के प्रयोग के संबंध में सदल मिश्र के समय में लेखकों की प्रवृत्ति के अध्ययन के लिए हम निम्नलिखित उदाहरणों पर विचार करेंगे :-

सदल मिश्र ग्रंथावली-

(क) 'लड़का'

	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	लड़क्	लड़का	लड़के (पृ० ९३)	आ	ए
तिर्यक्	"	लड़के	लड़कों समेत	ए	आ

(ख) देवता

ऋजु	देवत्	देवता	देवता	आ	आ
तिर्यक्	"	देवता	देवतों (पृ० २४)	'	ओं
			देवताओं (८६)		ओं

			देवतान (५५)		आन
			देवतन (१)		अन

राजा आकारांत पुलिंग

ऋजु	राज्	राजा	राजा (१)	आ	आ
तिर्यक्	,,	,,	राजों (७)	आ	ओं
			राजाओं (७)		ओं

प्रेम सागर- देवता

ऋजु	देवत्	देवता	देवता	०	०
तिर्यक्	देवत्द	देवता	देवताओं	०	ओं

राजा

ऋजु	राज्	राजा	राजा	०	०
तिर्यक्	,,	,,	राजाओं	०	ओं

बाइबिल का अनुवाद

ऋजु	मूर्द्	मुर्दा	मुर्दा	अ	आ
तिर्यक्	,,	,,	मुर्दों	आ	ओं

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि स०मि०ग्रं० में व्यंजनांत संज्ञा शब्दों की तरह ही आकारांत संज्ञा के तिर्यक् बहुवचन में पर्याप्त भिन्नता रही है। यह भिन्नता 'राजा' शब्द के आबद्ध रूपिमों पर ध्यान देने से प्रकट हो जाती है। इस शब्द के तिर्यक् बहुवचन में 'आ' 'ओं' - + ओं एवं आन चा-चार आबद्ध रूपिम मिलते हैं। इसी प्रकार 'देवता' शब्द के आबद्ध रूपिमों का स्वरूप भी है, - ओं, + ओं, - आन एवं अन हैं।

सं०मि०गंग० में ओकारांत प्र० संज्ञा शब्दों के अनेक उदाहरण लडकों (१८८) फरसी समेत (पृ० १५५), जंधन (१८७) गलों, (पृ० ७) आदि रूप मिलते हैं। ऋजु बहुवचन तथा तिर्यक् एक वचन के उदाहरण स्वरूप कुत्ते (पृ० २०) कौए (पृ० २०), पंजरे (पृ० १६९) आदि शब्दों को देखा जा सकता है। जहाँ तक 'प्रेम सागर' या बाइबिल के अनुवाद में इन शब्दों के प्रयोग का प्रश्न है, ऋजु बहुवचन या तिर्यक् एक वचन रूप लगभग वही हैं, जो स०मि०ग्रं० में हैं। लेकिन तिर्यक् बहुवचन में इन शब्दों के रूप थोड़े भिन्न हैं। वहाँ ये रूप - + ओं के रूप में ही अधिक मिलते हैं। इनके विपरीत स०मि०ग्रं० में तारा, सोना, बाजा के तिर्यक् बहुवचन में तारन्ह (पृ० ७), सोनन्ह एंव बाजन (पृ० २८) रूप मिलते हैं और इस प्रकार यहाँ व्यंजनांत शब्द के 'अन्ह' आबद्ध रूपिम का प्रयोग मिलता है। बाइबिल के अनुवाद में भी ऋजु बहुवचन में देवता के प्रयोग का उदाहरण इस प्रकार है- सब **देवते** सहायता करते हैं (पृ० १६) 'देवता' शब्द का प्रयोग इस रूप में तत्कालीन हिन्दी के प्रारंभिक लेखक की स०मि०ग्रं० की रचनाओं में नहीं मिला। स०मि०ग्रं० के स्थान पर आत्मा के तिर्यक् बहुवचन 'आत्मों' रूप मिला है।

- आकारांत स्त्रीलिंग शब्द -

इन संज्ञाओं के दो वर्ग बनाए जा सकते हैं,एक माता, आत्मा, लता जैसे शब्दों का और दूसरी चिड़िया एवं खटिया जैसे शब्दों का सामान्यतः पहले वर्ग के शब्दों में प्रत्यय सीधे जोड़ते हैं जबकि दूसरे में अन्त्य 'आ' को हटाकर।

आकारांत स्त्रीलिंग की स्थिति की विशेषता यह है कि ऐसे अधिकांश शब्द भाववाचक होते हैं जैसे- आज्ञा, प्रतिज्ञा, निंदा, प्रशंसा एवं लज्जा आदि। इन शब्दों के बहुवचन रूपों का प्रयोग स०मि०ग्रं० में नहीं के बराबर मिलता है। इसके अलावा उक्त पुस्तक में मिलने वाले आकारांत स्त्रीलिंग शब्द स्त्रियों के नाम हैं जैसे- सीता, सिया, सूपनखा, तारा, सुमित्रा कौशिल्या आदि और व्यक्तिवाचक संज्ञा होने के कारण उनके बहुवचन रूप का प्रश्न ही नहीं उठता। दिशा, अफ्सरा व वैश्या आदि ही कुछ शब्द हैं, जिनकें रूप मिलते हैं । लेकिन इनके भी ऋजु बहुवचन रूप शायद ही कहीं प्राप्त हो सके और वे भी बिना किसी आबद्ध रूपिम के । वेश्या का रूप ऋजु बहुवंचन में 'वेश्यायें' न मिलकर वेश्यागण (पृ० १५) मिलता हैं ऋजृ बहुवचन में भी जहाँ कहीं जरूरत पड़ी है शब्द का प्रयोग बिना परिवर्तन के किया गया है- जैसे-दश सहस्त्र अपने जात भाई की कन्या उसकी सेवा में रखी थी। इसकी तालिका इस प्रकार है-

-दिशा-

	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	दिश्	दिशा		आ	
तिर्यक्	,,	,,	दिशाओं	०	ओं

-अप्सरा-

ऋजु	अप्सर्	अप्सरा		आ	
तिर्यक्	,,	,,	अप्सरों अप्सराओं	आ	ओं

चिड़ियां, पुलिया व खटिया आदि शब्दों के प्रयोग उपलब्ध नहीं हुए। 'प्रेमसागर' में आकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के तिर्यक् बहुवचन रूप नहीं मिलते। 'चिड़ियां' का ऋजु बहुवचनांत चिड़ियाँ (पृ० ५६) रूप मिलता हैं 'बाइबिल' के अनुवाद में प्रयुक्त शब्दों में (१८२१) 'कन्या' एवं 'पादुका' के तिर्यक् बहुवचन के लिए कन्याओं (पृ० १२०) तथा पादुकाओं (पृ० ९९) रूप मिलते हैं।

-ईकारांत पुल्लिग संज्ञा शब्द-

इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले कुछ शब्दों की तालिका इस प्रकार है-

-मुनि-

	प्रातिपदित	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	मुनि	मुनिं	मुनि	०	०

तिर्यक्	,,	,,	मुनियों	०	य्+ओं

-ऋषि-

ऋजु	ऋषि	ऋषि	ऋषि	०	०
तिर्यक्	,,	,,	ऋषिन की (१८२)	०	इन
			ऋषियों (६२)	०	य् +ओं

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि ऋजु एक वचन एवं बहुवचन के इन शब्दों के रूप स०मि०ग्रं० में नहीं बदले गये हैं, लेकिन तिर्यक् बहुवचन में आबद्ध रूपिम 'इन' एवं '-य् + ओं' दोनों मिलते हैं। ऋजु बहुवचन में मुनि या ऋषि शब्द के साथ "लोग" शब्द संयुक्त किये गये हैं जैसे- "जिसमें अनेक मुनि लोग रहते थे" (पृ० ९५ - स०मि०ग्रं०) इसी प्रकार 'सेनापति' शब्द के तिर्यक् बहुवचन में सेनापतिन (पृ० १६३) रूप मिलता हैं । इन दो रूपों के प्रयोग की सामान्य स्थिति यह है कि कर्ता के 'ने' चिन्ह के संयोग की स्थिति में "मुनियों ने" "ऋषियों ने" तथा "सेनापतियों ने" का प्रयोग किया गया है, लेकिन अन्य परसर्गों के प्रयोग में लगभग अधिकांश स्थानों में 'इन' आबद्धरूपिम युक्त रूप ही मिलते हैं। 'प्रेमसागर' में भी ईकारांत पुल्लिग शब्दों के प्रयोग की स्थिति यही है।

ईकारांत स्त्रीलिंग शब्द

इनकी स्थिति के संदर्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि इनका प्रयोग मात्र ऋजु, एकवचन में ही हुआ है। ऐसे शब्दों के अन्तर्गत मुक्ति (पृ० ६४) आवभगति (१७७), हानि (५८०), स्तुति (११) कीर्ति (पृ० ८) एवं तिथि (पृ० १४) आते हैं। प्रेमसागर में भी इन शब्दों की स्थिति यही है।

ईकारांत पुल्लिंग शब्द

इस कोटि के अन्तर्गत जो शब्द आते हैं, उनके रूप ऋजु एकवचन एवं बहुवचन में व्यंजनांत शब्दों की तरह ही मिलते हैं, लेकिन तिर्यक् बहुवचन में आबद्धरूपिम ई की जगह "हा+यों" युक्त या 'इन' एवं 'ईन' युक्त होता है। स०मि०ग्रं० में ऋजु बहुवचन में ऐसे शब्दों के साथ 'लोग का प्रयोग किया गया है।

मंत्री

	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	मंत्री	मंत्री	मंत्री (लोग)	०	०
तिर्यक्	,,	,,	मंत्रियों (११५)	०	य+ओं
			मंत्रीन	०	इन

भाई

	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	भाई	भाई	भाई	०	०

तिर्यक्	,,	,,	भाइन (पृ॰ १९०)	०	इन
			भाइयों (१५)		य् +ओं

इसी प्रकार बंदी के तिर्यक् बहुवचन में बंदियों, अपराधी के तिर्यक बहुवचन में 'अपराधिन' शब्द मिलते हैं। 'हाथी' शब्द का प्रयोग तिर्यक् बहुवचन में 'हाथियों' समेत' तो मिलता है लेकिन ऋजृ बहुवचन में एक स्थान पर 'हाथीयाँ' शब्द भी मिलता है। 'प्रेमसागर' में इन शब्दों के साथ 'इन' आबद्धरूपिम का प्रभाव प्रतीत होता है। वहाँ यदुवंशियों, ज्योतिषियों आदि रूप ही मिलते हैं। तत्कालीन लिखित बाइबिल के अनूदित ग्रंथों में भी '-य् + ओं' आबद्धरूपिम ही मिलते हैं - जैसे "मलकियों" सामरियों, एवं कोढियों आदि (पृ॰ ९८ न्यू टेस्टामेंट से -डी॰एच॰पी॰एल॰)

-ईकारांत स्त्रीलिंग शब्द-

इन शब्दों की संख्या बहुत है। इनमें से कुछ शब्द नी, आनी और इनी प्रत्यायांत होते है। इस वर्ग में भी उपर्युक्त 'ईकारांत' वर्ग के ही सदृश्य 'य' श्रुति का आगम होता है।

स्त्री

	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	स्त्री	स्त्री	स्त्रियाँ (पृ॰ १४२)	०	+(य्)आँ
तिर्यक्	,,	,,	स्त्रीन (पृ॰ ३४)	०	इन

इस शब्दों के ऋजु बहुवचन में स्त्रीयाँ (पृ॰ ५५) तथा "स्त्रीजन" (पृ॰ ९) रूप भी मिलते हैं। लेकिन तिर्यक् बहुवचन में 'स्त्रियों' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इस वर्ग में "राक्सी" शब्द के समानांतर 'राक्षसीनी' शब्द का प्रयोग मिलता है।

राक्षसीनी

	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	राक्षसीनी	राक्षसीनी	राक्षसीनी (सब)	०	इनी
तिर्यक्	,,	,,	राक्षसिनीन	०	इन

रानी

	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	रानी	रानी	रानी (सब)	०	०
तिर्यक्	,,	,,	रानियों (५७)	०	य् +ओं

ऊपर दोनों शब्दों के क्रम में यह उल्लेखनीय है कि जहाँ राक्षसीनी के लिए 'राक्षसी' शब्द का प्रयोग है, वहाँ तिर्यक् बहुवचन 'राक्षसीन' मिलता है। ऋजृ बहुवचन के रूप में '-य् + ओं' आबद्ध रूपिम का संयोग भी 'रंडियां' (पृ॰ १४२) बनदेवियाँ (पृ॰ १०२), गालियाँ (पृ॰ ११०) मिलता है, लेकिन कहीं-कहीं पूर्वोक्तव्यंजनान्त संज्ञा शब्दों के रूपों की तरह ऋजु बहुवचन में 'रानी' के लिए 'रानी'

रूप ही रहने दिया गया है। जैसे- "तीनों रानियाँ गर्भ से रहीं" (पृ० ४९) जहाँ तक अप्राणिवाचक वस्तुओं के नाम संबंधी ईकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के तिर्यक् बहुवचन रूपों का प्रश्न है, ये इस प्रकार हैं-

लड़ी	-	लड़ीन (पृ० १७६)
पालकी	-	पालकीन (पृ० १७१)
लाठी	-	लाठिन (पृ० २२)
औषधी	-	औषधीन (पृ० १५)

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि इन बहुवचन रूपों में 'य् + ओं' आबद्धरूपिम का प्रयोग कम हुआ है और 'इन आबद्धरूपिम का प्रयोग का बाहुल्य है।

प्रेमसागर में प्रयुक्त 'गोपी' शब्द का रूप इस प्रकार है-

	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	गोपी	गोपी	गोपियाँ	०	य् + आँ
तिर्यक्	,,	,,	गोपियों (५८)	०	य् + ओं
			(ई-इ)		

प्रेमसागर में स०मि०ग्रं० की तरह 'राक्षसी' शब्द के लिए राक्षसीनी या राक्षसीन आदि शब्द नहीं मिलते। स्त्रीलिंग शब्द में 'भूतनी' एवं 'प्रेतनी' शब्द भी मिलते हैं ।

जहाँ तक तत्कालीन बाइबिल अनुवादों की प्रवृत्ति का प्रश्न विलियम इंटर द्वारा संशोधित एंव संपादित न्यू टेस्टामेन्ट के पृ० ३६ पर 'अशरिफी' का ऋजु बहुवचन रूप 'अंशरिफीयाँ) तथा "वीमारी" का तिर्यक् बहुवचन रूप 'बीमारियों'' मिलने से ऐसा प्रतीत होता है कि स०मि०ग्रं० के अतिरिक्त तत्कालीन अन्य लेखक ऋजु बहुवचन तथा तिर्यक् बहुवचन में इकारांत स्त्रीलिंग शब्दों के साथ प्रायः "(ई-इ) - य् + आँ" तथा "(ई-इ) - य् + ओं" आबद्धरूपिमों का ही प्रयोग करते थे।

उकारांत एवं अकारांत पुल्लिग एवं स्त्रीलिंग शब्द

तालिका- "पशु"

	प्रातिपदिक	एकवचन	बहुवचन	आबद्धरूपिम	
ऋजु	पशु	पशु	पशु	०	०
तिर्यक्	पशु	पशु	पशुन (पृ० २०)	०	न्

स०मि०ग्रं० में जब उकारांत शब्द कम मिलते हैं जैसे साधु, पशु, एवं वस्तु आदि । ऋजु बहुवचन के व्यंजनांत शब्दों की तरह ही इनके रूप भी परिर्वतन नहीं होते। लेकिन तिर्यक् बहुवचन में 'न' आबद्धरूपिम जुड़ा मिलता है। 'जंतु' शब्द को ऋजु बहुवचन में 'जंतु सब' (रहते हैं) (पृ० १६२) प्रयुक्त किया गया है। आंशु (पृ० १३४) शब्द भी ऋजु एकवचन में प्रयुक्त मिला है। भालू के लिए 'भाल' शब्द का प्रयोग किया गया है (पृ० १६२) ।

प्रेमसागर में 'गुरू' जंतु एंव धेनु, शब्द ऋजु एकवचन रूप में मिले हैं लेकिन इनके बहुवचन रूप का प्रयोग नहीं मिला।

स०मि०ग्रं० में एकारांत ओकारांत एवं औकारांत स्त्री व पु० शब्दों का प्राय: अभाव है। 'शीसी' (पृ० १३४) गो, एवं गौर आदि शब्द मिलते हैं, लेकिन इनके भी बहुवचन रूप नहीं मिलते ।

संज्ञा शब्दों के रूप में परिवर्तन की स्थिति पर ऋजु एवं तिर्यक् प्रयोगों के अतिरिक्त 'संबोधन' की दृष्टि से भी विचार करना जरूरी है। सदल मिश्र ग्रंथावली में संबोधन शब्दों के प्रयोग अधिक मिलते हैं, इसलिए मैं इस दृष्टि से भी संज्ञा शब्दों के रूप परिवर्तन पर संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक समझता हूँ । अकारांत शब्दों में "महाराज (पृ० ५), हे ऋषिवर (पृ० ६), हे भगवान (पृ० ९) हे दीन दयाल (पृ० १८) ह, हे पुत्र (पृ० १३) एंव हे त्रिलोकी नाथ (पृ० ९) आदि शब्द हैं; आकारांत शब्दों के जो बहुवचन रूप उपलब्ध हुए हैं वे हैं - हे पुत्रों, (पृ० ५०), अरे यारो (पृ० १२६), वीरो (पृ० १२९) मूर्खों (पृ० २५) है। इसी प्रकार पुल्लिग आकारांत शब्द का एकवचन रूप हे राजा (पृ० ५), एवं पुल्लिग ईकारांत शब्द का है भाई (पृ० ८) प्रयुक्त हुए हैं। आकारांत स्त्रीलिंग शब्दों का उदाहरण है- 'हे माता (पृ० ८) मिला है। ईकारांत स्त्रीलिंग शब्द के जो रूप एकवचन में मिले हैं, वे इस प्रकार हैं- हे पारवती (पृ० ३६) हे देवी (पृ० ३६), अरे दायी (पृ० ५८), रानी (पृ० ५८) हे भवानी (पृ० ४३) अरे बेटी (पृ० ८) - इसी प्रकार इकारांत पुल्लिग शब्द अधर्न्मी का बहुवचन रूप "अधर्न्मयी" (पृ० २२३) मिला है। 'प्रेमसागर' में भी शब्दों के संबोधन रूप की स्थिति लगभग यही है। उसमें प्रयुक्त कुछ शब्द नीचे उद्धृत किये जाते हैं-

महाराज (पृ० १०८), हे सुन्दरी (पृ० ११०) राजन् (पृ० १०८), हे सखी (पृ० ८७) हे भैया (पृ० ८२) गुरुदेव (पृ० ८२) प्रभु (पृ० ८०) अरे लोगों (पृ० १२)

लिंग

हिन्दी में लिंग की समस्या बहुत जटिल है। लिंग निर्णय का कार्य दो स्तर पर आता है :-

(१) शब्द स्तर पर

(२) वाक्य स्तर पर

वाक्य स्पर पर लिंग का प्रभाव पूर्ववर्ती विशेषण तथा क्रिया दोनों पर पड़ता है। हिन्दी में दो ही लिंग है-

(१) पुल्लिग (२) स्त्रीलिंग । लिंग-निर्णय का निश्चय (१) अर्थ (२) रूप एवं (३) व्यवहार के अनुसार होता है। प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के अनुसार तथा अप्राणिवचक शब्दों का लिंग रूप एवं व्यवहार के अनुसार किया जाता है।

संस्कृत में जिस प्रकार अन्त्य ध्वनि के आधार पर लिंग-निर्णय संभव है, उस प्रकार हिन्दी में नहीं। उदाहरणार्थ- यह माना जाता है कि आकारांत शब्द पुल्लिग होते हैं और ईकारांत स्त्रीलिंग । लेकिन हिन्दी में "नाला" और 'माला' दोनों शब्द आकारांत होकर भी क्रमश: पुल्लिग एवं स्त्रीलिंग हैं। इसीप्रकार ईकारांत के लिए रोटी और पानी है इनमें पहला स्त्रीलिंग है, तो दूसरा पुल्लिग । यद्यपि संज्ञा शब्दों के ऋजु एवं तिर्यक् रूपों के प्रसंग में लिंग पर भी ध्यान रखा गया है, फिर भी स०मि०ग्रं० में तथा तत्कालीन

अन्य कृतियों में उपलब्ध लिंग की स्थिति पर अलग से विचार करना जरूरी है।

पं॰ सदल मिश्र बिहार के निवासी थे और उनकी मातृभाषा भोजपुरी थी। भोजपुरी में निर्जीव पदार्थों के संबन्ध में लिंग भेद प्रायः नहीं किया जाता , क्योंकि भोजपुरी भाषा में ऐसे शब्दों के विशेषणों एवं क्रिया पदों में लिंग संबंधी परिवर्तन न्यूनतम होते हैं। प्रणियों के लिंग निर्धारण में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि जो पुरुष या नर जाति को बोध कराते हैं, पुल्लिग हैं, और जो शब्द मादा या स्त्री जाति को बोध कराते हैं, वे स्त्रीलिंग हैं। लिंग की समस्या छोटे जीवों एंव पक्षियों या अप्राणिवाचक शब्दों के संबंध में ही उत्पन्न होती हैं लिंग संबंधी कठिनाई आज भी बनी हुई है। द्विवेदी युग व्याकरणिक अन्वेषण की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण रहा है, लेकिन उस समय के साहित्य लेखक भी बहुत से शब्दों का प्रयोग अलग-अलग रूप में करते रहे ।

उदाहरणार्थ राजा लक्ष्मण सिंह "आहट" शब्द का प्रयोग पुल्लिग में करते थे, तो बाबू श्याम सुन्दर दास स्त्रीलिंग में । नागरी प्रचारिणी के हिन्दी कोश में 'झंझट' शब्द की स्त्रीलिंग बताया गया है, जबकि द्विवेदी युग में इसका प्रयोग पुल्लिग के रूप में होता रहा है। बहुत अधिक प्रयोग में आने वाले 'समय' शब्द को भारतेन्दु कालीन लेखक स्त्रीलिंग मानते थे, जो कि बाद में पुल्लिग के रूप में प्रयुक्त होने लगा।

इस प्रकार की लिंग अनियमितताएं पं॰ सदल मिश्र या लल्लू लाल की रचनाओं में भी मिलना स्वाभाविक हैं। पं॰ सदल मिश्र के समय में शायद ही कोई व्याकरण या कोश था जिसकी सहायता से वे शब्दों के लिंग के संबंध में निर्णय लेने में सक्षम होते । फिर भी इन लेखकों की अभिव्यक्ति क्षमता की इस बात के लिए प्रशंसा की जा सकती है कि उन्होंने इस संबंध में सामान्य व्यावहारिक प्रयोग का सहारा लिया । हम ऐसे शब्दों की एक सूची नीचे प्रस्तुत करते हैं, जो आज भी लिंग की दृष्टि से उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं, जिस रूप में उनका प्रयोग सदल मिश्र ग्रंथावली में मिलता है-

पुल्लिग		**स्त्रीलिंग**	
गर्म	पृ॰ १०	दया	पृ॰ १०
पेट	८	विद्या	१
नाम	१३	बात	१५
शाप	७	आज्ञा	१६
मरण	८	नाक	७,९५
बखान	८	भीतें	१६१
तट	८	आंखें	५२
क्रोध	१२	टहल	
मोह	१२	सवति	५८
बिछौना	१५	करतूत	३८
मंदिर	२३	नाव	७०
न्याय	२१	सैन	८३
पाथर	२७	रोस	९७

फूल	७०	बाट	१९,७१
घड़ा	६४	लाज	९३
बध	३७	आवभगति	८८
सिंगार	७	चाल	१०५
पथ	८	घूर	११६, ८१, ७१
लोहू	९४	खुर	९७,८
जी	१४५	चलन	१०७
पराक्रम	६३	भोरभार	८१
		देह	४०
		परात	४०
चरण	१	बूँद	७८
तिलक	५४	चुक	७४
अवसर	६४	आग	७४
जड़	६४	रनिवास	६८
कलश	१७१	छाँह	६४
संदेश	१७१	घूम	६४
समीप	१४२	रैन	६१
		बैन	५२
		बरात	५०
		भूख	४३
		पीर	५२
		जाँघ	१६२
		मृत्यु	९७

इनके बावजूद सदल मिश्र ग्रंथावली में लिंग संबंधी अंतर मिलते हैं; प्रेमसागर में ऐसे अंतर कम मिलते हैं। सदल मिश्र ग्रंथावली की लिंग संबंधी भूलों या अन्तर वाले प्रयोगों की सूची इसी प्रयोजन से नीचे प्रस्तुत है-

(१) (अच्छे अच्छे) वस्तु (पृ० २२) पुल्लिग

(२) (सुवर्ण की) बालू (पृ० २५) स्त्री
बालू (है धीयता) (पृ० २६) पुल्लिग
(का तप्त) बालुका (पृ० २७)

(३) बुढ़ापा- स्त्री (पृ० ६४)

(४) कोष (कोख) पु० (पृ० ४१)

(५) आंग (अंग) स्त्री (पृ. ८५)

(६) का शपथ पुलिंग (पृ. ९४)

(७) खोज (सीता का खोज) पुल्लिग (पृ. १०९)

(८) (कन्दरा की) द्वार स्त्री (पृ. ११०)

(९) (के) बूँदे लगे झलकने पुल्लिग (पृ. ९७)

(१०) जड़ (तुम्हारा जड़) पुल्लिग (पृ. ९६)

(११) मरण (स्त्री हैं) स्त्री (पृ. १६१)

(१२) (पोथी के) भाषा करने (पृ. ३३)

(१३) (क) पहुँच (पृ. ३८) पुल्लिग

(१४) (तुम्हारे) शरन पुल्लिग

(१५) (आपका) शपथ पुल्लिग (पृ. २०१)

(१६) पवन (लगी बहने) स्त्री (पृ. २०२)

(१७) (के) कीरण (पृ. २०२) पुल्लिग

(१८) आपका जय हो (पृ. १०२) पुल्लिग

चूँकि हिन्दी में लिंग-निर्णय में रूप एवं व्यवहारिक आधार ही प्रमुख होता है, फिर भी चेतन प्रणिवाचक संज्ञा शब्दों के लिए अर्थ का आधार भी अपना महत्व रखता है। अपवाद के लिए आज यदि 'पुल्लिंग' जैसे शब्दों पर विचार न किया जाय तो सभी चेतन प्राणिवाचक शब्दों के लिंग-निर्णय का आधार अर्थ होता है। स.मि.ग्रं. में प्राणिवाचक स्त्रीलिंग शब्दों के विभिन्न प्रत्ययों के योग के कुछ उदाहरण नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं :-

व्यंजनांत शब्द -

बहन (पृ. ९५) सवत (पृ. ३९) दुल्हिन (पृ. ५२)

आकारांत- माता (पृ. ५), कन्या (पृ. ८), अप्सरा (पृ. १५९) भार्य्या (पृ. ११०)

पतिव्रता (पृ. १९५)

ईकारांत- महारानी, राजपूत्री (पृ. ८), बेटी (पृ. ९), युवती (पृ. २५), देवी, स्त्री, पत्नी (पृ. ५१), प्यारी (पृ. ६५), राक्षसी (पृ. १३५), मकरी (पृ. १५९), हरनी (पृ. ९)

इनी- अभागिनी (पृ. ४७)

नी- जननी (पृ. १७७)

आनी- इन्द्राणी (पृ. ५५)

ईनी- राक्षसीनी (पृ. १५५)

प्रेमसागर में भी ऊपर लिखे प्रत्ययों से बने शब्द प्राय: उपलब्ध हैं ।

वचन

हिन्दी में दो ही वचन हैं- एकवचन और बहुवचन। पिछले पृष्ठों पर संज्ञा शब्दों के संबंध में विचार करते समय ऋजु एवं तिर्यक् के बहुवचन रूपों को सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। इन उदाहरणों में शब्दों के रूपों एवं अर्थ पर विशेष ध्यान दिया गया है। लेकिन अब हमें स०मि०ग्रं० में प्रयुक्त ऐसे शब्दों के संबंध में भी ध्यान देना है जो केवल एकवचन या केवल बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं। इस संबंध में ध्यान देने योग्य दूसरी बात केवल बहुवचन बनाने के उद्देश्य से प्रयुक्त होने वाले प्रत्ययों से संबंधित भी है जैसे- वृन्द, जन, गण, लोग आदि।

भाववाचक संज्ञा के अधिकांश शब्द यथा लिंग एक वचन में ही प्रयुक्त मिलते हैं-

(१) हँसी - अब ऐसी **हँसी** होगी (पृ० ८)

(२) तुम्हारा **जीवन** सफल हो जावे (पृ० ९५)

(३) **अहं भाव** उसे होता है (पृ० ११६)

(४) दुखसुख का **हर्ष विषाद** नहीं होता (पृ० १२९)

लेकिन कुछ शब्दों के प्रयोग में व्याकरण की दृष्टि से इस समय की वचन विषयक अनियमितता मिलती हैं। ऐसे शब्दों के प्रयोग में स०मि०ग्रं० में भी एक रूपता का अभाव है। इस बात के लिए हमने 'प्राण' एवं 'दर्शन' शब्दों के प्रयोग को ढूंढ़ने का प्रयास किया गया तो पाया गया कि इन दोनों ही शब्दों का प्रयोग एक वचन एवं बहुवचन दोनों ही रूपों में हुआ है। उदाहरण-

प्राण (१) मैं पिता के लिए अपना प्राण दे दूँगा (पृ० ६२) (एकवचन)

(२) जो सभ के प्राण हुए हैं (बहुवचन)

दर्शन (१) मैं तुम्हारे दर्शन को आया (पृ० १६२)

(२) संसारिकन को तुम्हारा दर्शन बहुत दुर्लभ है। (पृ० ५५)

इसी क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि अनेक शब्दों के अन्त में लोग सब एवं 'जन' का प्रयोग कर उनका बहुवचन रूप सम्पन्न किया गया है-

जैसे- (१) ऋषिलोग इच्छा वस्त्र पहरे थे (पृ० २१)

(२) सीता को देखने बानर सब आवेंगे (पृ० १५१,१२९)

(३) स्त्री जन (पृ० ९)

कारक

'कारक' शब्द 'कृ' धातु में 'एवुल' प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ है- करने वाला। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार "क्रियान्वयित्वं कारकत्वं" अर्थात् (वाक्य की) क्रिया से जिसका अन्वय (सीधा संबंध) हो वह कारक है। कारक की विभक्ति नाम पद में जुड़ने वाले प्रत्यय को कहते हैं।

"हिन्दी एंव संस्कृत की विभक्तियों में पर्याप्त अन्तर होता है। इसके कारण पर विचार करते हुए

प्रसिद्ध वैयाकरण पं॰ कामता प्रसाद गुरू ने लिखा है- "हिन्दी संज्ञाओं की एक विभक्ति कभी कभी चार-चार करकों में आती है, जैसे-

(१) मेरा हाथ दुखता है (पं॰ कामता प्रसाद गुरू - हि॰व्या॰ पृ॰ १४९)

(२) उसने मेरा हाथ पकड़ा

(३) नौकर के हाथ चिट्ठी भेजी गई।

(४) चिड़िया हाथ न आई।

इन उदाहरणों में 'हाथ' संज्ञा (संस्कृत व्याकरण के अनुसार) एक ही (प्रथमा) विभक्ति में है। लेकिन हिन्दी में अर्थ की दृष्टि से प्रत्येक उदाहरण में 'हाथ' के साथ अलग-अलग विभक्ति व्यवहृत है जो इस प्रकार स्पष्ट है :-

(१) मेरा हाथ दुखता है

(२) उसने मेरे हाथ को पकड़ा

(३) नौकर के हाथ से चिट्ठी भेजी गई।

(४) चिड़िया हाथ में न आई।

वास्तविक बात यह है कि हिन्दी में अधिकांश विभक्तियों का रूप केवल अर्थ से निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि रूपों की संख्या बहुत ही कम है। वैयाकरणों में इस बात पर भी मतभेद है कि कारक के तथाकथित चिह्नों या विभक्तियों को 'परसर्ग' विभक्ति या कारक प्रत्यय कहा जाय। इस संबंध में मैं विवाद में पड़ने से बचना चाहूँगा और 'कारक प्रत्यय' नाम को स्वीकार करते हुए स॰मि॰ग्रं॰ आदि ग्रंथों में यथा संदर्भ विचार करूँगा।

हिन्दी में कारकों की संख्या के बारे में भी पर्याप्त मतभेद है। कुछ वैयाकरण इसे संस्कृत के आधार पर आठ मानते हैं, तो कुछ छः। उनके अनुसार संबंध कारण एवं संबोधन कारक क्रिया से अन्वित न होने के कारण कारक में नहीं आते। कुछ लोग सम्प्रदान कारक को कर्मकारक में समाहित करके सिर्फ पाँच ही कारक मानते हैं।

आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा सच्चा कारकत्व कर्ता, कर्म, कारण तथा अधिकरण चार ही मानते हैं। उनके अनुसार "छः कारकों में कर्ता, कर्म, कारण तथा अधिकरण इन चारों की निष्पत्ति कृ धातु से है और स्वयं कारक भी /कृ धातु से बना है। सम्प्रदान तथा अपादान में कारकत्व अपूर्ण है।"

हम संज्ञा शब्दों का अध्ययन प्रारंभ करने के प्रारंभ से ही विभक्ति प्रत्ययों तथा कारक प्रत्ययों के अंतर को ध्यान में रखते आए हैं। इसी संदर्भ में मुक्त रूपिम एवं आबद्धरूपिम की सोदाहरण व्याख्या की जा चुकी है। शब्द के साथ जुड़ा रहने वाला यह आबद्ध रूपिम ही विभक्ति प्रत्यय है तथा कारक के साथ अलग से जुड़ने वाले चिह्न कारक प्रत्यय। जैसे- "आज्ञा सिर माथे है" में माथे का 'ए' विभक्ति प्रत्यय है, लेकिन 'आज्ञा सिर-माथे पर है' का 'पर' कारक प्रत्यय। इस प्रकार इन दोनों प्रत्ययों को और भी स्पष्ट करने के लिए हम इन्हें संश्लिष्ट (विभक्ति प्रत्यय) एवं विश्लिष्ट (कारक प्रत्यय) कह सकते हैं। हम स॰मि॰ग्रं॰ के संदर्भ में संज्ञा के विभिन्न रूपों पर विचार करते समय उनके विभक्ति प्रत्ययों पर विचार

कर चुके हैं, अतः यहाँ कारक प्रत्ययों पर विचार करना ही आवश्यक होगा।

चूँकि का, के, की , संबंध सूचक प्रत्यय होने के नाते विशेषणवत् प्रयुक्त होते हैं और संबोधन के हे, अरे आदि का भी अलग अस्तित्व है, इसलिए हिन्दी में निम्नलिखित कारक प्रत्यय ही मान्य है:- "ने, की, से, के लिए में, पर" । हम आलोच्याधीन ग्रंथों में संबंध कारक प्रत्ययों के साथ उपरोक्त छः कारक प्रत्ययों के प्रयोग पर क्रमानुसार विचार करेंगे-

ने/कर्त्ताकारक

यह कर्त्ता कारक का प्रत्यय है। इसका प्रयोग वर्तमान और भविष्यत् काल की क्रिया के कर्त्ता के साथ नहीं होता, केवल सकर्मक भूत काल के सामान्य, आसन्न, संदिग्ध एवं भेदों में होता है । 'ने' कारक प्रत्यय का प्रयोग कर्मणि एवं भावे में होता है, कर्तरि में नहीं।

कर्मणि प्रयोग- (स॰मि॰ग्रं॰)

(१) ईश्वर ने बड़ी ही दया की (पृ॰ १०)

(२) पापी ने बध किया है (पृ॰ १७)

(३) श्री राम ने बीचरण में सौ वर्ण अस्त्र छोड़े (पृ॰ १६८)

(४) विन्हने विसकी दोनों जाँघ काट डालो१६२)

(ख) भावे प्रयोग

(१) आगे की भाँति फिर वह पुरुष हो गई (पृ॰ १८८)

(२) सकर्मक क्रिया के उपरोक्त कालों में भी कर्ता के साथ 'ने' के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं-

(क) सामान्य भूत - पिता ने आज्ञा दी (पृ॰ १६)

(ख) आसन्न भूत - पापी ने बध किया है (पृ॰ २७)

(ग) संदिग्ध भूत -

(घ) मैंने तो कहा था - पूर्ण भूत (पृ॰ १३)

अपूर्णभूत - लोग पवित्र होते थे (पृ॰ ५)

तात्कालिक भूत - रानी आनंद कंद विष्णु का ध्यान कर रही थी (पृ॰ ६३)

हेतु हेतु मदभूत - नहीं तो क्योंकर महापुरुष का दर्शन होता (पृ॰ १०)

(३) कुछ क्रिया ऐसी भी हैं, जिनका प्रयोग स्वतंत्र तथा सहायक क्रियाओं के रूप में होने पर कर्ता 'ने' कारक प्रत्यय का प्रयोग नहीं हुआ है,

बोलना- (१) चन्द्रावती बोली (पृ॰ १०)

लाना- (२) तू उसको क्यों नहीं लाया (पृ॰ १३)

लगना- (३) वे आश्रम पर ले जा पालने लगे (पृ॰ १३)

पहुँचना- (४) वे मण्डप में जा पहुँचे (पृ॰ १५)

उठना- (५) ऋषि लोग शास्त्र विचार के बोल उठे (पृ॰ २१)

(४) प्रेरणार्थक क्रिया के कर्ता के साथ 'ने' का प्रयोग किया गया है -

बुन्होंने बाली को मारा कि उसके राज्य पर सुग्रीव को बिठलाया (पृ॰ १४०)

(५) कर्ता कारक को सूचित करने के लिए अन्य कारक प्रत्ययों के प्रयोग के भी उदाहरण मिले हैं - जैसे-

कर्ता के लिए कर्म प्रत्यय का प्रयोग

नाक से हमको अति सुन्दर बालक हुआ (पृ॰ ११)

को/कर्म कारक-

(१) द्विवकर्मक क्रियाओं में गौण कर्म में ही 'को' का प्रयोग किया गया, जैसे- पानी लाकर पाँव को धो दिया (पृ॰ ३३)। लेकिन कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार दोनों कर्म के साथ 'को' का प्रयोग किया गया है। जैसे- जो अपनी माता को और किसी को (दान) देता है। (पृ॰ १३)

(२) 'द्विवकर्मक क्रिया देना' के साथ गौण कर्म के साथ 'को' प्रत्यय लगा है। जैसे- पिता ने भरत को राज्य औ मुझको चौदह वर्ष का बनवास दिया (पृ॰ ६५)

(३) अप्राणिवाचक कर्म के साथ बल देने के प्रयोजन के बिना 'को' प्रत्यय का प्रयोग नहीं गया है, लेकिन प्राणिवाचक शब्दों के साथ 'को' प्रत्यय का प्रयोग प्राय: हुआ है-

प्रेमसागर की स्थिति भी इसी प्रकार है-

(१) मैंने तुम्हें सीख दी (०) दी है (पृ॰ ३८)

(२) आज इसका बल (०) देखूँगा (पृ॰ ६२)

(३) पुरीहित बुलाय (पृ॰ ५७)

को विभक्ति

(१) भूखों को भोजन करवाने (पृ॰ ३९)

(२) श्री कृष्ण ने विद्याधर को तारा (पृ॰ ५७)

(३) कंस को प्रणाम कर (पृ॰ ६३)

प्रेमसागर में आये दोहे-चौपाइयों में 'को' की जगह सौं-कौं का प्रयोग मिलता है-

सौं/कौं

(१) तिन्हें न **काहु सो** है लाज (पृ॰ ९०)

(२) उग्रसेन वसुदेव 'सो' कहि पांडु की बात। (पृ॰ ९१)

(३) हरि पद को चहों (पृ॰ १२७)

(४) देवतों को पूजते (पृ॰ २०)

(५) सुख को पाते (पृ॰ २३)

स॰मि॰ग्रं॰ में कर्म कारक में कई क्रियाओं के साथ कारक प्रत्यय व्यत्यय के भी अनेक उदाहरण मिले हैं- (कर्म की जगह कारण)- को की जगह 'से'

(१) वह मा से बोला (पृ॰ १३)

(२) जनमेजय से कहते हैं (पृ॰ १२)

(३) भरत सबसे यह वचन कहने लगे (पृ॰ ७८)

(४) राम चन्द्र सुग्रीव से पूछने लगे (पृ॰ ५७)

से - (कारण कारक)

यद्यपि 'से' करण कारक प्रत्यय है, लेकिन इसका प्रयोग अर्थभोगिमाओं को प्रकट करने के लिए व्यापक रूप में किया गया है :-

साधन (क) लोहे के समान चोंचों से गिध, कौए ऐसे लगते हैं सताने (पृ॰ २१)

(ख) इस प्रकार बहुतेरन्ह शीकरों से बाँध-बाँध दूत सब यम के निकट पहुँचाते हैं (पृ॰ २२)

कारण- (क) तब वह कोप से आकुल हो उसके निकट जा लगी कहने (पृ॰ ११)

(ख) जिसके श्रवण से रोचाँच होते हैं (पृ॰ २०)

आधार- वे एक ही चरण से खड़े रहे (पृ॰ १७)

रीति- वेद की विधि से विवाह हुआ (पृ॰ १४)

युक्तता- उपजे हुए अन्नों से भरा खेत (पृ॰ २४)

मार्ग - वे पूर्व द्वार से धर्म्मात्मा लोगों को अमरावती में पहुँचावते हैं (पृ॰ २४)

साथ- राज्य का तिलक पाकर आदर मान से किस लिए मेरे पास न आये। (पृ॰ ६५)

इस प्रकार करण-कारक के 'से' प्रत्यय का प्रयोग स॰मि॰ग्रं॰ में पर्याप्त रूप से किया गया है, लेकिन इसमें कारण कारक के 'द्वारा' प्रत्यय का प्रयोग नहीं मिलता है।

प्रेमसागर (ज्ञा॰ मं॰ प्र॰)

प्रेमसागर से भी **'से'** कारक प्रत्यय के प्रयोग के कुछ उद्धरण प्रस्तुत है-

(१) उसने आते ही सूँड़ से हरि को पकड़ खूँस खायकर ज्यों **दांतों से दबाया** त्यों प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाये दांतों के बीच में बच रहे। (पृ० ७४)

(२) बलभद् जी तो कुशल क्षेम से हैं (पृ० ८७)

लेकिन दोहों एवं चौपाइयों में 'से' के स्थान पर 'सों' का प्रयोग मिलता है-

(क) तब ग्वालन सों कहत कन्हाई (पृ० २६)

(ख) देख विंरचि चित्त सों भयों (पृ० २६)

को, के लिए सम्प्रदान (के हेतु अर्थ)

यद्यपि 'को' का प्रयोग कर्म कारक में ही होता है, लेकिन संस्कृत के 'दा' योगे चतुर्थी के सिद्धान्त के अनुसार जहाँ देने की बात हो तो वस्तु जिसे दी जाती है, वह व्यक्ति या शब्द सम्प्रदान कारक में होता है। इस अर्थ में 'की' का प्रयोग नीचे लिखे अनुसार मिलता है :-

विप्रों को हाथी, घोड़े गौदान देते हैं (पृ० २७)

कुलीन वर को जो कन्या देते हैं, (पृ० २४)

सेवकों को देने लगी (पृ० १५)

राम को राज्य देने की चर्चा करने लगे (पृ० ५७)

लेकिन 'के लिए' प्रत्यय का प्रयोग किसी उद्देश्य से कार्य करने में तथा कालावधि सूचना में भी पाया गया है :-

(क) ऐसा विचार पुत्र के लिए आकुल हो (पृ० १२)

(ख) राजा की श्रद्धा पुरावने के लिए देह धरे हैं (पृ० ६७)

(ग) मुक्ति देने के हेतु (पृ० ६७)

(घ) चौदह वर्ष बसने के लिए (पृ० १००)

(ङ) पराक्रम देखाने के लिए (पृ० १६८)

यह उल्लेखनीय है कि इन स्थानों में क्रिया का प्रयोग संज्ञा के रूप में हुआ है।

प्रेमसागर-

(१) विप्र को बहुत कुछ दे विदा किया (पृ० १४०)

(२) कन्या के अपने पुत्र के लिए लीजैं (पृ० १३९)

से (अपादान कारक)

हिन्दी में करण तथा अपादान दोनों ही कारकों के प्रत्यय के रूप में 'से' का प्रयोग मिलता है और यही कारण है कि इन दोनों में भेद करना बिना प्रसंग के असंभव हो जाता है।

अपादान 'से' का प्रयोग निम्नलिखित रूपों में मिलता है-

अलगाव (१) इतने में गर्भ नाभी से हृदय में आया (पृ० ११)

वियोग (२) तब से सीता से विदा होने को गये (पृ० ६५)

काल-सूचन (३) सूरज के उदय अस्त सें दिन-दिन आयुब छिजता है (पृ० ६४)

तुलना (४) सब एक से एक थूर हैं (पृ० १५२)

उत्पत्ति (५) इन्हीं दोनों से स्थावर संगम संसार उत्पन्न हुआ। (पृ० १५२)

मुक्ति (६) वह ब्रम्हादिक पाप से मुक्त होवेगा (पृ० १५१)

प्रेमसागर-

अलगाव (१) गोपी गोप गोवरधन से चले (पृ० ४३)

(२) श्री कृष्ण धेनु चराय बन से न आय लेकिन ''प्रेम सागर'' में दोहों एवं चौपाइयों में 'से' की जगह 'ने' का प्रयोग मिलता है-

(१) परहि नैन ते आँसू टूट (पृ० ६६)

संबंध कारक, का, के ,को -

वाक्य के किसी एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ संबंध घोषित करने के लिए इस प्रत्यय का प्रयोग होता है।

'क' 'का' प्रयोग पुल्लिग शब्दों के पहले तथा 'को' का प्रयोग स्त्रीलिंग शब्दों के पहले होता है। 'के' प्रत्यय 'का' का तिर्यक् रूप है, जिसके प्रयोग के संबंध में कुछ विशेष नियम हैं-

(१) 'क' के शब्द जब कोई संबंध सूचक आता है तो उसका रूप तिर्यक् ही जाता है

(२) इसी प्रकार 'का' के बाद आने वाले पुल्लिग शब्द के बाद किसी कारक प्रत्यय या परसर्ग के आने पर भी इसका रूप तिर्यक् हो जाता है।

(३) जब 'का' विभक्ति के बाद कोई पुल्लिग शब्द बहुवचन में प्रयुक्त होता है तो ऐसी स्थिति में भी तिर्यक् रूप का प्रयोग होता है।

सम्बन्ध प्रत्यय के संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि इससे अनेक प्रकार के अर्थ व्यंजित होते हैं जैसे- स्वामिभाव, सेव्य सेवक-भाव, आधार आधेय भाव- आदि

सदल मिश्र ग्रंथावली में इसके उदाहरण इस प्रकार मिलते है :-

''का''

ब्रह्मणों का भक्त	पृ० ७	(आधार, आधेय भाव)
छोटों का मरण	७	(घटना तथा आधार)
बंश का बखान	८	(गुण गुणी भाव)
पुत्र का मोह	१२	(कार्य कारण भाव)
सारे पृथ्वी का पति	१३	(स्वामि भाव)

चार सौ योजन का चौरा सागर	३१	(परिणाम)

''की''

ऋषियों की सेवा	पृ० ११	सेव्य सेवा भाव
रघु की पुत्री	१२	सबंध-संबंधी भाव
बड़े कुल की कन्या	१४	जन्य जनक भाव
हीरो की माला	१५	अभेद
मोतिन की माला	२३	अभेद

''के''

बाप के घर में	७	स्वामिभाव
किसी के शाप से	७	कार्य-कारण भाव
बड़ों के आगे	७	परसर्ग युक्त
गंगा के तट पर	८	प्रयोज्य प्रयोजन
सहेलियों के साथ	१३	परसर्गयुक्त
स्यारों के शब्द	१५	कार्य-कारण
केले के छिलके का लगोट	१७	वाङ्य-वाहक
गाद्दों के पत्ते	२०	,,
सोनन्ह के मंदिर	२३	,,

में/पर, अधिकरण

(ख) अधिकरण कारक में आधार का भाव प्रमुख होता है। संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार आधेय-आधार भाव के तीन रूप होते हैं :-

१- अधिव्यापक आधार

२- औपश्लेषिक आधार

३- वैषयिक आधार

पहले रूप में आधेय आधार के सभी अंशों में व्याप्त होता हैं, दूसरे में आधार का कुछ अंश ही घिर पाता है, सम्पूर्ण नहीं और तीसरे में विषय में रूचि मात्र होती है। इनके उदाहरण क्रमशः इस प्रकार हैं :- तिल में तेल, चटाई पर बैठना तथा गणित में रूचि ।

स०मि०ग्रं० में 'में' और 'पर' के प्रयोग की कुछ स्थितियाँ इस प्रकार हैं :-

काल- (१) पहले मास में उस कन्या को कुछ अधिक सा देह में रूप उपजा। (पृ० ८)

निर्धारण- (२) त्रिभुवन में जो ढूढ़ो, तो न कोई देवतों की कन्या ..... होगी। (पृ॰ ८)

निश्चित स्थान (३) भाल में मुक्ता, खचित पीपल का पत्ता सा सुवर्ण का आभरण । (पृ॰ ४२)

तुलना (४) तेज में अग्नि समान। (पृ॰ ४३)

गति (५) तुम से महानुभाव जिस घर में पग देते हैं । (पृ॰ ४३)

निश्चित स्थान (६) नाना आयुध लगे राम पर चलावने । (पृ॰ ९४)

इस कारक के प्रत्यय के रूप में 'मह' प्रत्यय का भी प्रयोग मिलता है।

(१) तिस मह एक में लछुमण जी जा उतरे जो दूसरे मह जानकी साथ वस करके हर्षित हुए। (पृ॰ ७३)

'प्रेम सागर' में भी 'में' एवं "पर" कारक प्रत्ययों के प्रयोग के उदाहरण मिलते हैं :-

(१) इसने अपने जी में जाना। (पृ॰ ९५)

(२) श्री कृष्णचन्द्र ने उग्रसेन को अपना भक्त जान ऐसे समझाय सिंहासन पर बैठाय राजतिलक किया (पृ॰ ७८)

संबोधन कारक-

संबोधन का तात्पर्य होता है, पुकारना या चेतना जैसे लड़के। जरा इधर आ। भाइयों! जागो। इसके लिए 'हे, अरे, भिक्तियों का प्रयोग आलोच्य ग्रंथ में मिलता है, जो नीचे लिखे अनुसार है । बहुवचन रूप की विशेषता यह है कि इसमें अंतिम अनुनासिक का लोप हो जाता है।

'हे' (स॰मि॰ग्रं॰)

(१) हे महाराज (पृ॰ १२)

(२) हे राजा (पृ॰ १६)

(३) धन्य हो, महाराज (पृ॰ १२)

(४) अरे लोगों (पृ॰ १२)

(५) हे कमलनयन, कृपा निधान (पृ॰ ८७)

(६) हे त्रिलोकी नाथ (पृ॰ १९१)

(७) देवनहु के देव (पृ॰ १९१)

इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं दे, अरे के बिना भी संबोधन का प्रयोग किया गया है।

(१) सुनी पूत। (पृ॰ ११)

(२) माता। (पृ॰ १२)

कहीं-कहीं 'ऐ' का प्रयोग भी मिलता है।

(१) ऐ बन्दर (पृ॰ १४०)

(२)'ए' योगी (पृ॰ ३३)

चूंकि "प्रेम सागर" एवं "सदल मिश्र ग्रंथावली" दोनों ही धार्मिक ग्रंथ हैं, इसलिए इनमें भक्त एवं भगवान के बीच जहाँ भी वार्तालाप का प्रसंग है, संबोधन कारक का प्रयोग मिलता है।

प्रेम सागर में 'अहो' संबोधन भी मिलता है।

हे प्राण नाथ, महाराज,

(१) अहो कृष्ण (पृ. ५०)

लेकिन सदल मिश्र ग्रंथावली में संबोधन 'अहो' का प्रयोग शायद ही हुआ है।

पद्य में भी :- अहो भ्रमर तुम विलग रहो। (पृ. ८६

***

सर्वनाम

(अध्याय - आठ)

सर्वनाम की परिभाषा के संबंध में अनेक उक्तियां मिलती हैं । यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत के अनेक वैयाकरणों ने सर्वनाम को संज्ञा का ही एक भेद माना है। उनके अनुसार सर्व (प्रतिपदिक) के समान जिन नामों (संज्ञाओं) का रूपान्तर होता है उनका एक अलग वर्ग मानकर उसका एक नाम सर्वनाम रखा गया है। इसीलिए इसका यह भी अर्थ लिया जाता है कि (सब) नामों (संज्ञाओं) के बदले में जो शब्द आता हैं उसे सर्वनाम कहते हैं।

हिन्दी के प्रसिद्ध वैयाकरण पं॰ कामता प्रसाद गुरू के अनुसार "सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते हैं, जो पूर्वापर संबंध से किसी भी संज्ञा के बदले में आता है, जैसे-- मैं (बोलने वाला), तू (सुनने वाला), यह (निकटवर्ती वस्तु), वह (दूरवर्ती वस्तु) आदि"①

डॉ॰ हरदेव बाहरी के अनुसार इसे ही यों कहा गया है-- सब (सर्व) सर्वनामों के स्थान पर जिन शब्दों का प्रयोग हो सके, उन्हें सर्वनाम कहते हैं। ②

संज्ञा के समान सर्वनाम में वचन और कारक रूपों में भिन्नता होती है, परन्तु लिंग के कारण इसका रूप नहीं बदलता । मुख्य रूप से सर्वनामों की संख्या ग्यारह है :-

मैं, तू, आप, यह, वह, सो, कोई, कुछ, कौन, और क्या।

इन्हें छः भागों में इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है :-

१- पुरूष वचक - मैं, तू, आप (आदर सूचक)
२- निश्चय वाचक - यह, वह, सो
३- निज वाचक - आप
४- संबंध वाचक - जो
५- प्रश्न वाचक - कौन, क्या
६- अनिश्चय वाचक - कोई, कुछ

कुछ लोग इन्हें (१) प्रधान पुरूष वाचक सर्वनाम तथा (२) अप्रधान पुरूष वाचक सर्वनाम- दो

---

① हिन्दी व्याकरण - पं॰ कामता प्रसाद गुरु, पृष्ठ ५१

② व्यवहारिक हिन्दी व्याकरण-- डॉ॰ हरदेव बाहरी, पृष्ठ. ५५

ही भेदों में वर्गीकृत करते हैं। इस वर्गीकरण के अनुसार प्रधान पुरूष वाचक सर्वनाम के अन्तर्गत "मैं, तुम एवं आप" को रखा जाता है और बाकी सभी सर्वनामों को अप्रधान पुरूष वाचक सर्वनाम के अन्तर्गत।

हम ऊपर इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि वचन एवं कारक के कारण सर्वनाम के रूपों में परिवर्तन होता है। यहाँ हम सदल मिश्र ग्रंथावली एवं अन्य समकालीन कृतियों में उन्हीं परिवर्तित रूपों के प्रयोग की स्थिति का अध्ययन करेंगे--

उपर्युक्त ग्रंथों में प्रयुक्त सर्वनामों का क्रमानुसार अध्ययन उनके प्रयोगों के आधार पर ही किया जा रहा है, जो इस प्रकार है :-

उत्तम पुरूष सर्वनाम

तालिका

	एक वचन	बहुवचन
ऋजु (मूल रूप)	मैं, हम	हम सब, हम लोग
तिर्यक् विकारी रूप	मैंने, मुझें, मुझको, मुझसे, मुझ मुजको, मुजसे, मुजे, हमको हमसे, हमें	हमको, हम लोगन को, हमें; हम सब को,
संबंध वाचक	मेरा, मेरी, मेरे; हमारा हमारी, हमारे	हम लोगन के

प्रत्येक उदाहरण इस प्रकार हैं :-

'मैं' इस सर्वनाम का प्रयोग अपने संबंध में कहने के लिए किया जाता है। आलोच्य ग्रंथ में भी इसका प्रयोग इसी रूप में मिलता है①

"मैं" मैं तुम्हारी माता हूँ (पृ० १२) चन्द्रावती का कथन -
मैं एक दूसरे स्थान में जाया चाहती हूँ (पृ० १०)
मैं भी एकें तो स्त्री दूसरे अपढ़ तुम्हारा भेद क्यं पा सकूं (पृ० ४८) (अहल्या)
मैं दूसरे को न भजूंगी (पृ० ४८) (अहल्या)
अपने संबंध में कहने के लिए भी इसका प्रयोग किया गया है :-

सीता को अब मैं रघुनाथ से व्याहूँ	पृ० ५१	(जनक)
महाराज मैं ताकता हूँ	५२	(दशरथ)
मैं तेरा सिर भुट्टा-सा उड़ा दूंगा	५३	(परशुराम)

①पं० कामता प्रसाद गुरु - हिन्दी व्याकरण (पृष्ठ ५३)

इस हेतु तुरंत मैं जाऊंगा	६५	(राम)
मैं तुम्हें क्यूं चन में ले चलूं	६५	(राम)
न मैं किसी के गाँव घर में जाऊँगा	६९	(राम)
कमल नयन कृपा निधान! मैं विद्याधर हूँ	८७	
मैं तुम्हें एक क्षण में राम पास पहुँचा दूंगा	१४२	
मैं तुम्हारे लिए कहता हूँ	(विभीषण पृ० १४८) (हनुमान)	

"हम" यद्यपि एक वचन उत्तम पुरूष में प्राय: "में" का ही प्रयोग हुआ है, तथापि हम का प्रयोग भी मिलता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, "हम" का प्रयोग "में" के स्थान पर पर एक वचन में भी होता है, लेकिन "हम' का प्रयोग बहुवचन में सामान्यत: लोग "के साथ" अर्थात् "हम लोग" के रूप में ही होता है। पिछले उदाहरणों में "हम" का प्रयोग यद्यपि एक वचन में "हनुमान" के लिए ही है, फिर भी इसमें यह ध्यान देने की बात है कि हनुमान पूरी वानर-सेना का प्रतिनिधित्व करते हुए बोलते हैं। यों हुनमान जहाँ सिर्फ अपनी शक्ति के बारे में बोलते हैं वहाँ वे "में" का ही प्रयोग कहते हैं--

मैं मेरे कांधों पर चढ़ो मैं तुम्हें एक क्षण में राम पास पहुंचा दूंगा (पृ० १४१ हनुमान सीता से)

मैं भाइयों, मैं सीता को देख सारी लंका जला रावण से बातचीत कर चला आता हूँ (पृ० १४ हनुमान वानरों से)

हम, हम सब, हम लोग (बहुवचन)

बहु वचन में इन दोनों सर्वनामों का प्रयोग ही मिलता है।

हम सब	हम सब भूखे हैं	(पृ० १४३ वानरगण अंगद से)
हम लोग	देषों, हम लोग चिरजीवी हैं	(पृ० १९४ मुनि लोगों का कथन)
हम	अभी जा हम रावण को मारते हैं	(वानर सब पृ० १४६)
हम सब	सागर तीर तो हम सब आन पहुँचे	(रामचन्द्र पृ० १४६)
हम लोग	इस समुद्र को किस प्रकार से हम लोग पार होंगे (वही)	
हम सब	जब तक हम सब फिर आवें तब तक तुम इसी का जाप किया कर (पृ० ७३ राम)	

"प्रेमसागर" की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। वहाँ ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार गद्य में "में" एवं "हम" के साथ-साथ पद्य रूपों में "हों" का प्रयोग ज्यादा मिलता है। "हों" की उत्पत्ति डा० उदय नारायण तिवारी के मतानुसार "अहम्" से हुई है।①

१- उसी के भय से मैं यहाँ भाग आया हूँ (पृ० ३१ काली नाग)

२- अब हम परचौ लियो तिहारौ (पृ० ५५ श्रीकृष्ण)

---

①हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास (पृष्ठ ४५) - डा० उदय नरायण तिवारी

"हम" बहुवचन प्रयोग --

३- हम नीके नहीं देखे हरि (पृ० ७२ गोपियां)

विकारी रूप प्रत्ययों (विभक्तियों) के साथ प्रयोग किए जाने पर सर्वनाम के रूप में विकार (परिवर्तन) आ जाता है- जैसे, मैंने, मुझे, हमें आदि--

"मैं ने" सदल मिश्र ग्रंथावली में "ने" का प्रयोग सर्वनाम के साथ ही मिलता है। संज्ञा शब्दों के साथ "ने" या "को" आदि चिह्न अलग से प्रयुक्त होते हैं। आलोच्य ग्रंथ में "मैंने" का प्रयोग नियमानुसार भूतकाल में ही किया गया है। उदाहरण :-

मैं ने	मैं ने देखा है	(पृ० २२ नासिकेत)
	मैं ने हीत बात कही	(पृ० १४८ विभीषण)
	अब मैं ने पहचाना	(पृ० ५३ परशुराम)

मुझे, मुझको, मुझ, मुझसे--

ऊपर के सभी विकारी रूप आलोच्य ग्रंथों में मिलते हैं, जिनके उदाहरण निम्नलिखित हैं :-

मुझे	अब मुझे रामचन्द्र की मा के पास पहुँचा दो	(पृ० ६८ दशरथ के लिए)
मुझको	जो गर्भ मुझको दिया	(पृ० १० चन्द्रावती के लिए)
मुझसी	मुझसी अभागिन कौन?	(परसर्ग सहित) (परसर्गयुक्त-चन्द्रावती)
मुझसे	ईश्वर मुझसे बहुत संतुष्ट है	(पृ० २५)
मुझे	पिता, दुःख के सागर में मुझे डाल ---- कहाँ आप सिधारे	(पृ० ७६ भरत)

इसके साथ ही, उर्दू प्रभाव के कारण बहुत स्थानों पर "झ" की जगह "ज" वर्ण का प्रयोग मिलता है, जैसे--

मुजे, मुजको, मुजसे (ये उर्दू के प्रभाव के कारण है)

मुजे	मुजे फिर देखोगे	(पृ० ५३ राम)
मुजको	क्यूँ मुजको भरमाइये है	(पृ० ५५ राम)
मुजको	पिता ने क्या कहा सो मुजको सुनाओ	(पृ० ७६ कैकेयी)
मुजसे	मुनियों ने मुजसे कहा	(पृ० ७३)

हमें हमको, हमसे

यहाँ हमें, हमको एवं हमसे के प्रयोग प्राय: एकवचन में ही मिलते हैं, उदाहरणार्थ :--

हमें = **सीता को ढूंढने के लिए हमें भेजा (पृ० १२७- हनुमान)**

हमको = **हमको तप करते छियालीस सहस्त्र वर्ष बीते (पृ० ६ उद्दालक)**

हमसे = **हमसे कुछ हो सका नहीं (पृ० १६ चन्द्रावती- एकवचन)**

इन शब्दों का प्रयोग बहुवचन में भी मिलता है :-

हमें = महाराज, हमें भी साथ लिए चलो (पृ० ६८)

हम लोगन को, हम सबको

हम लोगन को = १.फिरते-फिरते हम लोगन को यह मास यों ही बीत गया

(पृष्ठ १२६ बानरों के लिए)

२- वानर सब कहने लगे कि हाय यह निश्चय ही हम लोगन को खाएगा (पृ० १२६ वानर समुदाय)

यह द्रष्टव्य है कि "को" विभक्ति का प्रयोग हम लोगन के साथ "हमको" की तरह आबद्धरूप में नहीं है।

"प्रेमसागर" (श्री लल्लू लाल कृत) में भी ये सभी शब्द प्राय: इसी रूप में प्रयुक्त मिलते हैं। "हम लोगन" शब्द का प्रयोग वहाँ शायद ही हुआ हो।

संबंध वाचक विकारी रूप

मेरा, मेरी, मेरे, हमारा, हमारी, हमारे

इनका प्रयोग प्राय: एकवचन में ही मिलता है, उदाहरण :-

मेरा	मेरा नाम है	(पृ० १० चन्द्रावती)
मेरी	मेरी देह से वाण को निकाल ले	(पृ० ७५ श्रवणकुमार)
मेरे	मेरे माता-पिता भूख-प्यास से मरते होंगे	(पृ० ७५ श्रवणकुमार)
हमारा	हमारा पुत्र पड़ा है, वहां हमें ले चलो	(पृ० ७५ श्रवणकुकार)
हमारी	तपस्या में क्या विघ्न आ पड़ा	(नासिकेतोपाख्यान)
हमारे	माता-पिता हमारे शोक से कलपते होंगे	(पृ० १९ नासिकेतापाख्यान)

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मेरा-हमारा, मेरे-हमारे, हमारी-मेरी के प्रयोग में कोई अन्तर नहीं रखा गया है और इनका प्रयोग यथेच्छया किया गया है।

इसी प्रकार बहुवचन में हम लोगों से, हम लोगों का, हम लोगों पर आदि प्रयोग मिलते हैं--

हम लोगों पर आप हम लोगों पर दया करते हो (पृ० ८०)

मध्यम पुरूष तालिका

ऋजु (मूल रूप)	एकवचन तू, तुम आप	बहुवचन
तिर्यक् (विकारी रूप)	तुमने, तूने, तैने, तुमको, तुम्हें, तुमसे, तुझे, आपने, आपको, आपसे	तुम लोगन से
संबंध वाचक	तेरी, तेरी, तुम्हारे, तुम्हारे	

यद्यपि पं० सदल मिश्र के समय में पद्य में मध्यम पुरूष सर्वनाम के अनेक रूप चल रहे थे, लेकिन उन्होंने खड़ी बोली में अपने ग्रंथ की रचना की सार्थकता को ध्यान में रखकर सिर्फ तू, तुम एवं आप (मूल) मध्यम पुरूष सर्वनामों का ही प्रयोग किया। इनके उदाहरण नीचे लिखे अनुसार हैं :-

तू ऐ योगी, तू क्या पूछा चाहता है (पृ. ३३ ब्रह्मा-नारद से)

तुम १- सीता तुम मेरे बिन राक्षस के घर में रहकर क्यूँकर जीती रहोगी
(पृ. ११९-राम-सीता से)

२- भाई कुम्भकरण, तुम जाओ, तुम उनका संहार करों (पृ. १६०-रावण)

३- मित्र तुम किसी बात का सन्देह मत करो (पृ. ११०-राम)

आप जो सीता का आप जानते हो, तो कृपा कर हमें बता दीजै (पृ. १२७-अंगद-संपत्ति से)

आप आप वेद पुराण सब शास्त्रन के जाननिहार हैं (पृ. ५) (राजा- वैशम्पायन ऋषिसे)

ऊपर के तीनों शब्दों में "तू" शब्द से निरादर या हलकापन प्रकट होता है, इसलिए हिन्दी में बहुधा एक व्यक्ति के लिए भी "तुम" का प्रयोग होता है। "तू" का प्रयोग ही इस ग्रंथ में प्राय: आया है।

आप का प्रयोग (अ) अपने से बड़े दरजे वाले मनुष्य के लिए (आ) बराबर वाले और अपने से कुछ छोटे दरजे के लिए होता है। सदल मिश्र ग्रंथावली में भी "आप" का प्रयोग ऊपर के उदाहरण के अनुसार इसी रूप में पाया जाता है। "प्रेमसागर" की भी स्थिति यही है।

तुम तुम चित दे सुनो (पृ. ६२ - प्रेमसागर - शुकदेव जी कहते हैं)

आप हे कृपानाथ! तुम्हारी लीला अपरम्पार है, आप भक्तों को सुख देने के अर्थ .....
(प्रेमसागर पृ. ६३ - नारद - श्रीकृष्ण से)

दृष्टव्य है कि एक ही वाक्य में "तुम्हारी' और आप दोनों प्रयुक्त हुए हैं।

तू अरे! तू कंस का भेजा हुआ है और घोड़ा बन आया है-
(पृ. ६२ - ग्वाल-बाल-कैशी राक्षस से)

तुम सुनों वीरों, तुम अत्यन्त वीर हो- (पृ. १२९ - अंगद वारनों से)

बहुवचन

यहाँ "तुम लोग" के स्थान पर तुम से ही काम लिया गया है, जैसे मध्यम पुरूष बहुवचन में बहुल के लिए बहुधा "तुम" के साथ "लोग" शब्द लगा देते हैं :-

लेकिन इस शब्द का प्रयोग सदल मिश्र ग्रंथावली में लगभग नहीं के बराबर हुआ है। बहुवचन के लिए तुम शब्द का ही प्रयोग मिलता है।

तूने तूने क्या किया (पृ. ९ पिता-चन्द्रावती)

तैने अरे! विधना तैने यह क्या किया (चन्द्रावती- ईश्वर से)

तुमको तुमको यह कहना उचित नहीं (चन्द्रावती)
किसने तुमको छाला (पृ. ९)

आपने अपने मेरा बड़ा कलंक मिटाया है (पृ. १५ राजा ने- ऋषि से)

तुमने तुमने हर्ष से देवता-पितर को तृप्त किया (पृ. २३ यमदूत)

तुम्हें १- पिता हमारे आए हैं; तुम्हें बोलाते हैं (पृ. १३ नासिकेत- मां से)

२- भक्ति तुम्हें पूजे (पृ० ५४ रामचरित).

तुझे ब्रह्म हत्या तुझे नहीं होगी (पृ० ७५ रामचरित)

तुमसे तुमसे किसे सामर्थ्य है (पृ० १२७)

आपको आपको जंगल का राज्य दिया (पृ० ६५ सीता-राम)

आपसे आपसे मिलने को मैं आया (पृ० ७९ निषाद -भरत)

''आप''

ऊपर जिन पुरुष वाचक सर्वनामों पर विचार किया गया है, उनमें ''आप'' अपना विशेष स्थान रखता है ''आप'' सर्वनाम के प्रयोग के बारे में पं० कामता प्रसाद गुरू ने लिखा है कि :- यह पुरूष वाचक ''आप'' प्रयोग निज वाचक आप से भिन्न है। इसका प्रयोग मध्यम और अन्य पुरूष बहुवचन में आदर के लिए होता है।①

(अ) अपने से बड़े दरजे वाले मनुष्य के लिए ''तुम'' के बदले ''आप'' का प्रयोग शिष्ट और आवश्यक समझा जाता है।

(आ) बराबर वाले और अपने से छोटे दरजे के मनुष्य के लिए ''तुम'' के बदले ''आप'' कहने की प्रथा है।

(इ) आदर के साथ बहुत से बोध के लिए ''आप'' के साथ ''लोग'' लगा देते हैं--

इसी प्रकार उनके अनुसार अन्य पुरूष में आदर के लिए ''वे'' के बदले कभी-कभी ''आप'' आता है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में ''आप'' के प्रयोग की स्थिति के अध्ययन के लिए नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं :-

१- उद्दालक ऋषि पिप्पलाद मुनि से बोले---''आप बड़े हो, जैसी आज्ञा करिए'' (पृ० ६)

२- उद्दालक ब्रह्मा से ---''आपके अनुग्रह से सब प्रकार आनन्द है'' (पृ० ६) लेकिन उसी वाक्य में आगे--- ''इसलिए तुम्हारे शरन में आए'' (पृ० ६)

३- उद्दालक ऋषि ब्रह्मा से बोले--- ''महाराज! आप बड़े होकर ऐसी मिथ्या बात कहते हो?'' (पृ० ७)

४- चन्द्रावती- मुनि के प्रति- ''आपके अनुग्रह से पीड़ा हमारी दूर हुई (पृ० १०) लेकिन तुरन्त आगे- ''अब तुम्हारी सेवा टहल से संसार-सागर पार हो जाऊँगी (पृ० १९)

५- पार्वती शिव- ''हे परमेश्वर! मैं इसी लिए अपसे पूछती हूँ कि उनका चरित्र अरू तुम दोनों सनातन हो (पृ० ३६)

६- पार्वती शिव- आप मेरे स्वामी हैं और मैं तुम्हारी सेवक हूँ (पृ० ३६)

७- पार्वती शिव- इसका उत्तर आपने क्या ठहराया है, सो आप कहिए (पृ०, ३६)

८- दशरथ- विश्वामित्र--''महाराज! आपके आगमन से मैं बहुत कुतार्थ भया क्यूंकि तुमसे महानुभाव लोग जिस घर में पगु देते हैं (पृ० ५३)

---

① हिन्दी व्याकरण - पं० कामता प्रसाद गुरु - पृष्ठ ५६

इस प्रकार ऊपर के प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि सदल मिश्र ग्रंथावली में आप का प्रयोग अपने से बड़ों के लिए किया गया है। लेकिन इसके साथ ही यह भी दृष्टव्य है कि इसका निर्वाह नहीं किया गया है। अधिकांश वाक्य ऐसे मिलते हैं, जिनमें जिस व्यक्ति के लिए "आप" का प्रयोग है, उसी व्यक्ति के लिए साथ के दूसरे वाक्य में "तुम" का प्रयोग भी मिलता है।

१-आप के संबंध प्रयोग के संबंध में बड़े ही रोचक उदाहरण मिलते हैं।

सुग्रीव राम के लिए आप का प्रयोग करते हैं लेकिन राम सुग्रीव के लिए "तुम" का--

राम-सुग्रीव-- (१) "हे राजा तुम क्या सीता का बार-बार नाम लेते हो" (पृ० १४३)

सुग्रीव-राम-- (२) "सीता का समाचार वे सब ले आए नहीं तो आपका काज किए बिना --"

२- हनुमान राम के लिए "तुम" का प्रयोग करते हैं-- महाराज! सीता, लंका में हैं, मैं देख आया; अपना षेम कुशल उन्होंने तुम्हें कहा है। (पृ० १४३)

३-वे उनके लिए कहीं-कहीं "आप" का भी प्रयोग करते हैं- "यह सब काज आपकी प्रताप से हम कर आये हैं। (पृ० १४५)

४-विभीषण राम के लिए "तुम" और "आप" दोनों का प्रयोग करते हैं विभीषणसाष्टांग दंडवत किया ओ हाथ जोर गिड़गिड़ा कर लगा उनकी स्तुति करने कि हे भक्त वत्सल, हे सुग्रीव के मित्र हे, रघुनंदन,मैं तुम्हें बार-बार प्रणाम करता हूँ ,तुम सबके माता-पिता औ जगत के आदिकारण हो- "हे कृपा निधान मैं धन्य हूँ आपके चरण कमल के दर्शन से निस्सन्देह मैं मुक्त हुआ -(पृ० १४९)

भक्त जन अपने भगवान के लिए आदर सूचक सर्वनाम "आप" का प्रयोग प्रारंभ करते हैं, लेकिन जैसे ही वे सहज मुद्रा में होते हैं, राम को "तुम" से संबोधित करने लगते हैं।

अप्रधान पुरूष वाचक सर्वनाम

अन्य पुरूष

निश्चय वाचक सर्वनाम

वह (दूरवर्ती) यह (निकटवर्ती)

तालिका

	एकवचन	बहुवचन
ऋजु (मूल रूप)	वह , वे,सो, वो	वे
तिर्यक् (विकारी रूप)	उसने, उनने, तिस्से, विन्हें उससे किसने, उसको, किस, तिनमें, तिस्से, तिनके,विस्से	तिन्हको, उन्होंने विन्होंने इन्ह--
संबंध वाचक	उनका, उनके उसका, विसका, तिनकी विसके, उसके, तिन्हके तिसके	उनका उनके तिन्हके,
बलाघात	वो ही (वही) सेही सोई (वे ही)	सोइ (वे ही) उन्हीं- विनही

"वो"	१- वो वैसे ही मानते रहे हैं (पृ० ८) (बहुवचन)
	२- वो बोली कि पुत्र! क्या अजगुत कहते हो? (पृ० १३)
	३- तब वो बोली कि पुत्र तुम्हारे पिता--- (पृ० १३)
	४- वो होता रहेगा (पृ० २०)
वह	वह बोले - (पृ० ५ कृषि राजा से)
	वह बोले - (पृ० ६----वह ----)
वह	वह बोली कि तुम सब कौन हो (पृ० १२३-सीता-वानरों से)
वे	वे (आदरार्थ एकवचन)
	वे ही हमारी अभिलाषा को परावेंगे (पृ० ६ ब्रह्मा के लिए)
वो	घड़ी भर में वो गंगा के तट पर जा पहुँची (पृ० ८ चन्द्रावती)
सो	सो भी मेरे मंत्री हैं (पृ० १२२)
बहुवचन	
वे	तुम्हारी माया से जो अंधे हैं, वे तुम्हें नहीं पहचानते (पृ० १७९)
	वे सब गंगा पार हो गए (पृ० ७४)

विकारी रूप अन्य पुरूष दूरवर्ती

विकारी =	उसको	- उसको त्याग दें तो नरक होए	(पृ० ६)
	उसने	- उसने ऋषियों से कहा	(पृ० १०)
	उनसे	- यह वचन लगा उनसे कहने	(पृ० १९०)
	उससे	-उससे पूछने लगी	(पृ० ८)
	उसको	- उसको देख	(पृ० ९)
	तिस्से	- तिस्से खाने-पीने को सामग्री भरी रहे	(पृ० १७८ राम)
	विस्से	- गुह को सूचित कर विस्से वर का दूध मांगा	(पृ० ६०)
	किस	- वे किस पर जा बैठे	(पृ० ७०)
	किसने	- किसने घोड़ों को रथ में जोता	(पृ० ६९)
	विन्हें	- विन्हें देखते नहीं	(पृ० ७६)
	किसे	- प्राणी जो खाते हैं, किसे उसे जठरग्नि रूप में पचाते हैं	(पृ० १७९)
	विन्हको	- विन्हको आप ये वचन दे चुके हैं	(पृ० ६७)
	उसे	- उसे देखकर राम ने विचारा	(पृ० १९१)
	उन्हको	- उन्हको पहनने को दिया	(पृ० ६८)
	विनने	- विनने क्या कहा	(पृ० ७४)
	वुसको	- वुसको गरे लगा लिया	(पृ० ६९)
	विन्होंने	- विन्होंने उत्तर दिया- राम के लिए	(पृ० ७०)
	उन्होंने	- उन्होंने सोहावक किया है	(पृ० १२)

संबंध सूचक

किसका	- तुमने किसका वृतांत सुना	(पृ० १२७)
वुनकी	- तब तब नाना अवतार हो वुनकी आपदा हरते हो	(पृ० १७९)
वुसकी	- तब वुसकी भक्ति से निपट प्रसन्न हो	(पृ० १८१)
उनके	- उनके चरणों पर जा गिरा	(पृ० ६९)
विनके	- विनके निकट ही आ उतरे	(पृ० ६८)
तिसके	- तिसके पीछे पिता का प्रदक्षिणा कर रामचन्द्र	(पृ० ६८)
तिनके	- तिनके साथ विन दोनों को बुला भेजा	(पृ० १९५)
तिसमह	- तिसमह एक में तो लक्ष्मण जी जा उतरे	(पृ० ७३)

बलात्मक प्रयोग

विनही को - जिनका मन निर्मल हो रहा है, विनही को तुम्हारा सब भेद प्रकाश है (पृ० १७९)

वे ही - वे ही सनातन परमात्मा नाना रूप हो क्रीड़ा कर रहे हैं (पृ० १८९)

उन्हीं - उन्हीं साथ हो कौशल्या के घर गये (पृ०६८)

विन ही - विन ही से तुमने सुना होगा

वुसी को - जिससे संतुष्ट हो वुसी को यह हार दो (पृ० १८०)

यद्यपि उस, उन, उन्हें आदि के प्रयोग मिलते हैं, फिर भी वुस, वुन, तिस एवं तिन आदि की तुलना में उनकी संख्या बहुत कम है। संभवत: यह उच्चारण के अनुसार या वह की अनुकृति पर कर्म आदि बनाने के कारण ही हुआ हो। लेकिन आगे चलकर यह प्रवृत्ति खतम होती गई। रामचरित में वुस, वुन, वुन्हें, तिस, तिस्से एवं वुन्हीं आदि शब्दों का प्रयोग ज्यादा मिलता है।

इस क्रम से जहाँ तक "सो" का प्रश्न है, यह सर्वनाम बहुधा संबंध वाचक सर्वनाम "जो" के साथ आता है और इसका अर्थ संज्ञा के वचन के अुनसार वह, वा, वे होता है। "सो" का प्रयोग अलग वाक्य में नहीं होता और न उसका प्रयोग "जो" के पहले होता है। "सो" (इसलिए या तक के अर्थ में) कभी-कभी समुच्चय बोधक के समान उपयोग में आता है। हम सदल मिश्र ग्रंथावली में इसके प्रयोग पर उदाहरण पूर्वक विचार करेंगे। पं० सदल मिश्र ने इस सर्वनाम का प्रयोग पर्याप्त रूप में इन दोनों ही रूपों में किया है :-

सो

१- उद्दालक के वचन सुन संतुष्ट हो वो ध्यान में जो ये **सो** आँख खोल पितामह बोले (इसलिए)

२- जितने वहाँ के बसने वाले मुनि लोग थे **सो** सब आकर राम-लक्ष्मण की पूजा करने लगे- (पृ० ४५) (बहुवचन वे)

३- पीछे राजा इक्ष्वाकु के कुल की महासुन्दरी कन्या वो पतिव्रता सब गुण-भरी **सो** तुम्हारी भार्या होगी (वह) (पृ० ६)

४- जो ब्रह्मा मेरे पिता हैं, **सो** तुम्हारे नाभि कमल से उत्पन्न हुए हैं (वह) (पृ० ५५)

५- स्वेत छत्र क्या हुआ ओ शिर का मुकुट क्यूं उतार रष्या अरू बाजे बजाते थे, सो क्यूं कारण भया (वह) ((पृ॰ ९५)

बलात्मक

१- सोई - और जो तो हैं, पातकी सोई हैं अटकते वो नाना दु:ख को सहते (पृ॰ २७)

२-सो भी न कह सकती हूँ (पृ॰ ८)

१- पं॰ कामता प्रसाद गुरू के अनुसार "यह" एकवचन तथा "ये" बहुवचन सर्वनाम हैं। ① इसका प्रयोग

(अ) पास की किसी वस्तु के विषय में बोलने के लिए

(आ) पहले कही हुई संज्ञा या संज्ञा वाक्यांशों के लिए

(इ) पहले कहे हुए वाक्य के स्थान में तथा

(ई) पीछे आने वाले वाक्य के स्थान में होता है।

२- डा॰ हरदेव बाहरी ने अपने "व्यावहारिक हिन्दी व्याकरण" में इस संबंध में यह परिभाषा दी है :-②

"यह" निकट के पदार्थ को और संकेत करता है, इसे निकटवर्ती निश्चय वाचक सर्वमनाम कहते हैं। "वह" "यह" कहने से पदार्थ का निश्चय हो जाता है।"

"सदल मिश्र ग्रंथावली" में "यह" का "यिह" रूप भी मिलता है और "ये" के संबंध कारक में "इन्हका" रूप भी मिलता है--

मूल रुप "यह", "यिह", "ये",--

यह = यह क्या तेरी अवस्था है? (पृ॰ ११)

= यह कुल को दूषण देने हारा और कीर्ति को नाशकरनिहार है। (पृ॰ ९ चन्द्रावती के लिए)

यिह = यिह सुन पहले तो वह बहुत रिसियानी (पृ॰ ५७)

यह = वे तो यह चाहती ही हैं (पृ॰ ५८ ऊपर ई अर्थात् पहले कहे हुए वाक्य के बदले)

यिह = यिह तो होनी ही थी (पृ॰ ६७-कर्ता)

ये सब = ये सब आपके आज्ञाकारी हैं (पृ॰ १२३)

विकारी रूप = इस्से भवबन्धन से मुक्त हो (पृ॰ ३५)

"इस्से" मुझे समझाये के कहिए (इसलिए के अर्थ में) (पृ॰ ३६)

इससे = इससे हमारा बड़ा कल्याण होता है (पृ॰ ५७)

इसमें = इसमें कुछ मेरा अकाज नहीं (पृ॰ ५८)

= उनको इसमें बड़ा आनन्द है (पृ॰ ५८)

इन्हें = दशरथ ने कहा कि मैं इन्हें गोदी में बिठलाऊं (पृ॰ ६२ आदरार्थ एक वचन)

इन्हको = मैं तो इन्हको बांध कर व भाई बंधुओं मामा समेत भरत को आज ही जा मार

---

① हिन्दी व्याकरण - पं॰ कामता प्रसाद गुरु - पृष्ठ ५६

② व्यवहारिक हिन्दी व्याकरण - डा॰ हरदेव बाहिरी (पृष्ठ ८६)

डालता हूँ (पृ० ६३ दशरथ के लिए)

संबंध कारक रूप = इसका पलटा दो गुणा में दूंगा (पृ० ५९)

इन्हके = इस्से भगवान आप इन्हके घर में आ जन्मे हैं (पृ० ६७)

इन्हीके = हे मूर्खो, इन्हकी चिन्ता तनिक मत तुम करो (पृ० ६७ राम के लिए आदरार्थ)

बालाघात = यही जनावने के लिए मैं आया (पृ० ५७)

निज वाचक सर्वनाम "आप"

पं० कामता प्रसाद गुरू के अनुसार प्रयोग में निज वाचक "आप" पुरूष वाचक (आदर सूचक) "आप" से भिन्न है। पुरूष वाचक "आप" एकवाचक होकर भी नित्य बहुवचन में आता है; पर निज वाचक "आप" एक ही रूप से दोनों वचनों में आता है। पुरूष वाचक "आप" केवल मध्यम और अन्य पुरूष में आता है, परन्तु निजवाचक "आप" का प्रयोग तीनों पुरूष में आता है। आदरसूचक "आप" वाक्य में अकेला आता है, किन्तु निज वाचक "आप" दूसरे सर्वनामों के संबंध में आता है।"①

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त "आप" शब्द

तालिका

ऋजु (मूल रूप)	आप
तिर्यक् (विकारी रूप)	अपने आप
संबंध	अपना, अपने, अपनी

सदल मिश्र ग्रंथावली में निज वाचक सर्वनाम "आप" के निम्नलिखित प्रयोगों के उदाहरणों के आधार पर विचार किया जाएगा :-

आप १- इस्से आप भगवान इन्हके घर में आ जन्में हैं (पृ० ६७) (स्वयं के अर्थ में)

२- फिर आप बालक हो लगे रोने (पृ० ४२ खुद)

अपने आप = जो शान्त निर्मल ज्योति से आप से आप प्रकाश हो रहे हैं (पृ० ३७ स्वयं के अर्थ में)

संबंध १- तुम अपने आश्रम पर जा शिव-पूजन करो (पृ० ७)

२- वे अपने आश्रम पर आये (पृ० ७)

३- मैं अपने पिता को कौन मुंह दिखाऊँगी (पृ० ८)

अपने-अपने १-अपने-अपने भाग में से आधी-आधी हविष्य प्रसन्न हो कौशिल्या ओ कैकेयी ने सुमित्रा को दी (पृ० ४०)

२ अपनी-अपनी कमाई (पृ० ७०)

प्रेम सागर में भी "आप" के साथ अपनी अपने आदि शब्द रूप के प्रयोग मिलते हैं : --

अपनी = १-ज्योतिषियों ने अपनी लग्न साधी (पृ० ११३)

अपने कंश अपने से द्रोह कियो वे प्रभु त्रिभुवन नाथ (पृ० ८०)

---

① हिन्दी व्याकरण - प० कामता प्रसाद गुरु (पृष्ठ ५८)

४- संबंध वाचक सर्वनाम ''जो''

पं॰ कामता प्रसाद गुरू लिखते हैं कि :-

१- हिन्दी में संबंध वाचक सर्वनाम एक ही है, इसलिए न्याय शास्त्र के अनुसार इसका लक्षण नहीं बताया जा सकता। ''भाषा भाष्कर'' को छोड़कर प्रायः सभी व्याकरणों में संबंध वाचक सर्वनाम का लक्षण नहीं दिया गया।''

डा॰ हरदेव बाहरी के अनुसार ''एक उप वाक्य की संज्ञा या सर्वनाम का संबंध दूसरे उपवाक्य से बताने के लिए ''जो'' से काम किया जाता है।'' उन्होंने आगे लिखा है-- ''कभी'' ''जो'' से प्रारम्भ होने वाले वाक्य के बाद ''सो'' से दूसरा वाक्य आरंभ होता है। ऐसे वाक्य में ''जो सो'' का अवश्यंभावी संबंध है। इन्हें नित्य संबंधी सर्वनाम कहते हैं। जो का अर्थ कहीं-कहीं यदि भी होता है, जैसे जो मैं ऐसा जानकी ता यों न करती।''

इस प्रकार ''जो'' के प्रयोग के बारे में अनेक दृष्टिकोण हैं -- आदर और बहुत्व के लिए, समुच्च बोधक ''यदि'' के अर्थ में वाक्य के बदले एवं द्विरूक्ति में जो-जो, जिसकी-जिसकी।

अब ''सदल मिश्र ग्रंथावली'' में इस संबंध वाचक के विभिन्न प्रयोगों का अध्ययन करते हुए उनके उदाहरणों को भी प्रस्तुतत किया जाएगा :-

संबंध वाचक सर्वनाम ''जो''

तालिका

ऋतु (मूल)	एक वचन जो	बहुवचन
तिर्यक् (विकारी)	जिसे, जिन्हें जिससे, जिसमें आदि	
संबंध वाचक	जिनके, ज़िसके, जिसकी, जिसका आदि	जिसका, जिनका,

जो १- विस अविनाशी चेतनरूप सीतापति को बार-बार प्रणाम करता हूँ कि जो पृथ्वी का भार उतारने के अर्थ दवतान की विनती से निर्मल रविकुल में जन्म ले राक्षसन को बध, धरती को सुख दे ब्रह्म माह जो मिल गए। (पृ॰ ३५)

२- कोटिन गोदान का फ़ल जो नर चाहते हैं, तिन्हें उचित है कि नित-नित अध्यात्म रामायण का पाठ करें। (पृ॰ ३५)

जो-जो- जो-जो तुम्हारी मनकामना होगी, सो-सो सब सुफल होगी (पृ॰ ४२)

जो - श्री महाराज जान गिलकृस्त साहब से मिला, कि जो पाठशाला के आचार्य हैं (पृ॰ १ आदर के लिए)

जो-सो - वो ध्यान में जो थे सो आंख खोल पितामह बोले (पृ॰ ६) (आदर के लिए) बहुवचन सर्वनाम

जो-तो - जो मैं ने स्वप्न में भी कबहीं आज तक किसी पुरुष का मुंह न देखा होय तो यह गर्भ

जैसा ही हुआ वैसा ही निकल जाए (पृ० ११ यदि तो के अर्थ में)

जो-सो १- और बालक जो बहा हुआ चला, सो कुछ दूर आगे गंगा के तीर --- आ लगा (पृ० ११ एक वचन-नित्य वाचक सर्वनाम के रूप में)

जो-सो विसका जो गुण है, सो सब कहने का सामर्थ्य मुजमें नहीं-जो-सो-नित्य वाचक सर्वनाम (एक वचन)

जो-सो जो बढता हुआ तुलशी पीपल की प्रदक्षिणा करता है, वह ब्रह्म हत्या से छूटता है (पृ० ३४ नित्य वाचक सर्वनाम)

जो तुम्हें मेरा शपथ है जो तुम इससे कुछ बोलो (पृ० ९४)

जो कुछ जो कुछ उत्कट वचन मैं ने कहा था, सो मेरा अपराध तुम वुन से क्षमा कराइओ (पृ० १४४ अनिश्चय वाचक सर्वनाम के साथ)

जो क) समझाकर मुझसे कहिए, जो मेरा मन प्रसन्न होए (पृ० १८२)
(ताकि) यहाँ ताकि के अर्थ में प्रयुक्त
ख) समझाकर कहो जो मेरे मन का सन्देह जाए (पृ० १८२)

जिससे सीता! तुम जिससे संतुष्ट हो, वुसी को यह हार दो (पृ० १८०)

जो जो एकेला आप सुग्रीव ही आया होये, तो एक क्षण भर में उसको मैं मार गिराऊँ (पृ० ११४)

जिसमें गौतमी एक स्थान है, जिसमें अनेक मुनि रहते हैं (पृ० ९५)

लेकिन कहीं-कहीं "जिसमें" का प्रयोग "ताकि" के अर्थ में भी मिलता है जैसे-- जिसमें वह हाथ आवे सो उपाय करो (पृ० ९५)

जिनका जिनका इक्ष्वाकु कुल में जन्म (पृ० ७)

जिसको जिसको सत्य ही ब्रत उसके राज्य में ---- (पृ० ७)

जिसकी जिसकी छवि से गंगा के दोनों ओर अब कैसे शोभयमान हो रहे हैं (पृ० ८)

जिससे कौन कुकर्म किया, जिससे राजा रघु के कुल में कलंक लगा (पृ० ९)
यह उल्लेखनीय है कि "तिस्से", तिस्का की भांति "जो" के जिस्का या जिस्से या जिस्में रूप सदल मिश्र ग्रंथावली में नहीं मिलते।

जहाँ तक "प्रेमसागर" का प्रश्न है, इस ग्रंथ में भी "जो" तथा इसके विभिन्न रूपों का प्रयोग मिलता है--

जो जो असुर रण से भाग के बचे थे, तिन्हें जरासंध मंत्री के साथ घर ले पहुँचा। (पृ० ९३)

जिसे जिसे मेघवर्ण कमलनयन, अति सुन्दर बदन पीताम्बर पहरे पीत पट ओढ़े देखे तिसका पीछा बिना मारे मत छोड़ियों (पृ० ९४)

जिसका जिसका यश छा रहा चहुंदेश (पृ० ९९)

ेमसागर के दोहों एवं चौपाइयों में "जो" का "जे" "जिन"

जे पटरानी आठों जे गनी प्रीत निरंतर तिनसो घनी (पृ० १३६)

जिन कामरि ओढ़ी गाय चराई। बन बन बैठि छाछ जिन खाई (पृ० १००)

प्रश्न वाचक सर्वनाम

कौन, क्या

इन दोनों में "कौन" सर्वनाम के तिर्यक् (विकारी) रूप मिलते हैं, लेकिन "क्या" का रूप अपरिवर्तित रहता है।

इसकी एक विशेषता यह है कि इसका प्रयोग निर्विभक्ति के रूप में केवल कर्त्ता-कर्म के एक वचन में होता है।

कुछ विचारों के अनुसार "कौन" प्राणिबोधक प्रश्न वाचक सर्वनाम हैं, जब कि 'क्या' अप्राणिबोधक प्रश्न वाचक सर्वनाम है।

तालिका

कौन

ऋजु (मूल रूप)	एक वचन	बहुवचन
	कौन कौन-सा	
		कौन-कौन
तिर्यक् (विकारी) रूप	किसने, किसका	

कौन- राक्षसी का वेष किये लंका में हनुमान की बर्जा और कहा तुम कौन हो (पृ० १३३)

कौन सा- उस मुनि का कौन-सा आश्रम है? (पृ० ७२)

कौन-कौन- कौन- कौन मुनि लोग रहते हैं? (पृ० २१)

किसने- किसने तुमको छला? (पृ० ९)

किसको- किसको पूछूँ (पृ० ७)

कौन सी - कौन-सी विपत्ति में पड़ी है (पृ० ९)

ऊपर "कौन-सी" में कौन का प्रयोग अप्राणिबोधक शब्द आश्रम के साथ प्रत्ययों के योग मिलते हैं 'किन' रूप नहीं के बराबर हैं।

प्रेमसागर में "कौन" का प्रयोग इस प्रकार है--

कौन भला है और कौन बुरा यह समझाय के कहो (पृ० ५५)

सदल मिश्र ग्रंथावली में किन्होंने/किनने आदि रूप प्राय: नहीं मिले।

क्या

सदल मिश्र ग्रंथावली में नीचे लिखे प्रयोग मिलते हैं :-

क्या- १- वो निपुत्री को घर में क्या सुख कि जिस विना सदा अंधकार रहता है (पृ० ६)

२- रे दायी, सुन तो आज क्या है कि नगर में बड़ी घूमधाम हो रही है (पृ० ५८)

प्रेमसागर "में" दो हों चौपाइयों में "क्या" की जगह "कहा" शब्द मिलता है।

किती आयु, कैसौवली, कहा नाम तैहि आदि (पृ० १८)

अनिश्चय वाचक सर्वनाम

कोई, कुछ

इनमें 'कोई' सर्वनाम के तिर्यक् रूप मिलते हैं, लेकिन 'कुछ' कि नहीं। स॰मि॰ग्रं॰ में प्रयुक्त रूप

तालिका

	एकवचन	बहुवचन
ऋजु (मूल)	कोई	
तिर्यक् (विकारी)	किसी ने, किसी को किसी की	

प्रयोग --

कुछ- मैं कुछ नहीं जानती हूँ (पृ॰ ८)

कोई- (क) कोई तो कहता था अरे। यह इन्द्र की अप्सरा है (पृ॰ ७)

(ख) न तो कोई वैसी कन्या, न गन्धर्व (पृ॰ ७)

किसी के- किसी के शाप से इहाँ आ पहुँची (पृ॰ ७)

किसी को- किसी को कुछ रोग और दु:ख होए (पृ॰ ७)

किसी की- ऐसा किसी की नहीं पावे (पृ॰ १०)

सदल मिश्र ग्रंथावली में "कोई" का बहुवचन रूप नहीं मिलता। "प्रेमसागर" में दोहे चौपाई में भी "कोउ" के साथ "कोई" शब्द भी मिलता है

जाके बैरी मित्र न कोई।
ऊंच नीच कोऊ किन होई।।
(पृ॰ ८४)

***

विशेषण

(अध्याय -नौ)

पाणिनी नें विशेषण को नाम पदों के अंतर्गत माना है। यही कारण है कि इसे गुण वाचक संज्ञा भी कहा गया है। विशेषण के अध्ययन में इस बात को ध्यान में रखना जरूरी है कि जहाँ संस्कृत के विशेषण अपने विशेष्य के लिंग, वचन और कारक से प्रभावित होते हैं अर्थात् जो विभक्ति-प्रत्यय उनके विशेष्य के होते हैं, वहीं विशेषण के, वहाँ हिन्दी के विशेषण की स्थिति भिन्न होती है। हिन्दी के विशेषण पद-रचना को दृष्टि से दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं :-

(१) रूपान्तरशील विशेषण
(२) रूपान्तर रहित विशेषण

इन भेदों के स्वरूप पर विचार करने से पूर्व यह जरूरी है कि हम इसके संबंध में कुछ और महत्त्वपूर्ण बातों को ध्यान में रख लें। "सब विशेषण रूपांतरशील (विकारी) शब्द नहीं होते, परन्तु विशेषणों का प्रयोग संज्ञाओं के समान हो सकता है और उस समय इसमें रूपान्तर होता है। जैसे बड़ों की बातें। विशेषण की पहचान यह है कि वह संज्ञा की व्यक्ति को मर्यादित करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विशेषण रहित संज्ञा से जितनीं वस्तुओं का बोध होता है, उनकी संख्या विशेषण के प्रयोग से कम हो जाती है।" 'घोड़ा' शब्द से जितने प्राणियों का बोध होता है, उतने प्राणियों का बोध 'काला घोड़ा' शब्द से नहीं होता।

समानाधिकरण :- जब विशेषण किसी व्यक्तिवाचक संज्ञा के पहले आता है, तो उससे उस व्यक्ति -वाचक संज्ञा का अर्थ स्पष्ट होता है ऐसी स्थिति में संज्ञा की व्याप्ति के मर्यादित होने की बात नहीं आती। ये विशेषण शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए आते हैं - जैसे - पतिव्रता सीता, प्रतापी भोज, दयालु हरिश्चन्द्र आदि में पतिव्रता, प्रतापी एवं दयालु **समानाधिकरण** विशेषण हैं।

इस प्रकार जब ये विशेषण जातिवाचक संज्ञा के पहले आता है,तो उससे जातिवाचक संज्ञा का अर्थ स्पष्ट होता हैं तब ये विशेषण जातिवाचक संज्ञा शब्दों के साथ आते हैं, तो ये उनके साधारण धर्म सूचित करने वाले विशेषण समानाधिकरण कहलाते है, जैसे - **मूक** पशु, **काला** कौआ। यह स्पष्ट है कि काला एवं मूक क्रमशः कौआ एवं पशु के साधारण धर्म को प्रकट करते हैं, जिससे शब्द की व्याप्ति पर कोई प्रभाव. नहीं पड़ता।

उद्देश्य विशेषण - जब विशेषण का प्रयोग संज्ञा के साथ होता है, तो उसे उद्देश्य विशेषण कहते हैं - जैसे- **अच्छे** लड़कों को सब चाहते हैं ।

विधेय विशेषण - जब विशेषण का प्रयोग क्रिया के साथ हो, तो उसे विधेय विशेषण कहते हैं- जैसे : - लड़का बहुत **भला** है।

विशेषण तीन प्रकार के होते हैं -

(क) गुणवाचक विशेषण
(ख) संख्यावाचक विशेषण (परिमाणवाचक सहित)
(ग) सार्वनामिक विशेषण

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त विशेषणों का अध्ययन करते समय उपर्युक्त दृष्टिकोणों का ध्यान रखते हुए हम यह विचार करने का प्रयास करेंगे कि -

(१) रूपान्तरशील

विशेषणों के अंतर्गत निम्नलिखित क्रम को अपनाया जाय : -

(क) आकारांत विशेषण
(ख) आकारांत वर्तमान कालिक कृदन्त
(ग) आकारांत भूतकालिक कृदन्त
(घ) वाला एवं इस श्रेणी के अन्य प्रत्ययांत विशेषण
(ङ) उद्देश्यात्मक स्थिति के आकारांत विशेषण
(च) विधेयात्मक स्थिति के आकारांत विशेषण (पूरक की स्थिति)
(छ) सार्वनामिक विशेषण

(२) रूपान्तर रहित विशेषण

इसके अंतर्गत उन सारे विशेषणों का अध्ययन किया जायगा, जो तत्सम हैं तथा जिसके अंतर्गत हिन्दी के तद्भव विशेषणों में प्रलिंगवर्गीय आकारांत विशेषणों को छोड़ बाकी सभी स्वरांत तथा व्यंजनांत विशेषण जाते हैं।

आकारांत गुणवाचक विशेषण-

इस विशेषण के अन्तर्गत पूर्वोक्त स्थिति के अनुसार स० मि० ग्रं० एवं 'प्रेम सागर' में उपलब्ध ऋजु एवं तिर्यक् के एक वचन एवं बहुवचन रूपों का अध्ययन करेंगे।

पुलिंग	एकवचन	बहुवचन	आबद्ध रूपिम
ऋजु	**अच्छा**	**अच्छे**	-ए
तिर्यक्	**अच्छे**	**अच्छे**	ए-ए

अच्छा-अच्छा - लोग अच्छा अच्छा भोग विलास कर .... **अन्त में परम पद को पहुँचते हैं- (पृ० ५ स०मि०ग्रं०)**

अच्छे-अच्छे -अच्छे अच्छे स्तोत्रन से बड़ी मीठी-मीठी बातें **करते हैं। (पृ० ३८ स० मि०ग्रं०)**

अच्छी - यह बहुत अच्छी कथा है (पृ० ७)

अच्छे - अच्छे सुहावने सुदर्पा के मंदिर (थे) (पृ० ३७)

अच्छा - कुंड में क्या अच्छा निर्मल पानी (पृ० १०)

ऊपर के उद्धहरणों से यह स्पष्ट है कि पं० सदल मित्र ने 'अच्छा' विशेषण के ऋजु एवं तिर्यक्

रूपों का प्रयोग यथास्थान किया है, लेकिन उनकी यह अपनी विशेषता है कि वे विशिष्टता पर बल देने के लिए इन विशेषणों का प्रयोग दो बार करते हैं। आकारांत विशेषणों के अतिरिक्त अन्य विशेषणों में भी उनकी यह प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है । जैसे -

(१) **उत्तम-उत्तम** - जहाँ **उत्तम-उत्तम** लोग बसते हैं (पृ० ५)
(२) **सुन्दर-सुन्दर** - चित्र-विचित्र **सुन्दर-सुन्दर** बड़ी-बड़ी अटारिन से शोभायमान नगर कलिकत्ता (पृ. ५)
(३) **महा महा** - ऐसे **महा महा** रौरव नरक में पड़ते हैं (पृ. २१)
(४) **सुगन्ध सुगन्ध**- वो **सुगंध सुगंध** फूल ला विधि से दोनो भाई की पूजा - (पृ. १०६)
(५) **मीठा-मीठा** - अमृत समान **मीठा-मीठा** फल जो उनके लिए चुन-चुनकर आगे से ला रखा था। (पृ. १०६)
(६) **सांची-सांची** ऐसी **सांची-सांची** बातें कहके मन में वेद के मंत्र जपते हुए (पृ. ६)
(७) **सुथरे-सुथरे** -जहाँ बहुत से मुनियों के **सुथरे-सुथरे** आश्रम थे। (पृ. ६)
(८) **मीठी-मीठी** - ऐसी नृप की **मीठी-मीठी** बातों से हर्षित हो बार-बार आसीस कह उद्धालक बोले (पृ. १४)
(९) **काली-काली** - धर्म्मराज की आज्ञा से तुरंत **काली-काली** बड़ी-देह पाय यमदूतों के हाथ पड़ मुग्दरों के मार से भुरकुस होते (पृ. २)
(१०) **कड़ी-कड़ी/लाल-लाल** - परशुराम ने विनकी बातों का कुछ आदर न किया, उलटे ही क्रोध से **लाल-लाल** आँखें कर श्री रामचन्द्र को **कड़ी-कड़ी** बैन सुनाने लगे (पृ.५२)

ऊपर के उदाहरणों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कथ्य की सम्यक् अभिव्यक्ति देने की आतुरता के परिणामस्वरूप लेखक द्वारा किस प्रकार शैली का निर्माण किया गया है। यह ठीक है कि इस आतुरता की स्थिति में अभिव्यक्ति के क्रम में भले ही कुछ त्रुटियाँ भी आयी हों, लेकिन उन त्रुटियों से प्रवाह की गति मंद नहीं पड़ती। उदाहरणार्थ 'सुगंध सुगंध फूल' के स्थान पर 'सुगंधित' का प्रयोग होना चाहिए था।

खड़ी-	**खड़ी** बोली	(पृ. ५)
सारी -	**सारी** पृथ्वी का पति	(पृ. ७)
बड़ी -	**बड़ी बड़ाई**	(पृ. ५)
सा -	बहुत-**सा** बिलाप कर	(पृ. ९)
बड़े -	**बड़े बड़े** मुनि लोग नित्य सेवें	(पृ. ५)
बड़ा-	**बड़ा** अनर्थ हुआ	(पृ. ५)
बड़ी -	**बड़ी** तपस्या	(पृ. ६)
भली -	**भली** भाँति	(पृ. ५)
महासुंदरी -	**महासुंदरी** कन्या	(पृ. ६)
देने हारा.-	कुल को दूषण **देने हारा** गर्भ	(पृ. ९)
अच्छी -	**अच्छी** कथा	(पृ. ७)
करनहारा -	कीर्ति को नाश **करनहारा** गर्भ	(पृ. ९)
जीतनेवाले -	जग **जीतनेवाले** कामदेव	(पृ. ६)

सी - कौन **सी** विपत्ति में पड़ी है- (पृ० ९)
बड़े- **बड़े** धर्मात्मा (पृ० ७)
बड़ी- **बड़ी बड़ी** छाती (पृ० ९)
अभागी - मुझ सी **अभागी** स्त्री (पृ० ९)
अछे सुहावने-अछे सुहावने सुवर्ण के मंदिर (पृ० ३)
अच्छा निर्मल-अच्छा निर्मल पानी (पृ०१०)
भला- **भला** दिन हुआ करेगा (पृ०१४)
भषने वाली- सबको **भषने वाली** ताड़का (पृ० ४)
मलीन - चन्द्रमा सा **मलीन** मुँह (पृ० १५)
छोटे- **छोटे** लड़के का लव (पृ० १९४)
घने- **घने** वन में चले गये (पृ० १६)
डरावने - **डरावने** शाप से (पृ०१७)

सदल मिश्र ग्रंथावाली में प्रयुक्त रूपांतरशील गुणवाचक विशेषणों की संख्या का अनुमान लगाया जाय, तो उससे निश्चय ही यही निष्कर्ष निकलेगा कि रूपांतरशील आकारांत विशेषणों की तुलना में रूपांतर रहित अकारांत एवं तत्सम विशेषणों की संख्या अधिक है। उदाहरण के तौर पर उक्त ग्रंथ में प्रयुक्त कुछ विशेषणों की सूची इस प्रकार है :-

सकल सिद्धिदायक - सकल सिद्धिदायक गणपति- (पृ० ५)
नायक - देवतन में **नायक** गणपति - (पृ० ५)
सुन्दर - **सुन्दर सुन्दर** अटारिन (पृ० ५)
उत्तम - **उत्तम उत्तम** लोग (पृ० ५)
गुणी - **गुणी** जन (पृ० ५)
सुफल- गुण को **सुफल** कर पितरों को (विधेयात्मक) (पृ० ५)
तृप्त- **तृप्त** करके (पृ० ११)
जाननिहार - शास्त्रन के **जाननिहार** (पृ० ५)
सावधान - **सावधान** होकर (विधेय) (पृ० ५)
पवित्र- लोग **पवित्र** होते हैं (पृ० ५)
पूरण- मनोरथ **पूरण** करो (विधेयात्मक) (पृ० ६)
महा - **महा** तपस्वी (पृ० ६)
प्रसन्न - **प्रसन्न** राजा (पृ० ७)
पराक्रमी - **पराक्रमी** राजा (पृ० ७)
हर्षित- हर्षित चन्द्रावती (पृ० ८)
अद्भुत - **अद्भुत** वृतांत (पृ० ९)
अनाथ- **अनाथ** स्त्री (पृ० ९)
रत - धर्म में **रत** ऋषि (पृ० ९)
अशुद्ध- यज्ञशाला न **अशुद्ध** हो (विधेया०) (पृ० १०)
आनंदित - **आनंदित** चन्द्रावती (पृ० ११)
कृतार्थ - **कृतार्थ** मुनि (पृ० ११)

चंचल - **चंचल** नयन (पृ॰ १०)
लाल - **लाल** अधर (पृ॰ १०)
मलीन - **मलीन** मुँह (पृ॰१५)
लाल- **लाल** आँख कर बोले (पृ॰ १६)
कुटिल कठोर निर्दयी - **कुटिल कठोर निर्दयी** दूसरा कौन होगा (पृ॰ १७)
कुलीन - **कुलीन** वर (पृ॰ २४)
महा उदार- **महा उदार** सको गुण निशान (पृ॰ ३३)
सिगरे - **सिगरे** लोक (पृ॰ ३३)
महा दुखदायक - **महा दुखदायक** असि पत्र (पृ॰ २१)
कु- **कु**कर्म्म (पृ॰ २२)
मन- **मन** भावत फल दायक सकल शास्त्र का जान निहार (पृ॰ ३३)
लोभी, द्रोही -**लोभी, द्रोही** दास (पृ॰ ३४)
अज्ञानी - **अज्ञानी** लोग (पृ॰ ३७)
रतन जटित सुंदर - **रतन जटित सुंदर** कुंडल (पृ॰ १०)

ऊपर के उदाहरणों में से अधिकांश उद्देश्यात्मक प्रयोग के तथा 'अशुद्ध' 'पूरण' जैसे विधेयात्मक प्रयोग के हैं। 'कौन सी' में सादृश्य बोधक विशेषण का उदाहरण है। इन उदाहरणों से यह भी स्पष्ट है कि कहीं-कहीं विशेषण को तो दोहराया गया है, लेकिन कहीं कहीं एक विशेषण के साथ उसकी मात्रा या बल को बढ़ाने के लिए उसके पहले 'महा' एवं 'अति' शब्द रखे गये हैं- जैसे - महादुखदायक,महाडरावन, महानास्तिक, महाउदार एवं महानरक (पृ॰ २१) आदि ।

जहाँ कहीं कुशल अभिव्यक्ति के लिए आवश्यकता पड़ी है, लेखक ने उपयुक्त विशेषणों का प्रयोग किया है, चाहे वे तत्सम के शब्द हों या बोलियों के। इससे संबंधित कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं-

'कृतारथ' महा प्रतापी - ये शब्द दशरथ एवं विश्वामित्र के लिए इस रूप में प्रयुक्त हैं।

'राजा दशरथ बहुत अपने को कृतारथ मान बड़े हर्षित भये तो तुरत राम को बुला गोद में बिठला बार-बार मुँह चूम प्यार कर विश्वामित्र के संग कर दिया। तब दोनों भाई को पाकर महाप्रतापी ऋषि निपट संतुष्ट हो बहुत आशीस दे हर्षित कर दशरथ से विदा भये । (पृ॰ ४४-४५)

'वेदाध्ययन में तत्पर' वे दोनों सीता के पुत्र क्रम क्रम सब सब विद्या पढ़के पंडित हुए वो **वेदाध्ययन में तत्पर।**' (पृ॰ १९४)

इसी प्रकार - **निष्पाप** (पृ॰ ४७) **दिगंबर वेष** (पृ॰ १९) **अभिमानी** मुनि लोग (पृ॰ ४८) **श्रेष्ठ** पुत्र (पृ॰ ४८)

सात्त्विक, राजस, तामस, उत्तम,मध्यम एवं अधम (पृ॰ १९४)

चेतन रूप परमात्मा (पृ॰ १९४) तथा **दारुण** तप (पृ॰ १९४) आदि विशेषण विशेष्य इसके लिए उद्धृत किये जा सकते हैं ।

गुणवाचक विशेषणों की एक कोटि 'कृदन्त' की है। आकारांत वर्तमानकालिक एवं भूतकालिक कृदन्त जब अपने क्रियांश की प्रमुखता खोकर विशेषणवत् प्रयुक्त होते हैं, तो वे इस वर्ग में आते हैं ।

सदल मिश्र ग्रंथावली में इनका प्रयोग भरपूर हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने संस्कृत के भारी-भरकम विशेषणों को स्पष्ट करने के लिए अथवा कोई चित्र उपस्थित करने के उद्देश्य से इन विशेषणों का प्रयोग किया है। नीचे पहले वर्तमानकालिक कृदन्त विशेषणों के, और उसके बाद भूतकालिक कृदन्त विशेषणों के उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं :-

वर्तमानकालिक कृदन्त

(१) **फिरते फिरते** - दैव योग से **फिरते फिरते** एक मुनि वहाँ जा निकले (पृ० १३)

(२) **रोती हुई- रोती हुई** मुझको देख 'बेटी' कह अपने आश्रम पर ले जा पालने लगी (पृ० १३)

(३) **विकलती हुई** -लवकुश को संग लिये बाल्मीकि मुनि के साथ हो लाज से नीचे सिर किये दोनों कर जोरे कुछ एक **विकलती हुई** सीता भी सभी में आ पहुँची।

(४) **हाय हाय करते**-सुनते ही आस पास के मुनि सब **हाय-हाय करते** दौड़ आये (पृ० १७)

(५) **पीतांबर पहने नीचे दृष्टि किये** - देवता सब आन पहुँचे ओ हर्षित होकर प्रजा लोग भी आये तब **पीतांबर पहने नीचे दृष्टि किये** सीता उठ खड़ी हुई (पृ० १९६)

भूतकालिक कृदन्त

(१) **सोने का सा बनाया-** देखती क्या है कि एक कमल का फूल **सोने का सा बनाया**

(२) **कुश से लपेटा हुआ-** महा सुगंध, **कुश से लपेटा हुआ** बहा चला आता है (पृ० ८)

(३) **फूली फली** - वह कहते ही पृथ्वी में गिर पड़ी जैसे कोई **फूली फली** लता पेड़ से नीचे गिर पड़े (पृ० ८)

(४) **बना हुआ-** तब तपस्वी ने तुरंत किसी वन में, कि जहां घने घने पेड़ों पर लता पसर रही थी, उनके नीचे कोठरी सा **बना हुआ** एक स्थान बता दिया (पृ० ८)

(५) **एक ही हाथ उठाये एक ही चरण से खड़े-** कितने एक तो नीचे माथ ऊपर पाँव किए, और कितने **एक ही चरण से खड़े,** कोई दोनों, कोई **एक ही हाथ उठाये** वहां आन पहुँचे।

(७) **अंधे हुए-** माया से **अंधे हुए** लोगन को मनुष्य से लगते हैं (पृ० ३६)

(८) **विछुरी हुई-** और **विछुरी हुई** हिरनी के समान चारों ओर देखने लगी (पृ० ९)

इसके अतिरिक्त ऐसे वर्तमानकालिक एवं भूतकालिक कृदन्त के कितने उदाहरण है, जो संस्कृत के तत्सम रूप हैं और उनका प्रयोग संस्कृत के नियमानुसार पुँलिंग-स्त्रीलिंग एवं तिर्यक- बहुवचन (नों) में न होकर सिर्फ पुँलिंग ऋजु एकवचन में ही हुआ है :-

सुशोभित - वहाँ हंस सारसों से **सुशोभित** ऐसा कोई सरोवर देखा। (पृ० ५०)

शोभायमान- बड़ी अटारिन से इन्द्र पुरी समान **शोभायमान** नगर कलकत्ता- (पृ० ५)

(वर्तमान कालिक)

विकसित हुलसित-हे पुत्रों तुम्हारा **विकसित** मुख देख बहुत मैं **हुलसित** भया (पृ० ५०)

निषिद्ध -निषिद्ध प्रतिग्रह भोजन कुवाच्य इनमें जो पातक होता, उसे रामगीता ही गाजती है। (पृ०३५)

आकारांत गुणवाचक विशेषण में कुछ विशेषण ऐसे भी हैं, जो हारा एवं वाला प्रत्यय लगाकर बने हैं, जैसे :-

उपजाने वाला - जिसकी कुल **उपजाने वाला** पुत्र होता है। (पृ० ६)
लिखने वाले- पुण्य पाप **लिखने वाले** चित्रगुप्त (पृ० १९)
दूषन देने हारा-नाश करनिहारा- आपकी कन्या को बिना संसर्ग के गर्भ भया है, सो वह कुल का **दूषण देने हारा** और कीर्ति को **नाश करनिहारा** है। (पृ० ९)
विनाशन हारा -सकल दया धर्म **विनाशन हारा** वही है । (पृ० ६४)
विनाशन हारी- सबको **विनाशन हारी** कैकेयी राक्षसिनी उत्पन्न हुई है ।(पृ० ६७)
मारन हारे - बाली को **मारन हारे** रामचन्द्र ने सहज में तुम्हें राज दिला दिया (पृ० ११६)

इसी क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि स०मि०ग्रं० से ४ जहाँ 'वाला' एवं 'हारा' प्रत्ययों से युक्त रूपांतरशील विशेषण उपलब्ध हुए है वहीं 'हार' प्रत्यय से युक्त ऐसे विशेषण भी मिले हैं जो रूपांतर रहित हैं, जैसे :-

कहनिहार- इतने बीच सभा में बैठे हुए प्रकट उचित **कहनिहार** ऋषि लोग शास्त्र विचार के बोल उठे। (पृ० २१)

जाननिहार-वेद शास्त्रन सार का **जाननिहार** (पृ० ३३)

इनके अतिरिक्त स०मि०ग्रं० में

उतारनहार (पृ० ४२), **करनहारी** (पृ० ३७), **पापहरन** (पृ० ३६), **विनाशनहारा** (पृ० ३८), **पढ़नहारे** (पृ० ४५), **छोड़ावनहारी** (पृ० ११२) आदि विशेषणों का प्रयोग मिला है।

गुणवाचक विशेषणों की खोज की दृष्टि से 'प्रेमसागर' की स्थिति पर्याप्त भिन्न है। 'प्रेमसागर' में कथा चलती रहती है।

हम अनुवाद के प्रसंग में कहा गया है कि 'प्रेमसागर' अनूदित ग्रंथ नहीं है और उक्त ग्रंथ की रचना पं० चतुर्भुज मिश्र की ब्रजभाषा पद्य (दोहे, चौपाइयों) में रचित ग्रंथ के आधार पर की गयी है। फलस्वरूप उसमें प्रयुक्त विशेषणों की संख्या 'नासिकेतोपाख्यान' या 'रामचरित' की तुलना में कम संस्कृत निष्ठ (तत्समयुक्त) हैं। यों प्रेमसागर में रूपांतरशील एवं रूपांतररहित दोनों प्रकार के विशेषणों का प्रयोग पर्याप्त संख्या में मिलता है।

२.संख्यावाचक विशेषण

(परिमाण वाचक सहित)

इस विशेषण के अंतर्गत भी गुणवाचक विशेषण के अनुसार (१) रूपांतरशील आकारांत एवं (२) रूपांतररहित (आकारांत से भिन्न) विशेषण दो वर्ग बनाये जा सकते हैं। स०मि०ग्रं० में प्रयुक्त क्रमवाचक, आवृत्ति वाचक, अपूर्णांक गणनावाचक तथा आवृत्तिवाचक अनिश्चित संख्यावाचक विशेषणों का अध्ययन इन्हीं दोनों वर्गों के अतंर्गत करना सुविधाजनक एवं उपयुक्त प्रतीत होता है।

(क) क्रमवाचक विशेषण रूपांतरशील हैं, और आकारांत होने के नाते इनका तिर्यक् रूप भी होता है -

पहिले- **पहिले** मास में तो उस कन्या की कुछ अधिक सादेह में रूप उपजा- (पृ० ८)

दूसरे- **दूसरे** (माह) में गर्भ का लक्षण जानने में आया। (पृ० ८)

तीसरे- **तीसरे** (माह) में पियरा मुँह हो गया। (पृ० ८)

चौथे- **चौथे** में अलग अलग होने लगे। (पृ० ८)

इसी प्रकार पाँचवें एवं छठवें शब्दों का प्रयोग मिलता। (पृ० ८)

नवाँ - जब **नवाँ** महीन बीता (पृ० ८)

दशवाँ- जब **दशवाँ** मास आन पहुँचा (पृ० ४१)

लेकिन तिथियों के विषय में जो प्रयोग मिलते है, वे परम्परानुसार हैं, जैसे-

इगान्हवाँ- (ग्यारहवाँ)जब **इगान्हवाँ** दिन पहुँचा (पृ० ७८)

पन्दरहवें - भरत ने राम से कहा, चौदह वर्ष के बीते **पन्दरहवें** के पहले दिन में जो न तुम आओगे तो आग लगा मैं जल मरूँगा।

इसके अतिरिक्त अपूर्णांक वाचक विशेषण के लिए **'दशांश'** शब्द का प्रयोग नीचे लिखे प्रसंग में मिलता है।

तेज का **दशांश** भी (पृ० १९)

पूर्णांक गणना बोधक विशेषणों के जो प्रयोग मिलते हैं उनमें 'एक' शब्द के साथ कारक प्रत्यय या निपात के योग से संबंधित विभिन्न अर्थ प्रकट होते हैं-

एक ही- **एक ही** अँगूठा पर उठाकर दशयोजन फेंका (पृ० ११४)

एक से एक- जो देश देश से **एक से एक** गुणी जन आय आय अपने अपने गुण का सुफल करि.....मगन होते हैं (पृ० ५)

एक दिन- **एक दिन** स्नान पूजा करि (पृ० ५)

एक भी- **एक भी** केश काला नहीं (पृ० ६)

कितने एक- **कितने एक** दिन पीछे मोह से अचेत ही देखने के लिए फिर मैं गंगा तीर पर गयी (पृ० १४)

कैक (कई एक)- **कैक** वर्ष बीत गये (पृ० १९८)

दो एक - **दो एक** दिन तक उस बात को छिपाए रही (पृ० ९)

एक दूसरे- **एक दूसरे** स्थान में जाया चाहती हूँ (पृ० १०)

एक एक- **एक एक** ऐसा बना है कि खडग की धार हो- (पृ० २०)

इसी क्रम में दो, तीन, चार एवं अन्य पूर्णांक संख्याओं का प्रयोग मिलता है-

चार- मैं **चार** स्वरूप हो कौशिल्या आदि विनकी स्त्रियों के गर्भ से अवतार ले उनका पुत्र कहाऊँगा (पृ० ४०)

चहुँ- **चहुँ** दिशि वर्ण वर्ण के ध्वाजा पताका खड़ा कर (पृ० ५६)

नवमी- तब चैत सुदि **नवमी** के पुनर्वसु नक्षत्र (पृ० ४१)

इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि -

(ख) स॰मि॰ग्रं॰ में **आवृत्तिवाचक विशेषण** भी मिलते हैं, लेकिन उनकी संख्या कम है :-

दो गुणा- इसका पलटा **दो गुणा** मैं दूँगा (पृ॰ ५९)
चौगुनी- देखते ही हर्ष से **चौगुनी** भई वा झट उसे गोद में उठ बार बार मुँह चूमने लगी। (पृ॰ १२)

स॰मि॰ग्रं॰ (सदल मिश्र ग्रंथावली) में अध्यायों की संख्या या गणना संस्कृत में ही है, जैसे इति श्री रामचरित्रे बालकाण्डे प्रथमोध्याय: (पृ॰ ३५), पंचमोध्याय: (पृ॰ ४३), सप्तमोध्याय: (पृ॰ ४८)। इसी प्रकार सभी काण्डों में अध्यायों की संख्या दी गयी है।

(ग) अपूर्णांक बोधक एवं **गणनावाचक विशेषणों** के प्रयोग के उदाहरण इस प्रकार हैं :-

अधमुआ- तुम्हारे हाथ से **अधमुआ** होकर वह भाग गया। (पृ॰ ११३)
आधा के आधा- पारवती वो **आधा के आधा** मैं जानता हूँ । (पृ॰ ३५)
आधों आध- कौशिल्या व कैकेयी को **आधों आध** खीर बांट दी । (पृ॰ ४०)
आधी-आधी -सुमित्रा भी वहाँ पहुँची तो राजा के हाथ पकर अपना अंश मांगने लगीं (अंश-भाग) निदान अपने -अपने भाग में से **आधी-आधी** हविष्य प्रसन्न हो कौशिल्या ओ कैकेयी ने सुमित्रा को दी। (पृ॰ ४०)
चौथाई - (क) रावण की **चौथाई** सेना हम मार आये हैं । (पृ॰ १४५)
(ख) उसकी **सैचाई** भी रूप किसी को नहीं (पृ॰ १४५)

'आधा' शब्द के रूपांतरशील तथा 'चौथाई' शब्द के रूपांतररहित होने की बात ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है।

दो- सुमित्रा के जोड़ही **दो** बालक हुए । (पृ॰ ४२)
दो-दो- राम के संग लक्ष्मण भरत के साथ शत्रुघ्न **दो-दो** इकट्ठे हो खेलने लगे। (पृ॰ ४२)
तीन- **तीन** बेर पा (पृ॰ ३४)

इसी तरह चौदह एवं सोरह आदि पूर्णांकों का प्रयोग मिलता है-

चौदह- सत्यवादी पिता ने भरत को राज्य औ मुझको **चौदह** वर्ष का बनवास दिया । (पृ॰ ६५)

सोरह- **सोरह** कन्या नाना मंगलचार करें (पृ॰ ५६)

दश, बीश तीश,अशी, नब्बे- बार सब लगे अपना-अपना वल सुनाने तो कोई कोई बोला **दश** योजन सागर मैं हेल शकता हूँ- औ किसी ने कहा **बीश** किसी ने कहा **तीश**, इस प्रकार- **अशी** तलक सब आये **नब्बे** योजन तक हेलने का सामर्थ्य है। (पृ॰ १३०)
शौ- रामचन्द्र लगे हनुमान को सराहने कि **शौ** योजन सागर को लांघ सकता (पृ॰१४५)

शौ से अधिक की संख्या बताने वाले शब्दों को सूची इस प्रकार है :-

चार सौ - चार सौ कोस लंबी चौड़ी (पृ॰ २०)

सहस्त्र- सहस्त्र भाग हो जायँ (पृ॰ ४७)

छियालीस सहस्त्र -छियालीस सहस्त्र बरनि बीते (पृ॰ ६)

(ष) **समुदायवाचक-** संख्यावाची विशेषणों के प्रयोग पर्याप्त रूप में उपलब्ध हुए हैं-

दोनों- वर कन्या **दोनों** को पटम्बर व गले में हीरा पहनाया (पृ॰-१५)

तीनों - (क) **तीनों** रानी गर्भ से हों- (पृ॰ ४१)

(ख) **तीनों** भुवन के नायक (पृ॰ ४१)

(ग) कीर्ति **तीनों** लोक में प्रसिद्ध हैं, (पृ॰ ४१)

त्रिभुवन- वैसी **त्रिभुवन** में ढूँढ़ों तो न मिले- (पृ॰ ८)

चारों - देखते ही चकित हो **चारों** दिशा बितौने लगें - (पृ॰ ११)

चारों द्वारों में कवाड़ लगाके नगर की चौकी जा करते हैं (पृ॰ ११५)

पाँचों-पाँचों ग्रह ऊँच स्थान में थे (पृ॰ ४१)

सातों - विन **सातों** पेड़न को काटे फिर वह वाण आकर राम की तृणी में पैठ गया (पृ॰ १११)

सोरहों -सोरहों सिंगार (पृ॰ ७)

(ध्यातव्य है कि षट् का प्रयोग 'षट् रस' में मिलता है) (पृ॰ ७)

सैकरों - मैं **सैकरों** प्रणाम करता हूँ। (पृ॰ ४८)

सैकड़न -सैकड़न बाघ सिंह झुक पड़ते हैं। (पृ॰ २०)

सहस्त्रन- स्वर्ग मर्त्य पाताल में जा **सहस्त्रन** वर्ष दारुण तप करो। (पृ॰ १९४)

इस प्रकार 'लाखौं' एवं 'कोटिन' का प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है।

(ङ) **अनिश्चित संख्यावाचक एवं परिमाणमवाचक-**

कितनी- कितनी गाती थी, **कितनी** बजाती, **कितनी** नाना भाँति कुतूहल करती थीं। (पृ॰ ७)
अनगिनत-अनगिनत रुपैया ब्राह्मणों को दान दिया (पृ॰ १५)
नाना- नाना भावना किया करते हैं (पृ॰ १९४)
तनिक- तनिक चिंता तम करो (पृ॰ ४०)
सकल- सकल राजान से पूजित शिव (पृ॰ ४९)

कुल, सब, बहुत, कुछ, जितनी, - आदि शब्दों का प्रयोग भी नीचे लिखे रूप में मिलता है-
सब- कैकयी ने जो राजा से वर मांगा और कड़ुआ वचन कहा सो **सब** देवतों की करतूति समझों (पृ॰ ८३)
कुल- कुल परिवार सहित रावण को मार विध्वंस तुरत रामचन्द्र लौटेंगे -(पृ ८३)
बहुत- इसमें इनको **बहुत** दुख होता है (पृ॰ ८४)

३. सार्वनामिक विशेषण

सार्वनामिक विशेषण विशेष्य के लिंग से प्रभावित नहीं होते। इसका कारण यह है कि हिन्दी सर्वनाम स्वयं लिंग भेद से मुक्त हैं, लेकिन एक बात है कि ये विशेषण अपने विशेष्य के वचन एवं कारक से प्रभावित होते। ऐसी स्थिति में सार्वनामिक विशेषण, विशेष्य की ऋजु या तिर्यक् अवस्था के अनुसार ऋजु या तिर्यक् रूप धारण कर लेते हैं। सर्वनाम है:- **'मैं' 'तू' 'वह' 'यह' 'कोई', 'जो' 'कौन'**

इस संदर्भ में यह भी ध्यातव्य है कि 'मैं', 'तू', 'कोई', 'को', छोड़कर शेष जब सर्वनाम के रूप में प्रयुक्त होते हैं, तो उस समय उनका रूपग्रमिक गठन उनके सार्वनामिक गठन से भिन्न होता है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त कुछ सार्वनामिक विशेषणों के उद्धरण नीचे लिखे अनुसार हैं:-

जो- जो प्राणी इस द्वार से जाता है (पृ॰ २०)
यह- यह तपस्या अकारथ होगी (पृ॰ ६)
कोई- सफेद **कोई** देवी है (पृ॰ ६)
यही- यही बात काना कानी हो रही है (पृ॰ ९)
वुस(उस)- वुस दासी सहित कैकयी वहाँ से कोप भावन में गई (पृ॰ ५९)
इस- इस वन के देवता (पृ॰ ११)
उस- उस बात को छिपाए रही (पृ॰ ५)
ऐसे- ऐसे उद्दालक मुनि बोले (पृ॰ ५)
जैसा-वैसा- जैसा कुछ चाहिए, **वैसा** आदर भाव कर (पृ॰ ५)
ये- ये सब गढ़ के द्वार पर खड़े हों (पृ॰ ५६)
इन - सो इन कुशों पर पति सहित कहूँ पैढ़ी होगी (पृ॰ ८०)
मुझ- मुझ सी अभागी कौन है (पृ॰ १०)
इस -इस पोथी के भाषा करने का कारण यिह है (पृ॰ ३३)
वह-सुग्रीव ने राम का हाथ पकड़ लिया औ पहार के पास जहाँ **वह** माथ पड़ा हुआ था, वहाँ उन्हें ले जाकर शिर को देषा दिया। (पृ॰ १११)
इन- सीता को यह समय कहा है जो **इन** रण्डियों के साथ हुलसें (पृ॰ १३३)
ये, तिन(उन)- तिनके राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न **ये** चार पुत्र कैसे हैं कि देवता समान औ लोक में विख्यात औ एक से एक सुलक्षण **तिन** चारों में जेठ रामचन्द्र हैं (पृ॰ १३६)
मुज (मुझ) - **मुज** से संसारिकन को तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है (पृ॰ ५५)

सार्वनामिक विशेषण के रूप में प्रयुक्त 'यह' 'ये', 'वह', 'इस', 'उस', 'इन', 'तिन', 'यही', 'वुस' , 'मुज', 'ऐसे', 'जैसा', 'तिन', आदि शब्दों से यह स्पष्ट है कि उस समय प्रयुक्त 'तिन', 'वुस' आदि को छोड़कर बाकी सभी शब्द आगे चलकर परिनिष्ठित हिन्दी में स्वीकृत हो गये। इस समय परिनिष्ठित हिन्दी में स्वीकृत हो गये। इस समय परिनिष्ठित हिन्दी में प्रयुक्त 'इन्हीं' 'उन्हीं', एवं किन्ही आदि शब्दों के प्रयोग स॰मि॰ग्रं॰ में नहीं प्राप्त हो सके हैं।

विशेषण (विशेष्य के रूप में)

विशेषण संज्ञाओं के रूप में प्रयुक्त होने पर विशेष्य कहलाते हैं। संज्ञा बन जाने पर विशेषण के साथ कारक प्रत्यय का भी प्रयोग होने लगता है और ऐसी स्थिति में उनमें रूपग्रामिक परिवर्तन हो जाते

हैं। ये परिवर्तन संज्ञा के व्यंजनांत, अकारांत एवं ईकारान्त (स्त्रीलिंग शब्दों के अनुसार ही होते हैं। अधिकतर गुणवाचक विशेषण हो संज्ञा रूप में प्रयुक्त होते हैं, लेकिन कभी कभी संख्यावाचक विशेषण भी इस रूप में प्रयुक्त होते हैं।

ऊपर उल्लिखित दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर स०मि०ग्रं० में तथा कथित विशेष्यों की रूपतालिका इस प्रकार है :-

पुँल्लिंग संज्ञा 'बड़ा' की रूपतालिका -

	मूलरूपिम	**एकवचन**	**बहुवचन**	**रूपग्रामिक**	**विश्लेषण**
ऋजु	बड़	बड़ा	बड़े	आ	ए
तिर्यक्	बड़	बड़े	बड़ों	ए	औ
संबोधन	,,	,,	बड़ी	ए	ओ

प्रयोग - **बड़े-** छोटे का नाम लव और **बड़े** का कुश- (पृ० १९४)
बड़ों -बड़ों के आगे छोटों का मरण (पृ० ७)

पुँल्लिंग विशेषण के रूप और विशेष्य के रूप में तिर्यक् बहुवचन में अंतर होता है और वह अंतर यह होता है कि विशेषण में 'ए' आवद्ध रूपिम ही लगता है, जबकि विशेष्य में 'ओं' आवद्ध रूपिम

व्यंजनांत-पुँल्लिंग विशेषण 'शठ्' की रूप तालिका-

	मूलरूपिम	**एकवचन**	**बहुवचन**	**रूपग्रामिक**	**विशेषण**
				एकवचन	बहुवचन
ऋजु	शठ्	शठ	शठ्	१	०
तिर्यक	शठ	शठ	शठों	०	ओं
संबोधन	,,	,,	शठो		ओ

बहुतेरन्ह- **बहुतेरन्ह** शोकरों में बंध (पृ० २२)

क्रिया

(अध्याय - दस)

वाक्य में सबसे मत्त्वपूर्ण तत्त्व दो ही होते हैं -- (१) नाम और (२) आख्यात। 'नाम' के अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम एवं विशेषण का अध्ययन करने के पश्चात् दूसरा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व 'क्रिया' के अन्तर्गत सदल मिश्र ग्रंथावली में उपलब्ध शब्दों का अध्ययन इस शोध कार्य का अपरिहार्य अंग माना जायगा।

"जिस विकारी शब्द के प्रयोग से हम किसी वस्तु के विषय में कुछ विधान करते हैं, उसे **क्रिया** कहते हैं।" ①

हिन्दी क्रिया के सामान्य रूप से 'ना' प्रत्यय हटाने पर शेष अंश 'धातु' कहलाता है क्रिया से लिंग,वचन, पुरुष, काल और अर्थ की अभिव्यक्ति होती है।

हिन्दी की क्रियाओं में दो लिंग - पुँल्लिंग-स्त्रीलिंग, दो वचन- एकवचन, बहुवचन, तीन पुरुष- उत्तम, मध्यम अन्य, तीन काल- वर्तमान, भूत, भविष्यत् , पाँच अर्थ- निश्चयार्थ, संभावनार्थ, सदेहार्थ, आज्ञार्थ और संकेतार्थ, तीन वाच्य- कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य होते हैं। सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त क्रिया-पदों का अध्ययन इन्ही शीर्षकों के अन्तर्गत किया जायगा :- इम सबसे पहले 'धातु' के (१) मूल (२) यौगिक । (१) मूल धातु वह है जो किसी अन्य शब्द की सहायता से न बनी हो। (२) यौगिक धातु वह है जो अन्य शब्दों या प्रत्ययों की सहायता से बनी हो।

यौगिक धातुएँ चार प्रकार की होती हैं:-

(१) प्रेरणार्थक (२) संयुक्त (३) नामधातु (४) अनुकरणात्मक ।

सदल मिश्र ग्रंथावली के तथा अन्य समकालीन कृतियों में प्रयुक्त धातुओं का अध्ययन करते समय हमें इस बात का ध्यान रखना है कि तत्कालीन लेखक क्रियापदों के चयन में किन स्त्रोतों का सहारा ले रहे थे। उस समय के गद्य लेखकों में श्री लल्लू जी लाल को उनकी रचना 'प्रेमसागर' के प्रकाशित एवं प्रचलित होने से पर्याप्त ख्याति मिली। इसी प्रकार ईसाई मिशनरियों के प्रयास से बाइबिल की अनूदित कृतियों के विषय में भी यह अनुमान है कि वे बहुत दिनों तक हिन्दी, उर्दू एवं हिन्दुस्तानी के उलझन में पड़े रहे। तत्कालीन एकमात्र लेखक पं० सदल मिश्र ऐसे थे, जो संस्कृत के विद्वान थे तथा जनता के बीच लगातार कथावाचन के अनुभव के बल पर जनभाषा से भलीभाँति परिचित थे। पूर्ण प्रमाणित तथ्यों

---

① पं० कामता प्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण, पृष्ठ १४१

के अनुसार श्री लल्लू लाल के विषय में कहा गया कि वे संस्कृत के विद्वान् नहीं थे उनकी कोई भी रचना मौलिक नहीं है। उनकी दो -एक रचनाओं के पूर्णत: उर्दू-फारसी की अनुकृति पर होने से यह प्रमाणित है कि वे उर्दू -फारसी के जानकार थे और आगरा के निवासी होने के नाते ब्रजभाषा से लगाव था ही।

ऊपर की पंक्तियों में प्रस्तुत विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त लेखकों में भारतीय परम्परा की भाषा संस्कृत एवं जनता में प्रचलित बोलचाल की भाषा के जानकार पं० सदल मिश्र के प्रयत्नों के अध्ययन से ही हिन्दी गद्य के वर्तमान स्वरूप के आधारभूत तत्त्वों का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस दृष्टि से सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त मूल एवं यौगिक धातुओं का विश्लेषण बड़ा ही महत्त्व रखता है। सदल मिश्र बिहार के निवासी थे उनका बचपन बिहार में बीता था। लेकिन उनके अध्ययन का केन्द्र काशी रहा और जैसे कि उनके जीवन-परिचय से स्पष्ट है, उन्होंने अपनी युवावस्था का कुछ समय पटना में तथा अधिकांश समय कलकत्ते में बिताया। फलत: उनकी भाषा पर काशी से कलकत्ते तक बोली जानेवाली बोलियों एवं भाषाओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। संस्कृत के अध्ययन से उसकी मूल धातुओं के सहारे नये क्रियापदों की रचना भी उनकी सुविधा एवं व्यावहारिकता मानी जा सकती है अत: सदल मिश्र के "नासिकेतोपाख्यान" एवं "रामचरित" के अनुवाद को अधिकांश तद्भव तथा देशी बोली की हैं।

मूल धातुएँ

संस्कृत	**तद्भव**	**देशी**
हर्ष (हरषानी) पृष्ठ ५	कर (करहि) पृ० ५	मूँद् (मूँदते हुए) पृष्ठ ५०३
शोध् (सोधें) "	पुकार् (पुकारे) "	
हर (हरने) "	देख् (देखें) "	
	रख् (रख्या) "	
पूज् (पूजने) पृष्ठ २०३	पूछ् (पूछा) पृष्ठ ५	हेल् पृष्ठ २६
हन् (हनना)	कह (कहने)	काँव पृष्ठ ९
	सुन् (सुनना) पृष्ठ २०३	
	जा (जाता) "	

सदल मिश्र ग्रंथावली के 'रामचरित' के प्रथम पृष्ठ ५ एवं अंतिम पृष्ठ २०३ में प्रयुक्त प्रमुख मूल धातुओं की ऊपर की सूची से यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त ग्रंथ की रचना-प्रक्रिया में अधिकांश मूल धाताएँ 'तद्भव' हैं तथा कुछ संस्कृत से ज्यों-की-त्यों अर्थात् तत्सम रूप में अपनायी गयी हैं। देशी बोली में प्रयुक्त एक धातु 'मूँद' ही मिली जो इस प्रकार प्रयुक्त है-- "इस भाँति विधाता की बहुत प्रार्थना सुन सकल देवतान के देषते ही ओ अपने तेज से विनकी 'आँषे' मूँदते हुए श्री रामचन्द्र तुरंत चतुर्भुज बन गये।" (पृष्ठ२०३)

यद्यपि सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त देशी धातुओं की संख्या अनुपातत: अधिक नहीं है,फिर भी

जैसा कि ऊपर बताया गया है, अभिव्यक्ति की सुविधा के लिए इनका प्रयोग काफी हुआ है। ऐसी कुछ धातुओं की सूची एवं प्रयोग इस प्रकार है:-

१ - हेल् (हेलना) नदी पार करना -	बहुत स्थान में पाला है पड़ता, जिनके हेलने से महा एक आफत आन पहुँचती है (पृष्ठ २६)
२- धीप् (धीपना) गर्म होना -	एक कोस तक बालू है धीपता (पृष्ट२६)
३- आव् (आवना) आना -	आवने का प्रयोजन कहो (पृष्ठ ५)
४- कांद् (कांदना) (रोना) (क्रन्दन)	यह तो अनाथ स्त्री कोई कांदती है (पृष्ठ ९)
५- गाज् (गाजना) मौज करना-	राम-- पंचवटी में सूर्पनखा के कान-नाक काट निडर होकर गाजता है (पृष्ठ९६)
६- गड़ (ना) चुभना -	ऐसा बाली को वाण मारा कि विसकी छाती में गड़ गया (पृष्ठ ११४)
७- नेवत् (नेवतना) (निमंत्रण देना)	राजा व ऋषिओं को नेवत बोलाया (पृष्ठ १५)
८- जुड् (जुड़ाना) संतुष्ट होना-	ऋषि लोग बहुत जुड़ाने (पृ॰ १६४)
९- रगेद् (रगेदना) दौड़ाना -पीछा करना-	तब बली ने उसे रगेदा (पृ॰ ११०)

भोजपुरी की कुछ ऐसी धातुओं का भी प्रयोग मिलता है, जो 'चुराना' बुलाना, एवं छुड़ाना- क्रियाओं के आरम्भ के 'उ' स्वर का 'ओ' में बदल कर बनी हैं, जैसे --

चोर् + आ (चोराना) -	मेरी भार्या को चोरा ले गया है (पृ॰ ११९)
छोड़ + आ (छोड़ाना) (छुड़ाना)-	अहल्या को देष नमस्कार कर चरण से उसे छू श्राप से छोड़ाया (पृ॰ ४९)
बोल् + आ (बोलाना) बुलाना -	माँ से बोला-कि पिता हमारे आये हैं, तुम्हें बुलाते हैं (पृ॰ १३)

मूल 'आ', 'गा', 'जी' एंव प्रेरणार्थक ठहराना, फिराना एवं बताना, धातुओं के अन्त में 'व' ध्वनि का आगमन हो गया है -- जैसे - आवते (पृ॰ ५), सुनावते (पृ॰ ५७), भावते (पृ॰ ७८), गावता (पृ॰ ३५), जीवती है (पृ॰ १७५), बतावती (पृ॰ १५३), फिरावने (पृ॰ १४२) आदि प्रयोग सदल मिश्र ग्रंथावली में उपलब्ध होते हैं।

१. प्रेरणार्थक धातुएँ

प्रेरणार्थक धातुएँ द्विकर्तृक होती हैं,- एक मुख्य कर्ता, दूसरा गौण कर्ता। कार्य करनेवाला कर्ता मुख्य

और उसे प्रेरित करनेवाला कर्ता गौण कहलाता है। सभी प्रेरणार्थक क्रियाएँ द्विकर्तृक होती हैं, लेकिन सभी द्विकर्मक नहीं होतीं। अकर्मक क्रियाएँ भी प्रेरणार्थक रूप मे सकर्मक बन जाती हैं।

'आ' से बनी कुछ प्रेरणार्थक क्रियाएँ-

अ-आ=	निकालना	- पिता ने देश निकाल दिया (पृ० १०)
	समझना	- आप दया कर समझाइये (पृ० ३३)
	सुनाना	- हरि का यश आप हमें सुनाइये (पृ०३३)
	टकसाना	- टकसाये नहीं टकसता (पृ० ४६)
	खनाना	- तलाव इन्दरा आदि खनावे (पृ० १११)
	कराना	- मेरा अपराध तुम उनसे क्षमा कराइयो (पृ० १४४)
	जनाना (बताना)	- चिन्ता न कीजै, मै दूसरे को न जानऊँगा (पृ० ५७)

'आ' से बनी कुछ प्रेरणार्थक क्रियाओं में मूल धातु के आरंभिक 'इ' का (ए) हो जाता है। ऐसे धतुओं की प्रेरणार्थक क्रियाओं के प्रयोग भी मिलते हैं--

जिमना - जेमावना (खिलाना) - ब्राह्मण जेमावते (पृ० ३५)
दिखाना - देखाना - हे राजा, किसी प्रकार उसे मँगाय, राम को देषाओ (पृ० ४९)

'ल' से बनी प्रेरणार्थक क्रियाएँ - पहला प्रेरणार्थक रूप

बिठाना - बिठलाना	आसन पर बिठला यह वचन कहने लगे (पृ०४८)
बिठाना - बैठाना (यह रूप भी मिलता है)	हाथ पकड़ भीतर जे ला सिंहासन पर बैठाय कुशल क्षेम पूछ- (पृ० १४)
सीखना - सिखलाना	लोगों को एक नीति सिखलाते हो (पृ० ५६)

'वा' से - प्रेरणार्थक - दूसरा प्रेरणार्थक रूप

छोड़ना - छुड़ना - छोड़वाना	= झूठ मूट का अपवाद लगा मैं तुमको वन से छोड़वा दूँगा (पृ० १९१)
माँगना - माँगना -मँगवाना	= लक्ष्मण से तुरंत सब सामग्री मँगवायी (पृ० १९३)
उखड़ना - उखाड़ना - उखड़वाना	= तनिक मत डरो लषण का जड़मूल से हम उखड़वा डालते हैं (पृ० १९३)

२. संयुक्त धातुएँ

दो या दो से अधिक धातुओं के मेल से बननेवाली उन क्रियाओं को संयुक्त क्रिया कहते हैं, जिनमें मुख्य क्रिया से जुड़ने वाली सहायक क्रियाएं अपना वाच्यार्थ खो देती हैं और मुख्य क्रिया के अर्थ में विशेष अर्थच्छटा उत्पन्न कर देती हैं। संयुक्त क्रिया का महत्व अभिव्यक्ति की सामर्थ्य की दृष्टि से अद्भुत है।

संयुक्त क्रियाओं में प्राय: पहली क्रिया प्रधान होती है और दूसरी उसके अर्थ में विशेषता उत्पन्न

करनेवाली होती है। कभी-कभी दोनों ही क्रियापद अर्थ की दृष्टि से गौण हो जाते हैं और वाच्यार्थ को छोड़कर किसी नये अर्थ की सृष्टि करते हैं।

सदल मिश्र ग्रंथावली में संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग सफल अभिव्यक्ति की दृष्टि से अधिकतम किया गया है। इनमें से कितनी ही संयुक्त क्रियाएँ अपनी अभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता के कारण मुहावरे का काम कर रही हैं। ये संयुक्त क्रियाएं क्रियार्थक संज्ञा, वर्तमानकालिक कृदन्त, भूतकालिक कृदन्त, पूर्वकालिक कृदन्त, अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त तथा पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्तों के साथ सहायक क्रिया के मेल से बनी हैं तथा बोल-चाल में साधारणतया प्रयुक्त होती हैं। सदल मिश्र ग्रंथावली में इनके प्रयोग के कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं:-

१- (क) आन पहुँचना (अनायास आ जाने के अर्थ में)

सदल मिश्र पंडित आन पहुँचा (पृ॰ ५)

पिप्पलाद मुनि आन पहुँचे (पृ॰ ५)

(ख) जा पहुँचे (शीघ्रता से जाना)

बड़े सिद्ध थे-- इस कारण पहर भर में जा पहुँचे (पृ॰ १३)

२- उठ खड़े भये (स्वागत करना/चल देना)

देखते ही उद्दालक ऋषि उठ खड़े भये (पृ॰ ५)

इस प्रकार प्रार्थना कर उठ खड़ी भई (पृ॰ १०)

३- चली आयी (पहुँचना)

स्नान-पूजा कर हर्षित हो सबके संग अपने मन्दिर में चली आयी (पृ॰ ८)

४- नाचने गाने बजाने लगी

सखी सहेलरे मगन हो हो नाचने गाने बजाने लगीं (पृ॰ १५)

५- दौड़ आये

हाय-हाय करते दौड़ आये (पृ॰ ७९)

६- मारने को चला है (तैयार होना) — हो न हो राम को अकेला जान मारने को चला है (पृ॰ ७९)

७- कह देना (आदेश देना) — निषाद ने कहा - अपने जात भाइयों को कह देंगे कि जितनी नावें हैं तिन्हको खैंच लें (पृ॰ ७९)

८- लेट रहना (आराम करना) — आवभगति कर मीठी-मीठी बातें कह बहन को बुझा समझ सूचित कर (रावण) आय घर के भीतर जा पलँग पर लेट रहा (पृ॰ ९५)

९- बढ़ते ही जाना (निरन्तरता)	तलाब इन्दर आदि खनावे पे संसार का आवागमन विनसे भी नहीं छीजता और भी अधिक बढ़ता ही जाता है (पृ०१११)
१०- जा ढूँढ़ना (पता लगाना)	तुम सब जानकी को जा ढूँढ़ों (पृ० १२३)
११- चला जाना (प्रस्थान)	अच्छा मुँह बाओ, मैं बैठकर फिर तुरन्त चला जाऊँ (पृ० १३१)

ऊपर की संयुक्त क्रियाओं में निहित व्यंग्यार्थो से यह स्पष्ट है कि इनकी अभिव्यक्ति क्षमता निर्विवाद है। ऊपर के अधिकांश उद्धरणों में पूर्व क्रिया ही प्रधान है और उत्तर क्रिया गौण जैसे-- लेट रहना में 'लेटना' बढ़ते ही जाना में 'बढ़ना' एवं कह देना में 'कहना'। लेकिन आन पहुँचा में आना, और चला जाना में 'जाना' प्रधान प्रतीत होता है। इसी क्रम में यह भी ध्यातव्य है कि 'चला जाना' में दोनों ही क्रियाएँ प्रधान अर्थात् अपने अर्थ का महत्त्व सिद्ध करती हैं। आलोच्याधीन ग्रंथावली में प्रयुक्त संयुक्त क्रियाओं की संख्या अनगिनत हैं और उन सबका समूह पं० सदल मिश्र की भाषा को शक्तिशाली एवं मुहांवरेदार प्रमाणित करता है। यही कारण है कि (नासिकेतोपाख्यान) चन्द्रावली एवं रामचरित (अध्यात्म रामायण) अनूदित ग्रंथ होकर भी अपनी शैली के कारण संस्कृत की मूल रचना से अधिक रोचक हो गये हैं। इन्हीं बातों का ध्यान में रखकर संयुक्त क्रिया की क्षमता के संबंध में डॉ० देवेन्द्रनाथ शर्मा ने लिखा है -- "संयुक्त क्रिया में हिन्दी की समृद्धि यहाँ तक बढ़ चुकी है कि वह संस्कृत को तो इस क्षेत्र में पीछे ही छोड़ आयी है, अंग्रजी आदि आधुनिक सुविकसित भाषाओं की भी चुनौती दे रही है।"①

(३) नाम धातु

नाम (संज्ञा,सर्वनाम, विशेषण) से बननेवाली धातुओं से बननेवाली धतुओं को 'नाम धातु' कहते हैं। सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त नाम धातुओं की स्थिति इस प्रकार है :-

भ्रम-भरमाना - नारद जी बोले - लोकाचार की बातों से यूँ मुझको भरमाइये है (पृ० ५८)
लालच-ललचाना = जहाँ इन्द्र आदि देवता भी जाने को ललचाते हैं (पृ० ५)
लहर-लहराना = आग लहराकर ले आये (पृ० ११०)
धिरकार-धिक्कार(धिरकारना) = वह खर के आगे गिर पड़ी और लगी धिरकारने (पृ० ९३)
बात-बतराना = आपस में लगे बतराने (पृ० ९९)
रिस (क्रोध) रिसियाना = रिसियाकर चला आया (पृ० १११)

(४) अनुकरणात्मक धातुएँ

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त कुछ अनुकरणात्मक धातुएँ :-

---

① *हिन्दी भाषा का विकास,* पृ० १७१, डॉ० देवेन्द्र नाथ शर्मा

गर्जन - गरजना = और भी देह में तेज बढ़ाओ लगे गरजने (पृ० १५७)

गरगराना = कड़ाहों में तेल गरगराता रहता है (पृ० २१)

झलक-झलकना = शिर के किरोट मणि सूर्य से झलकते थे (पृ० १५७)

कृदन्त

धातुओं से बननेवाली उपर्युक्त विभिन्न प्रक्रियाओं तथा उनके कारण भाषा में उत्पन्न अभिव्यक्ति-क्षमता के संबंध में विचार करने के प्रसंग में ही क्रिया के उन रूपों का भी अध्ययन करना आवश्यक है, जिनका प्रयोग दूसरे शब्द-भेदों अर्थात् संज्ञा, विशेषण आदि के समान होता है। क्रिया के ये रूप 'कृदन्त' कहलाते हैं। हम रूपान्तरशील एवं रूपान्तररहित विशेषणों के प्रसंग में इन पर विचार कर चुके हैं, इसलिए इस स्थल पर इसका विवेचन मात्र बनावट की दृष्टि से ही किया जायेगा। संस्कृत में कृदन्त प्रत्ययों की शक्ति की परिधि बहुत ही विस्तृत है। सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त कृदन्त शब्द-रूपों का अध्ययन इनके निम्नलिखित भेदों के अन्तर्गत किया जायेगा :-

१- क्रियार्थक संज्ञा

२- वर्तमानकालिक कृदन्त

३- भूतकालिक कृदन्त

४- कर्तृवाचक कृदन्त

५- पूर्वकालिक क्रिया (कृदन्त)

६- तात्कालिक कृदन्त

७- अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त और

८- पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त।

सदल मिश्र ग्रंथावली में क्रियार्थक संज्ञाओं का प्रयोग संज्ञा के रूप में पर्याप्त मिलता है।

१ - क्रियार्थक संज्ञा

होने को = जो बड़े-बड़े देवतान से भी होने को नहीं (पृ० १४६)

लड़ने को = वानरों से लड़ने को सब राक्षस को आज्ञा करो (पृ० १५५)

कहने को = उसका कहने का भला क्या ठेकाना (पृ० ८२)

चलने को = सखा, अब चलने की बेला हो चुकी (पृ० ७०)

क्रियार्थक संज्ञा का निर्माण धातु में ना एवं ने जोड़कर किया गया है। लेकिन सदल मिश्र ग्रंथावली में ऐसे भी क्रिया रूप मिले हैं, जिनमें 'ना' एवं 'ने' जोड़कर भूतकालिक कृदन्त रूप बने हैं,

जैसे

१ 'रिसियाने'-- बानरों को देखते ही लक्ष्मण जी बहुत रिसियाने।

२- घबराने--इस भाँति अंगद की बातें सुन सुग्रीव बहुत घबराने तो मंत्रीन में श्रेष्ठ हनुमान को बुलाकर कहने लगे। (पृ० १२०)

प्रतीत होता है कि यह प्रयोग भी बोलियों के प्रभाव के कारण है। यद्यपि भोजपुरी में भूतकाल में यह कृदन्त रूप नहीं मिलता है, फिर भी पटने में प्रचलित बोलियों में लोग इसका प्रयोग करते हैं।

२- वर्तमानकालिक कृदन्त

इस कृदन्त का प्रयोग विशेषण एवं क्रिया रूपों में मिलता है--

(क) विशेषण

रोती हुई-- रोती हुई मुझको देख (पृ० १३)

गाती बजाती -- गाती बजाती फिरती है (पृ० २९)

(ख) क्रिया

चाहता --- सब चाहते हैं ...

करता है --- जो नित तीन बेर पाठ करता है।

३- भूतकालिक कृदन्त

यह कृदन्त धातु में आ जोड़कर पुँल्लिंग एकवचन -ए जोड़कर पुँल्लिंग बहुवचन एवं ई जोड़कर स्त्रीलिंग बनता है। सदल मिश्र ग्रंथावली में इसका प्रयोग निम्नलिखित रूपों में मिलता है :-

अकारान्त मूल धातु + आ/ए/ई

कह् + आ	= कहा	सीता ने कहा (पृ० ६५)
बोल् + ए	= बोले	रामचन्द्र बोले (पृ० ६५
उपज् + ई	= उपजी	दया ना उपजी (पृ० ११)

आकारान्त/एकारान्त/ओकारान्त धातुओं में धातु + आ, ए, ओ के बाद 'य्' प्रत्यय जोड़ा गया है

बिठलाना - राम ने बिठलाया (पृ० ८२)

इसी प्रकार भूतकालिक कृदन्त के पीछे नीचे लिखे प्रयोगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भूतकालिक कृदन्तों को ग्रहण करने में जनता की बोलचाल की भाषा का सहारा लिया गया है और यही कारण है कि भाषा में प्रवाह आ सका है।

१- चलना - वानर भाग चले (पृ० १६१)

२- मानना- मेरी बात को नहीं माना (पृ० १६१)

३- आना - जो जो राजा यहाँ आये हैं (पृ० १७६)

४- चलना - ज्यों रावण उस द्वीप को चला (पृ० १९०)

५- भेजना - सब महाजनों को बुला भेजा (पृ० १९५)

६- जनना - ये दोनों कुमार सीता के पुत्र हैं, पास ही जने हैं।

७- लाना - आयोध्या में इनको लाया हूँ (पृ० ४९)

८- लेना - यहां ही रहकर हम लोगों को पा लिये (पृ० ६९)

४- कर्तृवाचक कृदन्त

क्रिया के साथ 'वाला' प्रत्यय के प्रयोग सदल मिश्र ग्रंथावली में कम मिलते हैं, लेकिन उसके स्थान पर 'हारा' प्रत्यय के प्रयोग ही पर्याप्त रूप में मिले हैं--

विघ्नकरन हारा = विघ्नकरन हारा को पइन्ह में बड़ा बली है (पृ॰ ६४)

भोगनहार = माया से मोहित नर सुख-दुख भोगनहार मुझे मानुष कर मानते हैं- (पृ॰ ८४)

लेकिन 'वाले' प्रत्यय का प्रयोग विशेषण के रूप में बहुत मिलते हैं-

सिखलानेवाला = मैं लोक सिखलानेवाला हूँ। (पृ॰ १५३)

५- पूर्वकालिक क्रिया (कृदन्त)

इससे किसी कार्य (क्रिया) के पहले किसी दूसरे कार्य (क्रिया) के होने का भाव प्रकट होता है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में 'पूर्वकालिक कृदन्त' का प्रयोग अनगिनत संख्या में मिलता है। प्रेम सागर में भी इसी प्रकार पूर्वकालिक कृदन्त असंख्य रूप में मिलते हैं। सदल मिश्र ग्रंथावली में कभी-कभी एक वाक्य में पाँच-पाँच, छह-छह पूर्वकालिक कृदन्त मिलते हैं--

उदाहरणार्थ -- " आवते ही मुनि चरणों पर गिर पड़े और हाथ पकड़,भीतर लेजा अपने सिंहासन पर बैठाय कुशल क्षेम पूछ गंगा जल ले ऋषि के पाँव पखार चरणोदक लिये।" (पृ॰ १४)

इससे भी अधिक भूतकालिक कृदन्तों से युक्त वाक्यों के उदाहरण मिलते हैं। निम्नलिखित वाक्य में आठ भूतकालिक कृदन्तों का प्रयोग है :-

"देखते ही वे हर्षित उठ खड़े भये वो प्रणाम कर, मिल भेंट, कुशल क्षेम पूछ, आसन दे एक -एक को अलग-अलग बैठा पाँव धुला आचमन करा अक्षत चन्दन ले सबों को पूजने लगे। (पृ॰ १९)

इन कृदन्तों में मुख्य रूप से मूल धातु के साथ 'आ' के जोड़ से कृदन्त रूप सम्पन्न किये गये हैं। लेकिन नीचे जिन भू॰ कृदन्तों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, उनमें अनेक धतुओं में -कर, -हो -के ,-अ,- आय,-इ जोड़कर एवं लेना, देना, क्रियाओं के योग में 'ना' को हटाकर कृदन्त रूप सम्पन्न किये गये हैं।

कर :-	देख **कर** जी में कहा	(पृ॰ १०)
	दया **कर** बोले	(पृ॰ १०)
	घर में सुला **कर**	(पृ॰ ११)
	पानी ला **कर**	(पृ॰ १२)
	अहार **कर** रहो	(पृ॰ १३)
हो :-	चकित **हो** निदान पूछा	(पृ॰१०)
	आतुर **हो** रोती है	(पृ॰ १०)
	कृतार्थ **हो** क्रिया में अति सावधान **हो** गये	(पृ॰ ११)

पुत्र के लिए आकुल **हो** वहां से उठ जहाँ तहाँ दौड़ी (पृ० १२)
ऐसे कह उन्हीं के साथ में **हो** कौशल्या के घर में गये (रामचरित)

के :- ऐसा उसका मधुर वचन सुन **के** ऋषि दया कर बोले (पृ० १०)

अ :- कुशल क्षेम **पूछ**, ऋषि का पैर पखार चरणोदक लिये (पृ० १४)
ऐसे कह धन **छोड़** ('कर' लुप्त है) (पृ० १६)
हाथ **जोड़**, आँख **मूँद** (पृ० ११)

आय :- पानी **लाय** बाहर भीतर लीप पोत (पृ० १२)
तब सिर **नवाय** (पृ० १७)
नाना भूषण **पहिराय** वेद की विधि से कुलीन वर को जो कन्या देते हैं। (पृ० २४)

इ :- सखी सहेली--- समाचार **सुनि** बहुत जुड़ाई (पृ० १५)

तब सिर नवाय प्रणाम **कहि** हाथ जोर लगे धर्मराज की स्तुति करने (पृ० १७)

ले :- बालक गोदी में **ले** मतारी लड़की के घर बैठा (पृ० १५)

दे :- अति प्रसन्न हो मुनि उठ पीठ ठोंक आशीष **दे** बोले (पृ० १६)

'पूर्वकालिक कृदन्त' रूपों के प्रयोग के संबंध में 'प्रेमसागर' में उपलब्ध कुछ उदाहरणों को देखना आवश्यक है।

१- स्नान कर सूर्य को अर्घ, धूप, दीप, नेवेद्य, आगे धर, पूजकर, हाथ जोड़, शिर नवाय, गौरी को मनाय के बोली, (पृ० प्रेमसागर)

२- आक ढाक बड़ कदम्ब कमल के पात लाय, पत्तलें, दोने बनाय, झाड़ बुहार के श्री कृष्ण के चारों ओर पाँति की भाँति बैठे (पृ० २५)

३- वहाँ जाय, सरस्वती नहीं में नहाय नन्द जी ने पुरोहित बुलाय,सबको साथ ले के मन्दिर में जाय शास्त्र की रीति से पूजा की । (पृ० ५७ प्रेमसागर)

४- इतना संदेशा कह प्रभु ने निज वस्त्र आभूषण मुकुट पहिराय अपने रथ पर बैठाय उद्धव जी को वृन्दावन विदा किया (पृ० ८३ प्रेमसागर)

५- राजाओं को साथ ले नगर के बाहर जाय आगौनी कर सबको बागे पहिराय अति आदर मानकर जनमासे लिवाय लाया। आगे उसको खिलाय पिलाय माढे के नीचे लिवाय ले गया। (पृ० १४० प्रेमसागर)

पूर्वकालिक कृदन्तों के ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि जहाँ पं० सदल मिश्र की प्रवृत्ति हिन्दी के निर्माण में योगदान करनेवाली विभिन्न बोलियों एवं क्षेत्रीय भाषाओं के प्रत्ययों एवं शब्दों को ग्रहण करने की है, वहाँ लल्लू जी लाल का ध्यान मात्र ब्रजभाषा के प्रत्ययों, क्रियारूपों एवं शब्दों की ओर है। यही कारण है कि सदल मिश्र ग्रंथावली में कृदन्त प्रत्यय के रूप-निर्माण में " -कर, -हो,-के, -अ, -इ, एवं -आय" छह प्रत्यय जोड़कर विभिन्न शब्द बनाये गये हैं वहाँ प्रेमसागर में लगातार 'आय' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है। पूरा प्रेमसागर 'आय युक्त' पूर्वकालिक कृदन्तों से ही भरा पड़ा है इससे संबंधित अन्य प्रत्ययों की संख्या किसी-किसी वाक्य में एकाध उपलब्ध होती है।

६- तात्कालिक कृदन्त

यह वर्तमानकालिक कृदन्त के 'ता' को 'ते' में बदलकर उसके पश्चात् 'ही' जोड़ने से बनता है। सदल मिश्र ग्रंथावली में निम्नलिखित प्रयोग मिलते हैं :-

जाते ही - जाते ही घास के बोझ पर रखकर तुमको बहा दिया।

आवते ही -उनके **आवते ही** वे उठ खड़े भये (पृ० १९)

सुनते ही - इतना **सुनते ही** अति हर्षित हो सब वानरों ने संपाति को उठाकर सागर तीर ला रष दिया (पृ० १२७)

७-अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त

इसमें और तात्कालिक कृदन्त में इतना ही अन्तर है कि इसमें 'ता' को 'ते' में परिवर्तित तो किया जाता है, लेकिन उसके बाद ही 'नहीं' जोड़ा जाता है। इसके प्रयोग सदल मिश्र ग्रंथावली में नीचे लिखे अनुसार मिलते हैं :-

लाठियों से **मारते पीटते घसीटते** वहाँ चले (पृ० २१)

८-पूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त

इससे मुख्य क्रिया के साथ होनेवाले व्यापार की पूर्णता सूचित होती है। पूर्णकालिक क्रिया से दो प्रकार की संयुक्त क्रियाएँ बनती हैं १- निरन्तरता बोधक २- निश्चय बोधक

सदल मिश्र ग्रंथावली में इनके प्रयोग के उदाहरण नीचे लिखे अनुसार हैं :-

निरन्तरता बोधक :

(१) कुश से **लपेटा हुआ** बहा चला जाता है (पृ० ८)

(२) जो बाली तीनों लोक में एक वीर गिना जाता था (पृ० ११९)

निश्चय बोधक :

राम-राम **पुकारती हुई** एक महासुन्दरी स्त्री को आकाश पथ से होकर कोई राक्षस लिये जाता था (पृ० १०९)

तिङन्त

तिङन्त क्रियाओं की प्रमुख विशेषता यह है कि वे कर्ता या कर्म के पुरुष और वचन से प्रभावित होती हैं, लिंग से नहीं। 'है' तिङन्त क्रिया है और पुरुष-भेद के अनुसार इसका रूप हूँ, हो एवं है में बदल जाता है। सदल मिश्र ग्रंथावली में इसका प्रयोग पर्याप्त रूप में मिलता है:-

१- मैं राज रघु की बेटी हूँ। (पृ० १० चन्द्रावती)

२- चेतनरूप सीता पति को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ (पृ० ३५)

३- (तुम)मेरी दशा देखते हो (पृ० ९५)

४- हाँ एक है ((पृ० ९५)

ऊपर के वाक्यों में 'हूँ', 'हो', 'है' तिङन्त हैं, जबकि 'करता' एवं 'देखते' कृदन्त हैं।

इस प्रकार लिंग से प्रभावित न होनेवाली विधि, आज्ञा, संभावना, आशीर्वाद, प्रार्थना या निमंत्रण आदि अर्थों में प्रयुक्त क्रिया भी तिङन्त होती है, जिसके प्रयोग उक्त ग्रंथ में इस प्रकार हैं :-

१- रघुपति का यह संवाद प्रेम से जो नर सुने सुनावें - (विधि) (पृ० ५५)

२- मेरी आज्ञा से अंगद आदि सकल बानरन को मेरे पास बुला ले आओं (पृ० १४३ आज्ञा)

३- जितने शिर तूने आग में होम किये सो फिर कर जो (ज्यों) के त्यों हो जावें (आशीर्वाद पृ० १८५)

४- आप दयालु हैं, आप प्रसन्न हुजिये (प्रार्थना पृ०१०७)

'कृदन्त' के संबंध में हम लिंग पर विचार करते समय यह देख चुके हैं कि सामान्य भूत, आसन्न भूत, पूर्णभूत एवं संदिग्ध भूत काल में सकर्मक क्रियाएँ किस प्रकार लिंग वचन से प्रभावित होती हैं।

अब हम क्रियाओं के सहायक क्रिया, क्रियार्थक क्रिया एवं समस्त क्रिया, पुररुक्त क्रिया एवं अपूर्ण क्रिया-रूपों पर संक्षेप में विचार करते हुए तथा सदल मिश्र ग्रंथावली में उनके प्रयोग की स्थिति का अध्ययन करते हुए क्रिया के अकर्मक सकर्मक, काल, रचना तथा अर्थ बोधक तथा वाच्य संबंधी विभिन्न रूपों का भी अध्ययन उपर्युक्त संदर्भ में करेंगे।

सहायक क्रिया :- मुख्य क्रिया के सहायक रूप में आकर उसके अर्थ को पूर्णता प्रदान करने-वाली क्रिया को ही सहायक क्रिया कहते हैं, जैसे--

१- बालक जाग उठा (पृ० ११) सदल मिश्र ग्रंथावली

२- एक स्थान बता दिया (पृ० १०)

ऊपर 'उठा और दिया' क्रमशः 'जागना और बताना' क्रिया की पूर्णता में सहायक हैं।

क्रियार्थक क्रिया :- यह क्रिया संस्कृत के तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में (के लिए) प्रयुक्त होती है। सदल मिश्र ग्रंथावली में इसके प्रयोग मिलते हैं, जैसे-- करने जाते हैं--

१- वायु कुमार ओषधि लाने को चले (पृ० १५३)

२- सीता को ढूँढ़ने के लिए वानरन को भेजा (पृ० १४०)

३- तुम्हारे काज में विघ्न करने को आया है (पृ० १५९)

सदल मिश्र ग्रंथावली में क्रियार्थक क्रिया 'करने' या 'लाने' के साथ 'को' का प्रयोग मिलता है और अधिकांश स्थानों में इस क्रिया के साथ 'के लिए' ही मिलता है।

पुनरुक्त क्रिया :- पुनरुक्त क्रिया के अन्तर्गत 'क्रिया युग्म' आते हैं। इसमें या तो पूर्व क्रिया के आंशिक भाग की आवृत्ति या पुररुक्ति होती है या उसी की ध्वनि पर कोई धतु जोड़ दी जाती है। सदल मिश्र ग्रंथावली में इसके प्रयोग इस प्रकार हैं:-

कौशल्या भी दौड़ी तो पग-पग **गिरती पड़ती** हुई कुछ दूर जा राम का हाथ पकड़ लिया (पृ० ४३)

पुनरुक्त क्रिया का दूसरा उदाहरण उसी क्रिया की पुनरुक्ति में होती है--

१- मैं वहाँ ही एक पेड़ तले जा बैठकर लगा जप करने जो **जपते-जपते** बाहर की सब मेरी सुधि भूल गयी (पृ० ७३)

२- मेरी भक्ति बिना शास्त्र **देखते-देखते** सैकड़ों वर्ष बीत गये (पृ० ३८)

समस्त क्रिया :- अभिव्यक्ति को सशक्त करनेवाली 'क्रिया युग्मक' इस क्रिया के अन्तर्गत आते हैं--

१- पर प्रेम से **'डाट-डपट'** नहीं किया (पृ० ४३)

अपूर्ण क्रिया :- है या था -- इसके अन्तर्गत आती हैं। इसमें 'है' तिङन्त है और 'था' कृदन्त। 'है वर्तमान काल का द्योतक है और 'था' भूतकाल का। सदल मिश्र ग्रंथावली में इसका प्रयोग अनगिनत रूप में मिलता है।

अकर्मक-सकर्मक

यह क्रिया का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भेद है। सदल मिश्र ग्रंथावली में इनका भी प्रयोग पर्याप्त रूप में हुआ है--

उजाड़ना - मैंने तुम्हारी बाटिका उजाड़ी। (सकर्मक पृ० १४१)

उठाना - रामचन्द्र ने एक तृण उठा लिया। (सकर्मक पृ० १३८)

लजाना - लक्ष्मण बहुत लजाने (अकर्मक पृ० १२१)

मिलना - रामचन्द्र उनसे मिले (अकर्मक पृ० १२१)

काल रचना

अभी तक हमने क्रिया के उन भेदों पर विचार किया है, जिनके योग से काल, अर्थ एवं वाच्यों की अभिव्यक्ति होती है। इस संदर्भ में हमने सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त क्रिया के इन भेदों के उदाहरणों पर भी विचार किये हैं।

विभिन्न वैयाकरणों ने काल के अन्तर्गत भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीन भेद किये हैं तथा उनके अनेक उपभेद भी किये हैं। उनके अनुसार-- क्रिया के वाच्य, अर्थ, काल, पुरुष, लिंग और रचना के कारण होनेवाले सब रूपों का संग्रह करना काल-रचना कहलाती है।

हिन्दी सोलह काल धातु, वर्तमानकालिक कृदन्त तथा भूतकालिक कृदन्त के योग से बनने की दृष्टि से तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं।

(१) धातु से बने काल

१- संभाव्य भविष्यत् - उं, ए, एं

२- सामान्य भविष्यत् - गा, गे, गो

३- प्रत्यक्ष विधि- ओ/इए/ए/एं
४- परोक्ष विधि - ना/इएगा

(२) वर्तमानकालिक कृदन्त से बने काल
(ता/ते/तो/आ) या (ई/ये)

१- सामान्य संकेतार्थ - (हेतु हेतु भट् भूतकाल) यदि -----तो --------
२- सामान्य वर्तमान - है/हो/हैं
३- अपूर्ण भूत - था/थे/थी
४- संभाव्य वर्तमान - वह -----हो
५- संदिग्ध वर्तमान - होगा/होगी/होंगे
६- अपूर्ण संकेतार्थ - यदि वह ---- ता होता

(३) भूतकालिक कृदन्त से बने हुए काल
(या/ये/यी/आ/ए/ई)

१- सामान्य भूत - वह --- या/ये/यी
२- आसन्न भूत - है/हो/हैं
३- पूर्ण भूत - शायद वह --- हो
४- संदिग्ध भूत - होगा/गे/गी
५- पूर्ण संकेतार्थ - यदि ----होता/ते

ऊपर के वर्गीकरण में काल एवं अर्थ दोनों दृष्टियों से बने क्रिया रूप आ जाते हैं। सदल मिश्र ग्रंथावली के अध्ययन के लिए काल एवं अर्थ की दृष्टियों से इनका अलग-अलग विभाजन किया जायेगा। विभाजन कालों के मामले में सामान्यता, पूर्णता एवं अपूर्णता पर आधारित होगा और 'अर्थ' के मामले में संभाव्यता, संदेहार्थता एवं विध्यर्थ पर आधारित होगा। इस वर्गीकरण के अनुसार काल एवं अर्थ की दृष्टि से उपर्युक्त क्रिया रूपों के अध्ययन का क्रम इस प्रकार होगा :-

१- काल की दृष्टि से

१- वर्तमान काल --- १) सामान्य वर्तमान
२) अपूर्ण वर्तमान
३) पूर्ण वर्तमान (आसन्न भूत)

२- भूत काल- १) सामान्य भूत
२) अपूर्ण भूत
३) पूर्ण भूत

३- भविष्यत् काल - १- सामान्य भविष्यत्

२- अर्थ की दृष्टि से

१- संभावनार्थ - १) संभाव्य वर्तमान
२) संभाव्य भविष्यत्
३) संभाव्य भूत

२- संदेहार्थ - १) संदिग्ध वर्तमान (अपूर्ण)
२) संदिग्ध भूत (पूर्ण)

३- संकेतार्थ - १) सामान्य संकेतार्थ भूतकाल
२) अपूर्ण संकेतार्थ भूतकाल
३) पूर्ण संकेतार्थ भूतकाल
४) संकेतार्थ भविष्यतकाल

४- विध्यर्थक - १) प्रत्यक्ष विधि
२) परोक्ष विधि

काल - सामान्य वर्तमान

वर्तमानकालिक कृदन्त + तिङ्न्त से बने इस काल का रूप पर्याप्त रूप से मिलता है। होना, करना एवं कहना आदि का वर्तमानकालिक कृदन्त खय, होता, करता एवं कहता मिलते हैं, लेकिन जो क्रियाएँ आकारान्त धातुओं (अर्थात् बता एवं चला) वाली हैं, उनके रूप में बतावता, चलावता, पढ़ावता एवं पावता आदि हो जाते हैं। सामान्य वर्तमान काल के अतिरिक्त अन्य कालों में इस प्रकार का परिवर्तन नहीं मिलता । उपर्युक्त काल के जो उदाहरण सदल मिश्र ग्रंथावली में मिलते हैं, उनमें से कुछ नीचे लिखे अनुसार हैं--

उत्तम पुरुष

पुँल्लिंग - एकवचन - मैं कहता हूँ (पृ० २२)
स्त्रीलिंग - मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ (पृ० ४१)

मध्यम पुरुष

पुँल्लिंग, एकवचन - तुम नाना काज करते हो (पृ० ४१)
अनादर सूचक - तू मेरा नार धरा वीर बना फिरता है (पृ० ५३)
तू मुझे नहीं पहचानता (पृ० ५२)

अन्य पुरुष

एकवचन, पुँल्लिंग - जो भगति से पढ़ता है (पृ० ३१)
(आदर सूचक) - नासिकेत ऋषियों से कहते हैं (पृ० २२)
बहुवचन, पुँल्लिंग - ऋषि लोग न्याय बतावते हैं (पृ० २२)
एकवचन , स्त्रीलिंग - यह गंगा --- पवित्र करती है (पृ० ४७)

अपूर्ण वर्तमान

मध्यम पुरुष

एकवचन, स्त्रीलिंग -	जीभ लरखरा रही है (पृ॰ १५९)
बहुवचन पुँल्लिंग -	भौरें घूम रहे हैं (पृ॰ २९)
एकवचन पुँल्लिंग (आदरार्थ) -	भरत -----व्याकुल हो रहे हैं (पृ॰ १७७)

पूर्ण वर्तमान

भूतकालिक कृदन्त + तिङ्न्त से बंना इस काल के रूप के संबंध में सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

कर्तरि प्रयोग (अकर्मक क्रिया)

मध्यम पुरुष पुँल्लिंग -	आप किस भ्रम में पड़े हैं (पृ॰ ९८)
एकवचन (आदरार्थ) -	तुम आये हो (पृ॰ ११५)
अन्य पुरुष पुँल्लिंग	
एकवचन (आदरार्थ)	श्री रामचन्द्र आश्रम में आये हैं (पृ॰ १७६)
बहुवचन -	जो राजा यहाँ आये हैं (पृ॰ १७६)

मध्यम पुरुष - एकवचन, पुँल्लिंग- तुम रावण को मारने के लिए राम रूप अवतरे हो (पृ॰ ११५)

कर्मणि प्रयोग

कर्म - स्त्रीलिंग, एकवचन -	पापियों की दुर्गति मैंने देखी है (पृ॰ २३)
	उन्होंने प्रतिज्ञा करी है (पृ॰ ११३)
	देवताओं ने बड़ी विनती की है (पृ॰ १९१)
कर्म पुँल्लिंग एकवचन -	निर्दयी ने घास पर इतना बड़ा लड़का बहा दिया है (पृ॰ ११चन्द्रावती)
	तुम सबने एक लड़का तो नहीं देखा है (पृ॰ १२)
	इन्द्रजीत का वध विधाता ने लिख है (पृ॰ १६३)
भावे प्रयोग -	कुबेर ने मुजे भेजा है (पृ॰ १९०)

२- भूतकाल (सामान्य भूत)

इस काल के अर्न्तगत अकर्मक क्रिया के भया, भयी एवं भये आदि रूप मिलते हैं, जो आगे चलकर प्रयोग में नहीं रहे, इस काल में बोलियों के प्रभाव के कारण 'पछताना' का भूतकालिक कृदन्त रूप 'पछताया' के बदले पछताने एवं इसी तरह 'बतराना' का 'बतरारे' आदि रूप मिलते हैं।

कर्तरि प्रयोग : अकर्मक क्रिया

उत्तम पुरुष

एकवचन पुँल्लिंग (आदरार्थ) - महादेव बोले (पृ० ३९)

एकवचन पुँल्लिंग - मेरा जी तृप्त नहीं भया (पृ० ३८)

एकवचन स्त्रीलिंग - जब सीता चुप भई (पृ० ३८)

बहुवचन स्त्रीलिंग - तीनों रानी गर्भ से रहीं (पृ० ४१)

राजा जनक बहुत हर्षाने (पृ० ४९)

एकवचन पुलिंग - राजा-- सुत को देष बहुत जुड़ाने (पृ० ४२)

कर्मणि प्रयोग (कर्म)

एकवचन पुँल्लिंग - कश्यप ने मुझसे वर मांगा (पृ० ३९)

एकवचन स्त्रीलिंग - उन्होंने मुनि से विनती की (पृ० ४०)

ब्रह्मा ने विष्णु से प्रार्थना करी (पृ० ९७)

अपने-अपने भाग में आधी-आधी हविष्य कौशल्या औ कैकेयी ने सुमित्रा को दी (पृ० ४०)

भावे प्रयोग रघुनाथ ने -- तारका को एक ही शर से मार डाला (पृ० ४९)

अपूर्ण भूत

इस काल में कहीं -कहीं 'रहे' के पूर्व क्रिया की भूत धातु 'गा' के बदले ब्रजभाषा के प्रभाव के कारण 'गाय' रूप मिलता है।

अन्य पुरुष

एकवचन स्त्रीलिंग - सीता विनका पाँव दबा रही थी (पृ० १९१)

एकवचन पुँल्लिंग - रावण तो व्याकुल हो ही रहा था (पृ० १६०)

बहुवचन पुँल्लिंग - सनकादि ऋषि लोग ----- गुण गाय रहे थे (पृ० ३९)

पूर्ण भूत

कर्तरि प्रयोग

एकवचन पुँल्लिंग - सुग्रीव बैठे थे। (पृ० १०९)

कोई वानर सीता का पास आया था (पृ० १३९)

कर्मणि प्रयोग

कर्म स्त्रीलिंग एकवचन - मैंने प्रतिज्ञा की थी (पृ० २००)

३. सामान्य भविष्यत्

उत्तम पुरुष

पुँल्लिंग एकवचन - यक काज मैं करूँगा (पृ० ४०)

स्त्रीलिंग एकवचन - मैं दूसरे को नहीं भजूँगी (पृ० ४७)

मध्यम पुरुष

पुँल्लिंग एकवचन - तभी तुम सेवा जा करोगी (पृ० ४७)

अन्य पुरुष

पुँल्लिंग एकवचन - सिर कट जायेगा (पृ० १११)

उसका नाम सीता पड़ेगा (पृ० ४०)

पुँल्लिंग एकवचन - चार पुत्र होंगे (पृ० ४१)

स्त्रीलिंग एकवचन - माया जनक के घर जन्म लेगी (पृ० ४०)

स्त्रीलिंग बहुवचन - नारीन सास ससुर को दुख देगी (पृ० ३४)

उपर्युक्त प्रयोगों में कहीं-कहीं पुँल्लिंग, स्त्रीलिंग बहुवचनांत क्रिया के 'गी' या गे पर बिन्दी का प्रयोग मिलता है। यह अनियमितता प्राय: तत्कालीन सभी लेखकों की रचनाओं में मिलती है ।

अर्थ:- अर्थ की दृष्टि से संभावना प्रकट करनेवाले सम्भाव्य वर्तमान, संभाव्य भूत एवं संभाव्य भविष्यत् कालों के उदाहरणों का सदल मिश्र ग्रंथावली में प्राय: अभाव है। एक स्थान पर इस आशय के एक प्रयोग (संभाव्य वर्तमान) में 'शायद' की जगह 'हो न हो' प्रयुक्त किया गया है--

- हो न हो राम को अकेला जान मारने चला है (पृ० ७९)

संदिग्ध वर्तमानकाल

पुँल्लिंग बहुवचन - मेरे माता-पिता भूख-प्यास से मरते होंगे (पृ० ७५)

संदिग्ध भूतकाल

मध्यम पुरुष

एकवचन पुँल्लिंग - तुमने सुना होगा (पृ० ७७)

अन्य पुरुष

एकवचन स्त्रीलिंग - सीता डर गई होगी (पृ० ९९)

एकवचन पुँल्लिंग - लक्ष्मण समेत रामचन्द्र आये होंगे (पृ० ११४)

सदल मिश्र ग्रंथावली में 'संकेतार्थ' के अन्तर्गत उदाहरणों का अभाव है।

सामान्य संकेतार्थ भूतकाल

सब देवतों की करतूति समझें नहीं तो, राम को कैकयी कब बनवास देती (पृ० ८३)

विध्यर्थक क्रियाओं के प्रयोग के संबंध में सदल मिश्र ग्रंथावली में जो विविधता मिलती है, वह इस प्रकार है :-

प्रत्यक्ष विधि

१- तुम मेरा पुत्र हो (पृ० ३९)

२- तुम भी चल के देखो (पृ० ३९)

३- सुंदर बालक अब छूजिए (पृ० ४१)

४- दीन दयाल आज छमा कीजै (पृ० ४७)

५- विष्णु धाम को जाइयो (पृ० १०६)

६- हमारे और मुँह कर तनिक हस दीजियो (पृ० १०८)

७- सैन करियो (पृ० १०८)

८- यह मुझे सुनाओ (पृ० १०८)

९- सीता को यहाँ से तुम ले जाओ (पृ० ९४)

१०- विस दव शत्रु को मानुष हो आप मारिये (पृ० ३९)

अप्रत्यक्ष विधि

१- जी ही में रखियो (पृ० ५१)

२- किसी को जनाइयो मत (पृ० ५१)

३- अति गोपनीय इसे जानना (पृ० ३८)

४- हे धिया, भली भाँति से शसुर ओ पति की सेवा टहल करियो (पृ० ५२)

५- हे बहन, स्वामी से दिन-दिन उत्तम प्रीति कीजो (पृ० ५२)

६- विस घर में सुग्रीव को डेरा कराना (पृ० १७०)

७- तुम मृग बनकर राम को देखाई दो (पृ०-९६)

८- मैं तुम्हारे उत्तर पद का जाऊँ (पृ० ११५)

९- इस देह को तजकर मुजीं से मिल जाइयो (पृ० १२५)

१०- सीता को इसे दीजौ। (पृ० १३७)

ऊपर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष विधि सूचक क्रियाओं पर ब्रजभाषा की छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है। लेकिन 'देखाई दो' 'डेरा कराना' आदि पर भोजपुरी का प्रभाव है। प्रत्यक्ष विध्यर्थक क्रियाओं में खड़ी बोली की निकटतम विध्यर्थक क्रियाएँ 'देखो', सुनाओ', 'जाओ' आदि भी प्रयुक्त हैं, लेकिन अप्रत्यक्ष विध्यर्थक क्रियाओं में प्रायः ब्रजभाषा के क्रिया रूप ही मिलते हैं।

वाच्य

किसी भाषा के क्रिया रूपों के अध्ययन में 'वाच्य' के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वाच्य क्रिया के उस परिर्वतन को कहते हैं, जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि वाक्य में क्रिया, पुरुष,

लिंग, वचन में कर्ता का अनुमान करती है या कर्म का या दोनों में किसी का भी नहीं ।

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त उपर्युक्त क्रियारूपों को उद्धृत करते समय इस बात को संकेतित किया गया है कि किस वाक्य में कर्म की प्रधानता (कर्मणि प्रयोग) है और किसी वाक्य में कर्ता की (कर्तरि प्रयोग) है। इसी प्रकार दोनों में किसी की प्रधानता नहीं होने (भावे प्रयोग) का भी संकेत दिया गया है।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि सदल मिश्र ग्रंथावली की भाषा हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल ही है। हिन्दी में वर्तमान एवं भविष्यत् काल की क्रियाएँ तथा सभी विध्यर्थक क्रियाएँ कर्तृवाच्य होती हैं। अर्थात् क्रियाएँ कर्ता से प्रभावित होती हैं। दूसरे शब्दों में इसे यों कहा जा सकता है कि इन स्थितियों में क्रिया का लिंग, वचन एवं पुरुष वही होगा जो कर्ता का होगा। कालवचक एवं विध्यर्थक क्रियाओं में यही अन्तर होता है कि विध्यर्थक क्रियाएँ कर्ता के लिंग से प्रभावित न होकर, पुरुष-वचन से प्रभावित होती हैं।

यद्यपि सदल मिश्र ग्रंथावली की दोनों अनूदित पुस्तकों का स्रोत संस्कृत भाषा है और संस्कृत भाषा में कर्मवाच्य एवं भाववाच्य का अधिकाधिक प्रयोग मिलता है, फिर भी इस ग्रंथ में लक्ष्य भाषा 'खड़ीबोली' में प्रयुक्त क्रियाएँ इसी भाषा के स्वभाव के अनुकूल हैं। इस पुस्तक में वर्तमान या भविष्यत् काल की तथा विध्यर्थक क्रियाएँ कर्मवाच्य या भाववाच्य में शायद ही कहीं प्रयुक्त हुई हैं।

जब सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त क्रियापदों की तुलना में कविवर श्री लल्लू लाल कृत 'प्रेमसागर' के क्रियापदों की स्थिति थोड़ी भिन्न है। जहाँ तक मूल धातुओं का संबंध है, प्रेमसागर में तत्सम धातुओं का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। यों पूज् (पृ॰ ४४) एवं जन्म (पृ॰ ४१) जैसे इक्के-दुक्के उदाहरण मिल जाते हैं, पर सामान्यतः तद्भव धातुओं का ही प्रयोग हुआ है। 'प्रेमसागर' में प्रयुक्त क्रियापदों की सबसे बड़ी विशेषता उन पर ब्रजभाषा का अधिकाधिक प्रभाव है। किसी भी भाषा की पहचान के प्रमुख आधार क्रियापद ही होते हैं। प्रेमसागर में प्रयुक्त क्रियापद इस ग्रंथ को खड़ीबोली के ग्रंथ के रूप में कम लेकिन ब्रजभाषा ग्रंथ के रूप में अधिक प्रमाणित करते हैं। ब्रजभाषा एक समय में भक्ति एवं शृंगारपरक काव्य-रचना के लिए प्रसिद्ध रही है और इसका प्रभाव ब्रजभाषाबहुत खड़ीबोली की प्रथम गद्य रचना 'प्रेमसागर' पर भी पड़ना स्वाभाविक है। प्रेमसागर में प्रयुक्त पूर्वकालिक क्रियाओं की एकरूपता भी इसी आशय की धारणा को पुष्ट करती है।

उदाहरण :-

१- नन्द यशोदा करुणाकर पुत्र को हृदय से लगाय, हाथ दबाय, अँगुली चटकाय, कहने लगे। (पृ॰ ४५)

२- मन लगाय कंत की सेवा करो (पृ॰ ५०)

३- वे निपट घबड़ाय शस्त्र चला रहे हैं (पृ॰ १८४)

४- सब यदुवंशी भय खाय श्री कृष्ण के पास जा पुकारे (पृ॰ १६४)

५- इन्द्र आय मुझे बुझाय देगा (पृ॰ १२७)

६- धुँआ मँडराय-मँडराय आकाश को गया (पृ॰ १२८)

७- गाय-गाय (गा-गा के लिए) (पृ० १६५)

इनके अतिरिक्त प्रेमसागर में कुछ ऐसी धातुओं का प्रयोग मिलता है, जो 'गद्य रचना' की दृष्टि से उपयुक्त नहीं कही जा सकती --

" हरि कीप प्रीति कौन परेखा'', उनाक तो देखा सबने ही लेखा।'' (पृ० १६१)

इसी प्रकार एक स्थान पर 'हगना-मूतना' धातु का प्रयोग गँवारूपन या अशिष्टता की ओर संकेत करता है:-

''बन्दर को सब सुन्दरी देखते ही डर कर पुकारी कि महाराज यह कपि कहाँ से आया जो हमें डरपा-डरपा हमारे वस्त्रों पर हग-मूत रहा है'' (पृ० १६५)

जिस प्रकार सदल मिश्र ग्रंथावली में 'पहनाना', भाना, एवं आना आदि क्रियापदों के मध्य में 'व' व्यंजन का आगम मिलता है, उसी प्रकार नीचे लिखे अनुसार प्रेमसागर में भी इसके उदाहरण मिलते हैं :- एक नारी आवती थी (पृ० ४०) हाथ देखता होय (पृ० ४५) लगातार मूसलाधार बरसावने और आंगुलि से गिरि को बतावने (पृ० ४४) सब को भावता है (पृ० १७३)

कर्मणि प्रयोग में दो उपवाक्यों के स्त्रीलिंग एवं पुँल्लिंग कर्मों के लिए अलग-अलग क्रिया का प्रयोग तो किया गया है, लेकिन उनके रूपों में अनियमितता मिलती है।

''अक्षल लगाय उन्हें दक्षिणा दी और उनसे आशीष ली ।'' (पृ० १०७)

यहाँ 'दक्षिणा' पुँल्लिंग किन्तु 'आशीष' पुँल्लिंग है, फलतः क्रियापद क्रमशः 'दी' एवं 'लिया' होने चाहिए थे।

भूतकालिक कृदन्त रूपों की स्थिति लगभग एक समान है--

१- तुमने निरन्तर प्रीति करी (पृ० ८६)
२- इन्द्र ने स्तुति करी (पृ० ४६)
३- भया सो भया (पृ० १८४)
४- मेरा काम न सटा (पृ० १७४)

जहाँ तक विध्यर्थक क्रियाओं का प्रश्न है, यद्यपि इनमें कीजिये, करो, एवं देखिये आदि रूप भी मिलते हैं, लेकिन कीजै, चलौ, लीजौ, माँगियौ, आ, व्यापियों एवं आवैं आदि ब्रजभाषा क्रियापदों की प्रधानता है। इनके उदाहरण नीचे लिखे रूप में मिलते हैं :

१- ऐस दीन हो मांगियौ (पृ० ३९)
२- दासों मत व्यापिया (पृ० १५४)
३- अपराध क्षमा कीजै (पृ० १६७)
५ भीमसेन को साथ लै चलो (पृ० १७१)

६- आज्ञा पावे तो भीतर आवे (पृ० १७०)

निष्कर्ष यह है कि प्रेमसागर के क्रियापदों की तुलना में सदल मिश्र ग्रंथावली के क्रियापद खड़ी-बोली के अधिक निकट हैं। यद्यपि सदल मिश्र ग्रंथावली में कुछ क्रियापद ऐसे मिलते हैं, जिन पर पूर्वीपन या भोजपुरी का प्रभाव है, या वे भोजपुरी बोली को ही क्रियापद हैं, लकिन ऐसे क्रियापदों की संख्या खड़ी बोली के क्रियापदों की संख्या में नगण्य ही कही जायगी।

***

क्रिया विशेषण
एवं
अव्यय

(अध्याय - ग्यारह)

यद्यपि क्रिया विशेषण की गणना अव्यय के अंतर्गत ही की जाती रही है फिर भी यह माना जाता रहा है कि दोनों में अन्तर है। वास्तव में 'अव्यय' शब्द का अर्थ है "जिसमें किसी प्रकार का विकार किसी भी स्थिति में उत्पन्न न हो।" इसकी तुलना मे क्रिया विशेषण उस शब्द को कहते है, जो क्रिया की विशेषता बताये। अव्यय का वर्गीकरण भारतीय परम्परा के अनुसार यास्क मुनि द्वारा निर्धारित चार भेदों १- नाम, २- आख्यात, ३- उपसर्ग, ४- निपात, में से 'निपात' के अंर्तगत किया जाता है व्याकरणिक कोटि के निर्धारण के प्रसंग में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि यद्यपि रूप परिवर्तन न होने के कारण उपसर्गों को अव्यय कहा जा सकता है परन्तु उपसर्ग और अव्यय में एक मूलभूत अन्तर यह है कि उपसर्ग किसी शब्द के साथ संयुक्त होकर ही उसे अर्थवान् बनाते हैं, स्वतंत्र रूप से उनका प्रयोग संभव नहीं, जबकि अव्यय का प्रयोग स्वतंत्र रूप से किया जाता है। उपसर्ग स्पष्टत: प्रत्यय है, आबद्ध रूपिम है।

यद्यपि क्रिया विशेषण अव्ययों के अंतर्गत गिने जाते हैं, पर इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि सभी अव्यय क्रिया विशेषण हैं। ऊपर लिखी परिभाषा के अनुसार 'अव्यय' में परिवर्तन नहीं होता, जबकि कुछ क्रिया विशेषण ऐसे हैं, जिनमें परिवर्तन होता है अत: क्रिया विशेषण को अव्यय से अलग रखकर विचार करना अधिक समीचीन प्रतीत होता है और इसी दृष्टि से सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त क्रिया विशेषणों का अध्ययन इस शीर्षक के अन्तर्गत किया जायगा।

इस प्रकार क्रिया विशेषण रूपांतरशील एवं रूपांतररहित दो वर्ग होंगे -

१- रूपांतरशील

२- रूपांतररहित

रूपांतरशील क्रिया विशेषण

ऐसे शब्द प्राय: विशेषण होते हैं, लेकिन जब वे क्रिया विशेषण के रूप में प्रयुक्त हैं, तो उनके लिंग वचन में रूपांतर घटित होता है। इनके अतिरिक्त कुछ क्रियाएँ भी जब क्रिया विशेषण का कार्य करती हैं तो इनमें परिवर्तन या रूपांतर घटित होता है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में ऐसे क्रिया विशेषणों के जो प्रयोग मिलते हैं, उनके रूप में पुँल्लिंग एवं वचन के अनुसार परिवर्तन के उदाहरण इस प्रकार हैं :-

(क) जब सकर्मक क्रिया के कर्म का प्रयोग कर्ता रूप में हुआ है, तो वहाँ क्रिया विशेषण का

रूप कर्म के अनुसार हो गया है,

जैसे-- राम की भार्या **कैसी** मुझे वहाँ दृष्टि आयी (पृ० ९५)

(ख) अकर्मक क्रियाओं के कर्ता भी प्रयोग में ये क्रिया विशेषण कर्ता के लिंग वचन के अनुसार हैं:-

१- **ऐसे** गुरु ने कहा (पृ० ४२)

२- **दौड़ते छोड़ते** मुख सूष गया (पृ० १०१)

३- **हँसती हुई** सीता सभा में गयी (पृ० १०४)

४- राजा दशरथ **ऐसे** रोने लगे (पृ० १०४)

५- मनुष्य **अकड़े** चलते हैं (पृ० ६४)

६- **डरता काँपता** किसी प्रकार मैं समीप जा पहुँचा (पृ० ७५)

(ग) सकर्मक और अकर्मक क्रियाओं के 'भावे' प्रयोग में ऐसे क्रिया विशेषण पुँल्लिंग, एकवचन में प्रयुक्त हैं:-

१- **ऐसा** मुझे भासित होता है (पृ० ९५)

२- **ऐसा** सोच समझ (पृ० ९५)

३- **जैसा** कुछ चाहिए (पृ० ९६)

४- **अच्छा** भरते हो (पृ० ६३)

(घ) 'जितना' 'इतना' आदि विशेषण क्रिया विशेषण के रूप में प्रयुक्त विशेषण पुँल्लिंग में एकवचन पाये गये : --

१- इतना कह धर्मराज के दूत ......फिराते हैं (पृ० २३) (चन्द्रावती)

(च) प्रशंसा के अर्थ में क्रिया विशेषण के रूप में भी 'ऐसा' 'वैसा' का प्रयोग पुँल्लिंग एक वचन में किया गया है --

१- वाण **ऐसा** षैंच मारा (पृ० ८६)

२- ब्रज **ऐसा** मुझे मारा (पृ० १०५)

३- एक वाण से **ऐसा** मारा कि वह मुर्च्छित हो गया (पृ० १५७)

४- **ऐसा** सोच समझ (पृ० ९५)

(छ) जब 'ऐसा' 'कैसा' आदि आकारांत विशेषण का प्रयोग क्रिया विशेषण के रूप में हुआ है, तो इसका रूप 'ऐसा' 'ऐसे' मिलता है --

१- **कैसे** आप हैं (पृ० २०)

२- **कैसे** विपत्ति काटती होगी। (पृ० १५)

३- **ऐसे** कह प्रणाम कर (पृ० ५) (पृ० ७४)

४- **ऐसे** गुरु ने कहा (पृ० ४२)

५- राजा दशरथ **ऐसे** रोने लगे (पृ० ६८)

६- **ऐसे** सिखा-पढ़ा (पृ० ७३)

'प्रेमसागर' (ज्ञा०मं०प्र०) में रूपांतरशील क्रिया विशेषणों के प्रयोग की स्थिति लगभग समान है

१- **ऐसे** मन ही मन सोच विचार करता (पृ० १४४)

२- मैं **कैसे** जाऊँगा (पृ० १४४)

३- शंकर ने उससे **ऐसे** समझाकर कहा (पृ० १४४)

४- सब **दौड़ी** आयी (पृ० १६१)

५- **जितना** चाहिए (पृ० १७८)

६- मथुरा में चलीं-चलीं मगध देश अपने पिता के यहाँ आयीं (पृ० ९२)

७- मैं **इतना** जानता हूँ (पृ० ६३)

रूपांतररहित क्रिया विशेषण

स०मि०ग्रं० में रूपांतररहित क्रिया विशेषणों का प्रयोग पर्याप्त रूप से किया गया है, जिनके उदाहरण इस प्रकार हैं :-

तत्सम

१- पुनः - **पुनः** उठाकर (पृ० १६५)

२- शीघ्र - मैं उसे **शीघ्र** मरवा डालूँ (पृ० १६३)

३- व्यर्थ - अब **व्यर्थ** जाये (पृ० १६४)

४- सदा - **सदा पुकारते** हैं (पृ० २०)

५- तत्क्षण - **तत्क्षण** सब पा छूटता (पृ० ३४)

६- कठोर - सब अति **कठोर** गरजते हैं (पृ० १५४)

तद्भव

१- पुनि- **पुनि** बोले (पृ० ८१)

२- झुठ-मुठ - **झुठमुठ** क्यों घबराती हो (पृ० १०२)

३- सच-मुच - तुम **सचमुच** बन जाओगे (पृ० ६३)

४- बहुत - **बहुत** सिषलाया (पृ० १५४)

५- पुन - **पुन** भारी कोलाहल करने लगे (पृ० १५६)

६- तुरंत - आकाश **तुरंत** निर्मल हो गया (पृ० १६४)

७- कृपा कर - **कृपा कर** एक स्थान बताइये (पृ० ७२)

८- फिर - नारद मुनि नें **फिर** पूछा (पृ० २९)

कुछ तद्भव रूपांतररहित क्रिया विशेषण ऐसे भी मिलते हैं, जिनका प्रयोग द्विरुक्तिपूर्वक या सहचर शब्दों के साथ किया गया है:---

१- धीरे-धीरे क - **धीरे-धीरे** सब उतरे (पृ॰ ७०)
ख - **धीरे-धीरे** मेरी आँखें खुलीं (पृ॰ १२७)

२- क्रम-क्रम - स्त्री-भाई समेत हमारे साथ **क्रम-क्रम** सगरे बन देख लीजिये (पृ॰ ८८)

३- नित-नित - **नित-नित** अध्यात्म रामायण को सुने (पृ॰ ३५)

४- बार-बार - पति को **बार-बार** प्रणाम किया (पृ॰ ३५)

५- झुठ-मुठ - **झुठ-मुठ** बैर मत बढ़ाओ (पृ॰ ९७)

६- मिल-जुल - **मिल-जुल** सब चले (पृ॰ ८०)

७- पुकार-पुकार - **पुकार-पुकार** लगी रोने (पृ॰ ९४)

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित रूपांतररहित क्रिया विशेषणों का प्रयोग भी मिलता है -- तुरंत (पृ॰९), भली भाँति (पृ॰ ९), प्रीति कर (पृ॰ १९), तनिक (पृ॰ ४०), **कुछ देशी एवं भोजपुरी** के क्रिया विशेषणों का प्रयोग भी किया गया है --

१- नीके - (अच्छी तरह) (पृ॰ ६३,११६,१४९,१७७)
(क) मैं **नीके** जानता हूँ (पृ॰ ६२ एवं ६३)
(ख) **नीके** मुझे समझाओ (पृ॰ ११६)

२- भले - हम सब **भले** जानते हैं (पृ॰ ८८)

३- एकबारगी - (क) चारों दिशाएँ **एकबारगी** रो उठीं (पृ॰ ६८)
(ख) **एकबारगी** प्रभात हो गयी (पृ॰ ७०)

४- निपट- **निपट** डर कर फिर सीता ने कहा (पृ॰ ६५)

५- एकबारगी - चारों दिशाएँ **एकबारगी** रो उठीं (पृ॰ ६८)

प्रेमसागर - (ज्ञा॰मं॰प्र॰) में भी जिन रूपांतररहित क्रिया विशेषणों का प्रयोग मिलता है, वे लगभग उपरिवत् ही है। लेकिन उसमें भोजपुरी के 'एकबारगी' आदि शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। लेकिन चौपाई में 'नीके' का प्रयोग मिलता है--

हे वसुदेव देवकी नीके राजा वैर परी तिनहीं के (पृ॰ ६५)

रूपांतररहित क्रिया विशेषणों के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने विशेषण की विशेषता बतानेवाले शब्द को क्रिया विशेषण न कह (हिन्दी शब्दानुशासन, षष्ठ अध्याय पृ॰ ३१९-३२९) 'प्रविशेषण' कहा है। अत: ऐसे प्रयोगों को पृथक् रूप में उद्धृत करना उचित ही होगा।

स॰मि॰ग्रं॰ में 'प्रविशेषण' इसके रूप में जिन शब्दों का प्रयोग इस प्रकार अधिकता से किया गया है, उनमें 'निपट' 'महा' 'अति' एवं 'दारुण' आदि शब्द गिनाये जा सकते हैं। इनमें 'निपट' शब्द

के प्रयोगों के उदाहरण इस प्रकार हैं-

निपट :-

निपट-स्थावर समान मैं हो गया (पृ. ७३)

निपट व्याकुल था (पृ. ११०)

निपट भोली (पृ. ९)

निपट मूर्च्छित हो गया (पृ. १२७)

निपट डरी हुई (पृ. १३९)

इसी प्रकार (प्रविशेषण) के रूप में मैं महा, अति एवं दारुण आदि शब्दों के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं। कहीं-कहीं 'महा' 'प्रविशेषण' का प्रयोग 'द्विक्त पूर्वक' किया गया है।

महा

महा दुख दायक (पृ. २१)

महा डरावन (पृ. २१)

महा तेजस्वी (पृ. २८)

महा पापी (पृ. ७५)

महा अद्भुत (पृ. २५)

महा बली (पृ. ९५)

अति

अति मनोहर (पृ. २८)

अति सुभाग (पृ. २५)

अति दुखदायक (पृ. २७)

अति सुंदर (पृ. १२७)

दारुण

दारुण दुखदायक (पृ. २०)

अव्यय

अव्यय की परिभाषा के रूप में यह कहा गया है कि जो कभी विकृत नहीं होते ऐसे शब्द अव्यय कहलाते हैं अव्यय को निम्नलिखित भेदों में बाँटा जाता है:-

१- समुच्चय बोधक

२- संबंध बोधक

३- विस्मयादि बोधक

४- निपात

'निपात्' के विषय में यह कहा जाता है कि इस प्रकार के अव्ययों का कोई अपना अर्थ नहीं होता, पर वे किसी शब्द या पूरे वाक्य को एक विशेष अर्थ प्रदान करते हैं।

१ - समुच्चय बोधक

समुच्चय बोधक अव्यय शब्दों या वाक्यों को जोड़ते हैं। इनके दो भेद है :-

१- समानाधिकरण

२- व्यधिकरण

स०मि०ग्रं० में **समानाधिकरण समुच्चय बोधक अव्ययों** के जो प्रयोग मिलते हैं, वे **इस प्रकार हैं:-**

१ - संयोजक

और

(क) चन्द्रवाती ने कुछ भी न जाना- **और** स्नान पूजा कर ....चली आयीं (पृ० ९)

(ख) उसी को मारना उचित नहीं है **और** राम से बैर बेसाहना भला नहीं (पृ० ९६)

(ग) बातचीत की **और** जो कुछ अचरज देखा सुना (पृ० १९)

औ

(क) हर्षित हुए **औ** कहने लगे (पृ० ९९) (वाक्य)

(ख) बड़े बीर **औ** युवा मेरे भाई (पृ० ९५) (शब्द)

(ग) विन्हने प्रणाम किया **औ** क्षेम पूछ बैठ लागा (पृ० ९९)

(घ) सर्वज्ञ **औ** सबको देखनेवाले (पृ० १०२) (वाक्य)

अस- (पृ० ३५,३४ ऊपर भी प्रयुक्त)

(क) लक्ष्मण को **अस** समझो मोहनहारी (पृ० १०१)

(ख) तुम जाओ **अस** वहां ही मुझे .... मिल जाइयो (पृ० १२५)

वो (पृ० ५,६,१, पर भी प्रयुक्त)

(क) प्यार करते **वो** निपट भोली, सो जानते (पृ० ९)

(ख) राजभोग छोड़ **वो** पिता माता की डोरी तोंड़ (पृ० १०)

(ग) गये **वो** आये (पृ० १९) (शब्द)

व -

(क) महातेजस्वी **व** समर्थ जान (पृ० १९) (शब्द)

(ख) खुँटी गड़ी हुई **व** सुई सब गड़ी हुई (पृ० २६) (शब्द)

संयोजक अव्ययों में 'ओ' शब्द का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है। कहीं 'वो' एवं 'व' भी प्रयुक्त

है, लेकिन इनकी संख्या कम है। आश्चर्य है कि सदल मिश्र ग्रंथावली में 'तथा' और 'एवं' संयोजकों का प्रयोग नहीं के बराबर है।

इसकी तुलना में प्रेमसागर ज्ञा०मं०प्र० में प्राय: परिनिष्ठित संयोजक 'और' का ही प्रयोग मिलता है। तत्कालीन ईसाई मिशनरियों द्वारा अनूदित धर्म ग्रंथों में भी प्राय: 'और' का ही प्रयोग किया गया है।

२- विभाजक

अथवा-

हम सबको **अथवा** एक ही को आज्ञा दीजे (पृ० १४७)

तुम जाओगे **अथवा** इन्द्र महेश सब तुम्हारी रक्षा करें (पृ० १४७)

कै-

कै तो सीता को राम के पास भेज दो

कै लड़ने को उपस्थित हो जाओ (पृ० १५१)

नहीं तो

नहीं तो पकड़ के मैं खा जाऊँगी (पृ० १३१)

३- विरोध प्रदर्शन

पर-

मैं एकेला ही जाकर मार डालता, **पर** विना पक्ष का हूँ (पृ० १२७)

पर यह नहीं जानते (पृ० १३१)

वरन् -

मै कुछ दुख न दूगीं, **वरन्** मैं जो कुछ कार्य होगा **सब** करूँगी (पृ० ६६)

४-परिमाणदर्शक

इसलिए -

इसलिए तुम्हारे शरण में आये (पृ० ६)

नाक से भया **इसलिए** इसका नासिकेत नाम भया (पृ० ११)

सो -

सो निकट चले आये (पृ० १०)

व्यधिकरण समुच्चय बोधक अव्यय के द्वारा मुख्य वाक्य के साथ आश्रित वाक्य जोड़े जाते हैं, ये चार हैं: --

१-कारणवाचक

क्योंकर -

तुम्हारा कहा **क्योंकर** झूठ होए (पृ० ११)

तो **क्योंकर** मैं बड़े कुल की कन्या .... फिर पति करूँ (पृ॰१३)

क्यूँकर -

जब **क्यूँकर** इसे पार होवे (पृ॰ १२९)

जबकि -

जबकि उन्होंने यों कहा (पृ॰ १३१)

२- उद्देश्यवाचक

कि -

कि जिसके जानने से देह जावे (पृ॰ १२९)

३- संकेतवाचक

तो -

(क) आप आज्ञा कीजै **तो** वानरन को मारकर एक क्षण में चला आऊँ (पृ॰ १४७)

(ख) **तो** लाख गोदान का फल मिले (पृ॰ १४)

पर-

पर जैसे मरनेवाले को औषधी नहीं मिले (पृ॰ १४७)

४- स्वरूप वाचक

मानो-

मानो उदयाचल पहाड़ से सूर्य ही उदय लेवें (पृ॰ ७३)

२-सम्बन्धबोधक अव्यय

ये अव्यय विभक्ति के बाद आते हैं और विभक्ति के पहले आनेवाले शब्द का संबंध बाद में आने वाले शब्द से जोड़ते हैं। स॰मि॰ग्रं॰ में इनके प्रयोग के उदाहरण निम्नलिखित अर्थों में इस प्रकार मिलते है:-

(क) कालवाचक-

कदही (क) जो मैंने स्वप्न में **कदही** आज तक .....(पृ॰ ११)

(ख) **कदही** कोई सांच न मानेगा (पृ॰ ८)

कबही - **कबही** झूठा होता हैं (पृ॰ १४)

अबहीं- **अबहीं** बाहर गये (पृ॰ १२)

पीछे - कितने एक दिन **पीछे** (पृ॰ १४)

इतने में- **इतने में** सखी सब आयीं (पृ॰ १५)

फिर - **फिर** धीरज कर ... चल खड़े भये (पृ॰ १७)

झट- **झट** वहाँ से अन्तर्धान हो (पृ॰ १७)

कधो - **कधो** न यम का मुँह देखते हैं (पृ॰ २३)

कभूं - तुम्हारी माया में फिर न **कभूं** मैं फसूँ (पृ० १०८)

(ख) स्थानवाचक

आगे - आपके **आगे** कही बात (पृ० १०)

पास - रघु के **पास** (पृ० १४)

पर - मुँह **पर** कहाँ तक बड़ाई करें (पृ० १६)

ह्याँ - दशरथ के **ह्याँ** अवतार लेंगे (पृ० १०४)

निकट - मुनियों के **निकट** अटकाव हो गया (पृ०-१४)

इहाँ - **इहाँ** से ले गये (पृ० २१)

इहाँ आराम करो (पृ० १२)

कहूँ- **कहूँ** पर हमारी बात (पृ० ८)

वहाँ - झट **वहाँ** से अन्तर्धान हो (पृ० १७)

जहाँ - **जहाँ** अत्रि आदि अनेक ऋषि लोग .... पहुँचे (पृ० १७)

कहाँ- अपनी भूल **कहाँ** तक सुनाऊँ (पृ० १८)

सिगरे - **सिगरे** नगर (पृ० ५८)

वोहीं - (वहीं) दूत सब **वोहीं** उनको चित्रगुप्त के पस ले गये (पृ०१८)

कहीं - **कहीं** मिलने का नहीं (पृ० ६५)

तहाँ - **तहाँ** पानी भभक भभक सुन (पृ० ७५)

इनके अतिरिक्त दिशा, साधन, हेतु, विषय सादृश्य, विरोध, निषेध, साहचर्य, तुलना एवं संग्रह आदि अर्थों में प्रयुक्त संबंध बोधक अव्यय के उदाहरण भी मिलते हैं जो इस प्रकार हैं:-

दिशा- चारों **दिशा** (पृ० १२) (दिशा)

आगे - इसके हाथ पाँव के **आगे** (पृ० १०) (तुलना)

मत - खेद **मत** करो (पृ० १७) (निषेध)

समेत - व्योरे **समेत** (पृ०-१५) (सहचार)

सहित - बालक **सहित** (पृ०-१५) (सहचार)

कैसे- **कैसे** विपत्ति काटती हैं (पृ० १५) (प्रकार)

कैसे- **कैसे** यम के दूत हैं (पृ० २०)

मारे- **मारे** भूख के (पृ० ११) (हेतु)

सा - हम-**सा** पापी (पृ० १५) (सादृश्य)

समान- मन के वेग **समान** (पृ० १९) (सादृश्य)

तुल्य - देवता **तुल्य** गिने जाते थे (पृ० २३)

भर - रात **भर** साथ रक्षा (पृ. ७४)

३- विस्मयादिबोधक अव्यय

इनका प्रयोग हर्ष,शोक, आश्चर्य, अनुमोदन, तिरस्कार एवं सम्बोधन के अर्थ में किया गया है। सदल मिश्र ग्रंथावली में इनकी स्थिति नीचे लिखे अुनसार है:-

देखो-देखो (पृ. ८) (सम्बोधन)

देखो रे भाई (पृ. ८) (सम्बोधन)

हाय-हाय हाय। हाय। कैसे कुल में 'कलंक' हुआ (पृ. ८) (विस्मय)

अरे - **अरे** बेटी। यह क्या तेरी अवस्था है? (पृ. ८) (विस्मय)

हे भगवान (पृ. ९) (सम्बोधन)

अरे पापिनी (पृ. ९) (सम्बोधन)

अरे विधना (पृ. ९) (सम्बोधन)

हाय पुत्र (पृ. १२) (सम्बोधन)

अरे मन्थरा (पृ.-५१) (सम्बोधन)

हे पार्वती। धन्य हो (पृ.-६१) (सम्बोधन)

हे रानी (पृ.-६१) (सम्बोधन)

अहो लक्ष्मण (पृ.-८०) (सम्बोधन)

हा सीता **हा** सीता (पृ.-१०९) (विस्मय)

सदल मिश्र ग्रंथावली में 'नासिकेतोपाख्यान' एवं 'अध्यात्म रामायण' में कथोपकथन के अनेक प्रसंग हैं। अनुवादक ने उन्हें नाटकीय शैली में ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, अत: उपर्युक्त विस्मयादिबोधक अव्ययों को प्रयोग यथास्थान उपर्युक्त रूप में ही हुआ है।

४- निपात

सदल मिश्र ग्रंथावली में स्वीकार, निषेध एवं तुलना का बोध कराने के अतिरिक्त बल देने के लिए जिन अव्ययों का प्रयोग हुआ है, उनकी स्थिति नीचे लिखे अनुसार है:-

भर - पहर **भर** में (पृ. १७)

पल **भर** में (पृ. १७)

तक- आज **तक** (पृ. ११)

जिन - **जिन** दीजियो (पृ. ३८)

मत - खेद **मत** करो (पृ. १७)

भी- मुजे **भी** स्वर्ग चलने की इच्छा है (पृ. १९९)

नहीं - हमने सुने भी **नहीं** (पृ. १९४)

ही - देह **ही** उसका घर है (पृ. १९४)

तो - अपने को चेते **तो** सहज में मुक्त होवे (पृ. १९४)

तलक - जब **तलक** उनका आगमनं होवे (पृ. १०६)

सदल मिश्र ग्रंथावली के समय में ही रचित प्रेमसागर एवं बाईबिल के अनुवादों में प्रयुक्त उपर्युक्त अव्यय शब्दों के प्रयोग की स्थिति के कुछ उदाहरणों पर भी विचार करना जरूरी है:-

* **अति** - **अति** बड़ा अजगर (पृ. २४)①
* **अति** - कल का दिन **अति** उत्तम है (पृ. २५)①

× **जद** - राजा **जद** पृथ्वी पर अति अधरम होने लगा (पृ. ६४)②

तो - धरम **तो** उठ गया

जहाँ- **जहाँ** क्षीर सागर में भगवान सो रहे थे ।

तब - **तब** महादुष्ट रावण को बध किया।

आज - **आज** से गौ चरावन अपने साथ रामकृष्ण को भी ले जाया करो।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अव्यय के प्रयोग की दृष्टि से सदल मिश्र एवं उनके सहयोगियों में लगभग समानता ही है। अंतर इतना ही है जहाँ लल्लू लाल द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दों पर ब्रजभाषा का प्रभाव है, वहाँ सदल मिश्र द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दों पर भोजपुरी का। लेकिन कहीं-कहीं ऐसे प्रयोग भी मिले हैं, जो दोनों ही लेखकों की लेखनी द्वारा लिखे गये हैं। उदाहरणार्थ - 'निपट' शब्द का प्रयोग दोनों ही लेखक करते हैं, लेकिन सदल मिश्र की रचना में इसकी बारंबारता अधिक है। इसी प्रकार लल्लू 'निदान' शब्द का अधिकाधिक प्रयोग करते है।

उपर्युक्त प्रसंग में अव्यय के कुछ और उदाहरण नीचे लिखे अनुसार हैं इनमें कहीं-कहीं 'ही' निपात का प्रयोग शब्दों के बीच में किया गया है-- जैसे-

(१) राम आवे **ही** गा (पृ. ५८)

(२) बाहरे ही से बाली को बाहरे **ही** से ललकारने लगा (पृ. ११०)

अन्य उदाहरण - (क्रिया विशेषण एवं अव्यय)

१- होत सबेरे - होत सबेरे मैं वन जाऊँगा (पृ. ७८)

२- बड़े लड़के -बडे लड़के में दण्डकारण जाऊँगा (पृ. ७९)

३- होत प्रभात - होत प्रभात भरत चले (पृ. ७९)

४- संती - आपकी **संती** मैं ही वन में रहूँगा (पृ. ८३)

---

① प्रेम सागर (ज्ञान मण्डल प्रकाशन)

② हिन्दी गद्य साहित्य का विकास - श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार (पृष्ठ ६६)

५- इस अनंतर - इस अनंतर में दषता हूँ (पृ० ११०)

६- ओतना- ओतना जल मेघ बरषादे (पृ० ८१)

७- एक बेर - एक बेर मंत्रीन समेत पहार के ऊपर ... मैं जा बैठा (पृ० १०९)

८- फिरते ही फिरते (पृ० १२६)

९- एत्ता - खिला-पिलाकर **एत्ता** बड़ा किया (पृ० १४७)

१०- आगे -(बाद में) १-क्या जानूँ **आगे** कैसा हो (पृ० ५६)

(पहले) २- गौतम मुनि **आगे** यहाँ रहते थे (पृ० ४६)

११- पीछे (बाद में) तू **पीछे** पछताओगे (पृ० १४७)

***

पदबंध
एवं
वाक्य विचार

(अध्याय - बारह)

"**भाषा** की न्यूनतम सार्थक इकाई वाक्य हीं है।" जहाँ पद-विज्ञान में इस बात पर विचार किया जाता हे कि संज्ञा,क्रिया, विशेषण, कारक, लिंग, वचन,काल आदि के वाचक शब्द कैसे बनते हैं, वहाँ वाक्य विज्ञान के अन्तर्गत हम उक्त पदों के प्रयोग पर विचार करते हैं। वाक्य में प्रयोग किये बिना किसी शब्द का कोई निश्चित अर्थ नहीं होता। वाक्य की प्रमुखता के संबंध में भर्तृहरि का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत है-

पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेष्वयवा न च ।
वाक्यात् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन।।
-वाक्य पदी, ब्रह्म काण्ड ७३

जिस प्रकार वर्णों में अवयव नहीं होते, उसी प्रकार पदों में वर्ण या वाक्य में पद नहीं होते। "भाषा का उपयोग है भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति और पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य से ही सम्भव है, पद से नहीं। वस्तुत: विचार तो एक प्रकार से अखण्ड प्रवाह है जो कभी अवरुद्ध या बाधित नहीं होता। उस प्रवाह में वाक्य से नीचे उतरने पर अर्थ का रूप ही खंडित हो जाता है।"①

भारतीय मीमांसकों ने पद एवं वाक्य से संबंधित क्रमशः अभिहितान्वयवाद तथा अन्विताभिधानवाद के दो सिद्धान्त निर्धारित किये हैं। एक के अनुसार पदों को जोड़ने से वाक्य बनता है और दूसरे का कहना है कि वाक्य को तोड़ने से पद बनते हैं। दोनों के महत्त्वों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। "अब तक पद एवं वाक्य के बीच एक उपवाक्य की छोड़ और किसी भाषिक इकाई की सत्ता नहीं मानी जाती थी, पर अब 'पदबन्ध' को भी एक भाषिक इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। पदबंध एक नयी व्याकरणिक संकल्पना है, किन्तु आधुनिक भारतीय भाषाओं के व्याकरण को समझने के लिए बहुत उपयोगी है। इसे अंग्रेजी 'फ्रेज' के समानार्थक माना जा सकता है।"②

अत: सदल मिश्र एवं उनके समकालीन लेखकों की कृतियों के संदर्भ में उनमें प्रयुक्त वाक्यों एवं

---

① भाषा विज्ञान की भूमिका - डा॰ देवेन्द्र नाथ शर्मा (पृष्ठ - २५४)

② परिनिष्ठित हिन्दी का रुप क्रमिक अध्ययन - डा॰ महेश चन्द्र (पृष्ठ ५०)

उपवाक्यों का अध्ययन करने से पूर्व पदबंधों का अध्ययन करना आवश्यक है।

(१) पदबंध

स०मि०ग्रं० के वाक्यों में बहुधा देखा गया है कि जो व्याकरणिक कार्य एक शब्द करते हैं, उसी कार्य को कई शब्दों से बने वाक्यांश या पदबंध भी करते हैं। उपवाक्य एवं पदबंध का अन्तर थोड़े में यों समझा जा सकता है कि " वाक्य के सदृश उपवाक्य में भी उद्देश्य और विधेय दोनों रहते हैं, जबकि पदबन्ध स्वयं उद्देश्य या विधेय का अंग बनकर आता है। उपवाक्य के समान उसमें समापिका (क्रिया)-(फाइनाइट वर्ब) नहीं रहती।"

(क) व्याकरणिक पदबंध

"किसी भी पदबंध की रचना संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और अव्यय पदों के विभिन्न योगों से ही सम्भव है, क्योंकि हिन्दी में ये चार प्रकार के पद ही पदबंध में संयोग के लिए उपलब्ध हैं। हिन्दी क्रिया पद किसी अन्य पद के साथ मिलकर पदबंध नहीं बनाते।"① अत: स०मि०ग्रं० में प्रयुक्त इन्हीं चार (व्याकरणिक) पदबंधों की स्थिति पर विचार किया जा रहा है।

१. संज्ञा पदबंध

(१) संज्ञा+संज्ञा - **राजा दशरथ** (पृ० ७५)
(२) क्रियार्थक संज्ञा+संज्ञा - विवाह **करने** की **आज्ञा** दे दी। (पृ० ६)
(३) विशेषण+संज्ञा - **सुन्दरी कन्या** (पृ० ७)
(४) संख्यावाची विशेषण + संज्ञा - **सहस्र राजकन्या** (पृ० ८)
(५) सार्व०विशेषण+संज्ञा - **इस महावन** में (पृ० ९)
(६) क्रम वाचक विशेषण + संज्ञा - **छठवें मास** (पृ० ८)
(७) कृदन्त +संज्ञा - **विपत की मारी हुई सहेलियों** (पृ० १३)
(८) सर्वनाम+संज्ञा - **मेरी नाक** (पृ० १३)
(९) संज्ञा+ अव्यय + संज्ञा - **गहना उतार-उतार सेवकों को** (पृ० १५)
(१०) संज्ञा+अव्यय+संज्ञा - **एकादशी अरू रामनवमी** (पृ० ३४)

पदबंधों में पदक्रम का भी बड़ा महत्त्व है। क्रम उलट-पुलट होने से अर्थ बदल सकता है। सदल मिश्र ग्रंथावली में इस पदक्रम का पूरा ध्यान रखा गया है :-

(१) हनुमान की प्रतिमा, तुलसी-पीपल की प्रदक्षिणा (पृ० ३४)
(२) राम के संग लछुमण, अनन्दकन्द रघुनायक (पृ० ४२)
(३) गुह नाम केवट (पृ० ६८) लछुमण सहित रामचन्द्र (पृ० ६९)
(४) तमसानाम नदी तीर (पृ० ६८) पाँव के अँगूठे से (पृ० १११)

---

① परिनिष्ठित हिन्दी का रुप क्रमिक अध्ययन - डा० महेश चन्द्र (पृष्ठ ५१)

इस पदबंधों में पदक्रम-परिवर्तन से 'राम के संग लछुमण' के बदले 'लछुमण के संग राम' 'गुहनाम केवट' के बदले 'केवट नाम गुह' या 'लछुमण सहित रामचन्द्र' के बदले 'रामचन्द्र सहित लछुमण' हो जाता तो अर्थ बदल जाता। अर्थ की दृष्टि से इस विषय में लेखक की सतर्कता प्रमाणित है।

(२) सर्वनाम पदबंध (स०मि०ग्रं०)

सर्वनाम - पदबंध में अधिकांश उदाहरण विशेषण + सर्वनाम पदबंध के ही मिलते हैं, लेकिन सर्वनाम + सर्वनाम एवं संज्ञा + सर्वनाम के उदाहरण भी हैं :-

विशेषण + सर्वनाम - **अरे पापिनी** तूने यह क्या किया (पृ० ९)

रोती हुई मुझको (पृ० १३)

सर्वनाम + अव्यय + विशेषण- **हम समान क्रोधी** दुराचारी (पृ० १९)

सर्वनाम + संज्ञा- **आपके पुण्य** प्रताप से (पृ० १९)

अव्यय + विशेषण + सर्वनाम - **अति उत्तम तुमको** बनाया (पृ० १८)

(३) विशेषण पदबंध

(१) विशेषण + विशेषण - **महा उदार**

(२) विशेषण + विशेषण - **निषिद्ध प्रतिग्रह** भोजन (पृ० ७)

विशेषण + विशेषण - **सांची - सांची** (पृ० ६)

भला - बुरा (पृ० ८२)

(३) संज्ञा+ परसर्ग + विशेषण - **काम से** पीड़ित (पृ० ७)

(४) संज्ञा + सादृश्य + विशेषण - **अमृत समान** पके (पृ० १३२)

(५) संज्ञा + परसर्ग + प्रविशेषण + विशेषण - **वियोग से महाव्याकुल** (पृ० १३३)

(६) सर्वनाम + कृदन्त विशेषण + संज्ञा - **तुम्हारी दी हुई अँगूठी** (पृ० १४४)

(७) सवनाम + विशेषण + संज्ञा - **मेरा भक्त विभीषण** (पृ० १७४)

विधेयात्मक रूप में प्रयुक्त विशेषण पदबंध-

(क) हम लोगन को **सनाथ** करेंगे (पृ० १९१)

(ख) तुम **भक्त वत्सल** हो (पृ० १५०)

(ग) मैं कैक दिन का **व्रती** हूँ (पृ० १३८)

(घ) बाली बड़ा **बलवान** है (पृ० ११०)

(४) क्रिया विशेषण पदबंध एवं अव्यय पदबंध

(१) क्रिया विशेषण + क्रिया विशेषण - १. **धीरे-धीरे** बाली **लगा धिरकारने** (पृ० ११४)

२. **खोजते-खोजते** (पृ० १२३)

(२) अव्यय + निपात **वहाँ ही** (पृ० १३२)

(३) क्रियार्थक संज्ञा + निपात + परसर्ग **मारने ही को** (पृ० १३५)

(४) क्रिया विशेषण + परसर्ग + अव्यय +क्रिया विशेषण - **आग की भाँति फिर** (पृ॰ १५७)

(५) संज्ञा + परसर्ग + अव्यय + निपात - **ज्ञान दृष्टि से आगे ही** (पृ॰ ८०)

(६) क्रिया विशेषण + अव्यय - **इससे प्रास जा** (पृ॰ ८०)

(७) संज्ञा + परसर्ग + अव्यय - **घर से बाहर** (पृ॰ ८१)

'सदल मिश्र ग्रंथावली' एवं 'प्रेमसागर' में ऐसे अनेक वाक्य भी मिलते हैं जिनमें एक ही साथ कई पदबधों का संगुफन है। उदाहरण -

एक दिन रसोई जेवते हुए राजा दशरथ ने देखा कि भाल में मुक्ता खचित पीपल का पत्ता-सा सुवर्ण का आभरण आकंठ माह मणिन के हार, जिन्हके बीच बाघ के नख गांथे हुए थे, कानों में रतन जड़ित सुन्दर कुंडल, कटि में किंकिनी, हाथों में विजावठ पहने इन्द्रनील मणि से श्याम सरुप रामचन्द्र अँगने में छोटे-छोटे बछरुन के पीछे-पीछे डोलते-फिरते हैं। (स॰मि॰ग्रं॰पृ॰ ४२) इस वाक्य में प्रयुक्त कुछ पदबंधों का विश्लेषण द्रष्टव्य है।

(क) राजा दशरथ - संज्ञा पदबंध

(ख) रसोई जेंवते हुए - क्रि॰ वि॰ पदबंध

(ग) मुक्तारचित पीपल - विशेषण +संज्ञा पदबंध

(घ) रतन जड़ित सुन्दर - विशेषण पदबंध

(ङ) छोटे-छोटे - विशेषण पदबंध

(च) पीछे-पीछे - क्रिया विशेषण पदबंध

(छ) डोलते फिरते हैं - क्रिया पदबंध

इसी संदर्भ में 'प्रेमसागर' में प्रयुक्त पदंबधों का एक वाक्य उदधृत है।

"आगे करु की रानियाँ, देवरानियाँ समेत, अति व्याकुल हो रोती-पीटती वहाँ आई।"
(प्रेमसागर ,पृ॰ ७६)

(क) कंस की रानियाँ - संज्ञा पदबंध

(ख) देवरानियाँ समेत - संज्ञा पदबंध

(ग) अति व्याकुल - विशेषण पदबंध

(घ) रोती पीटती - क्रिया पदबंध

पदबंधों की संरचना की दृष्टि से भी स॰मि॰ग्रं॰ के वाक्य अधिक सुगठित एवं अनुकूल हैं।

व्याकरणिक कोटियों के अन्तर्गत परिगणित उपर्युक्त पदबंधों के अतिरिक्त अन्य दो प्रकार के वे पदबंध हैं, जो प्रयोग एवं शैली की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, वे हैं द्विरुक्ति एंव मुहावरों से बने पदबंध। अनेक भाषाविदों ने सदल मिश्र की रचनाओं में इन दोनों पदबंधों की उपस्थिति के कारण उनकी प्रसंशा

---

① आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (पृ॰ ४०५)

की है। डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है - उन्होंने मुहावरों के बड़े सुन्दर प्रयोग किये हैं। साथ ही उन्होंने शब्दों के दुहरे प्रयोग भी किये हैं जैसे - हितमीत, 'कांना-कानी' 'बुहार-सुहार' उथल-पुथल आदि।①

(ख) शब्द युग्म (द्विरुक्ति) पदबंध

स॰मि॰ग्रं॰ में प्रयुक्त द्विरुक्तियों के उदाहरण संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण तथा अव्यय पर विचार करते समय भी प्रस्तुत किये गये हैं। लेकिन वहाँ इनकी व्यापकता के ऊपर सम्यक् रूप से विचार नहीं किया जा सका है और जो भी उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, वे प्राय: समान पदों का द्विरुक्ति के हैं। इनके प्रयोगों के कारण भाषा-शैली के सुन्दरता में होनेवाले योगदान पेर हम 'शैली' शीर्षक के अन्तर्गत विचार करेंगे ही, पर इस प्रसंग में ध्वनि एवं अर्थ की दृष्टि से उनकी द्विरुक्तिता पर विचार करेंगे।

प्राय: समानार्थी (शब्द-युग्म) पदबंध

अनुप्रास रहित	तुक एवं अनुप्रास युक्त
आस-पास (पृ॰ ६)	शोक-संताप (पृ॰ १५)
आनंद-विहार (पृ॰ १०)	काँटे-कुश (पृ॰ १५)
भंट- विखार (पृ॰ ८)	कुशल-क्षेम (पृ॰ १९)
बात-चीत (पृ॰ ८)	साधु-संत (पृ॰ २०)
जप-ध्यान (पृ॰ ७)	गण-गंधर्व (पृ॰ २०)
ब्रत-नियम (पृ॰ ९)	झगरा-झंझट (पृ॰ ३९)
नेम-आचार (पृ॰ १९)	सुने-सुनावे (पृ॰ ३५)
पूजा-अर्च्चा (पृ॰ १०)	श्रुति-स्मृति (पृ॰ ३५)
ज्ञान-विज्ञान (पृ॰ ११)	रोते-कलपते (पृ॰ ३६)
कन्द-मूल (पृ॰ ११)	झुठमुठ (पृ॰ ३७)
बोहार-सोहार (पृ॰ ११)	अटवाट-खटवाट (पृ॰ ५९)
भक्त-भाव (पृ॰ ११)	छल-छिद्र (पृ॰ ५९)
ऋषि-योगी (पृ॰ २०)	नाकों-नाक (पृ॰ ५९)
सिखलाते-पढ़ाते (पृ॰ २६)	आधे-आध (पृ॰ ४०)
कुल-परिवार (पृ॰ २७)	बक-झक (पृ॰ ४७)
दैत्य-राक्षस (पृ॰ २८)	बन-ठन (पृ॰ २७)
रोग-व्याधि (पृ॰ २९)	धन्य-धाम (पृ॰ ५०)
जप-पूजा (पृ॰ २९)	सिंगार-पिटार (पृ॰ ५०)

नेम -धर्म (पृ० ३३)
सेवा-टहल (पृ० ५२)
दान-धर्म (पृ० २७)
वेद-पुराण (पृ० ५)
पूजा-ध्यान (पृ० ९)
बुझा-समझा (पृ० ३७)
दान-दक्षिणा(पृ० ७८)
वासन-वर्तन (पृ० ४३)
रोक-टोक (पृ० ५०)
पुआ-पूरी (पृ० ४३)

भिन्नार्थी (शब्दयुग्म) पदबंध

अनुप्रास या तुकरहित

देवता-पितरो (पृ० ५)
आदर-भाव (पृ० ६)
हाथ-पाव (पृ० ६)
पिता-माता (पृ० ११)
सत्य-धर्म (पृ० १०)
हाथी-घोड़ा (पृ० १५)
अन्न-वस्त्र (पृ० १५)
भाई-गोतिया (पृ० १५)
भूषण-वस्त्र (पृ० १५)
अक्षत-चंदन (पृ० १९)
गिध-कौए (पृ० २०)
कास-पीतल (पृ० २१)
तामा-लोहा (पृ० २१)
खाना-पीना (पृ० २१)
कुत्ता-बिलाई (पृ० २३)
हंस-चक्रवाक (पृ० २४)
आश्विन-कार्तिक (पृ० २४)
गौ-भूमि (पृ० २६)
सोना-रूपा (पृ० २६)
देवता-गुरु (पृ० ११)
अतिथि-देवतों (पृ० २५)
पीप-लोहू (पृ० २७)
गंगा-सागर-संगम (पृ० २७)
मनुष्य-देवता (पृ० २८)

अनुप्रास या तुक सहित

भक्ति-भाव (पृ० ११)
कांटे-कुश (पृ० १५)
कुटिल-कठोर (पृ० १५)
फूल-फल (पृ० १५)
भरे-पूरे (पृ० १९)
दुर्भिक्ष-सुभिक्ष (पृ० २४)
मारते-धमकाते (पृ० २६)
तंत्र-मंत्र (पृ० २५)
दही-दूध (पृ० ४०)
भरण-पोषण (पृ० ४०)
वासन-वर्तन (पृ० ४३)
बोहार-सोहार (पृ० ११)
गदा-पद्म (पृ० ३७)
काम-लोभ (पृ ०६)
शास-ससुर (पृ० ३४)
दीन-दयाल (पृ० ३९)

अनुप्रास एवं तुक रहित द्विरुक्ति

करीट -मणि (पृ० ३७)
गदा-पद्म (पृ० ३७)
बंदर-भालू (पृ० ४०)
लड्डू-पेड़े (पृ० ४३)
टीकरी -पैरकिये (पृ० ४३)
जाड़-धूत (पृ० ४७)
निर्दयी-पापी (पृ०-२०)

खड्ग-बरछा (पृ॰ २८)
मुंगरे-लाठी (पृ॰ २८)
स्वामी-मित्र (पृ॰ २८)
क्षत्री-वैश्य (पृ॰ ३४)
धन-संतति (पृ॰ ३७)
शंख-चक्र (पृ॰ ३७)

(ग) विपरीतार्थक (शब्दयुग्म) पदबंध

अनुप्रास या तुकरहित

दिन-रात (पृ॰ ७)
आवा-गमन (पृ॰ १०)
सुख-दुख (पृ॰ १५)
भला-बुरा (पृ॰ ३३)

अनुप्रास या तुक सहित

धर्म्म-अधर्म (पृ॰ १९)
पुण्य-पाप (पृ॰ १८)
उँच-नीच (पृ॰ ३३)
यक्ष-राक्षस (पृ॰ २८)

इनके अतिरिक्त कुछ पदबंध ऐसे भी हैं, जो अपने पदों में अनुप्रासिक पुनरुक्ति द्वारा वाक्यों के गठन में अद्भुत योगदान करते हैं। उनके उदाहरण इस प्रकार हैं :-

(स॰ मि॰ ग्रं॰) विशेषण+संज्ञा

बड़ी बड़ाई (पृ॰ ५)
परम पद (पृ॰ ५)
बारह बरस (पृ॰ ५)
काला केश (पृ॰ १६)
सोरहों शृंगार (पृ॰ ७)
विकसित वदन (पृ॰ ३९)
मनोहर मूरति (पृ॰ ३९)
सुभग सुत (पृ॰ ४२)

(स॰मि॰ग्रं॰) संज्ञा+संज्ञा

हविष्य हाथ दे (पृ॰ ४०)
पौलस्त्य का पोता (पृ॰ ३९)
मोर मुकुट (पृ॰ ४०)
कुंडल कटि में किंकिणी (पृ॰ ४२)
पुरुष पुरातन परमात्मा (पृ॰ ४८)
नर-नारायण (पृ॰ ४९)
कोकिल-कपोल (पृ॰ ८१)
सूर्य-समान

संज्ञा+क्रिया

मुक्ति मिले (पृ॰ ५)
पाँव पखार (पृ॰ ७)
वेद-विक्रय (पृ॰ ३४)
गुण गाय (पृ॰ ३९)
पायस पा (पृ॰ ४०)
लवलीन हो (पृ॰ ४३)
जगजीतने (पृ॰ ७)

संज्ञा+विशेषण+संज्ञा

माया से मोहित मनुष्य (पृ॰ ४९)
चित्र विचित्र (पृ॰ ५)
सूर्य समान (पृ॰ १७)

(घ) मुहावरे

द्विरुक्तियों एवं शब्द युग्मों के क्रम में ही स॰मि॰ग्रं॰ में प्रयुक्त मुहावरों की महत्ता के उल्लेख की

प्रासंगिकता की अस्वीकार नहीं किया जा सकता। "शब्दों या क्रिया प्रयोगों के योग से कुछ विशिष्ट पद बन जाते हैं जो मुहावरे कहलाते हैं। अर्थात् 'मुहावरा' उस गठे हुए पद को कहते हैं जिससे कुछ विशिष्ट लक्षणा-अन्य अर्थ निकलता है और जिसकी गठन में किसी प्रकार का अन्तर होने पर वह लक्षणावाला अर्थ नहीं निकल सकता। यह तो नहीं कहा जा सकता कि मुहावरे से सूचित होनेवाला भाव उसके शब्दों से निकलनेवाले अर्थ से बिलकुल भिन्न होता है, क्योंकि लक्षणा में भी भावार्थ या वाच्यार्थ से कुछ तो संबंध होता ही है, फिर भी मुहावरों के लक्षणा से निकलने वाले भावार्थ में साधारण अर्थ की अपेक्षा कुछ विशेषता आवश्यक होती है।" ①

'अध्यात्म रामायण' के अनुवादक सदल मिश्र संस्कृत के विद्वान् थे। उन्होंने संस्कृत श्लोकों का अनुवाद करते हुए स्रोत-ग्रंथ से आत्मसात् किये हुए भाव की खड़ीबोली में पूर्ण अभिव्यक्ति देने के लिए यथास्थान उन्हीं मुहावरों का प्रयोग किया है, जो सार्थक एवं सटीक हों। श्लोकों के अनुवाद के प्रसंग में अयोध्याकाण्ड के तृतीय सर्ग के श्लोक संख्या ५ एवं ७ में प्रयुक्त 'कोप भवन प्रविष्टा' तथा 'वसुधापृष्ठि पर्यङ्कादीन विहाय च' के लिए क्रमशः 'कोप भवन में जाना' एवं 'अटवाट-खटवाट लेना' मुहावरों का प्रयोग अनुवाद के साथ साथ 'लक्षणा शक्ति' का कार्य करता है। जन प्रचलित मुहावरों का प्रयोग कर 'खड़ीबोली' को खड़ा करने में उनके यह योगदान अभूतपूर्व हैं ये मुहावरे आँख, कान, दाँत नाक, मुँह, केश, शिर, छाती, वदन, गला, हृदय एवं सारे अंगों से संबंधित हैं। इसके अतिरिक्त उनके प्रारम्भिक प्रयास की दृष्टि से विचार करने पर मुहावरों के प्रयोग की कुशलता भी अद्भुत है। राम-भरत मिलन के प्रसंग का निम्नलिखित वाक्य भावाभिव्यक्ति में कितना सफल है, इस तथ्य की परीक्षा उक्त वाक्य में प्रयुक्त मुहावरों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर की जा सकती है:-

"भरत बोले- सुनिये जो **कामवश हो** सदा स्त्री के **कहने में रहे** विस मतिमन्द पिता की कभी बात न मानिये क्योंकि **उसका कहने का भला क्या ठेकाना**, विसकी तो बुद्धि मारी गयी है। राम ने उत्तर दिया - न तो वे मूढ़ थे न कामी ओ न सदा **स्त्री के कहा करते**। आगे कैकयी से बचन हार चुके थे। स०मि०ग्रं०(पृ० ८३)

इन मुहावरों का अर्थ स्पष्ट है, क्योंकि भरत एवं राम के कथोपकथन मुहावरों की लक्षणा शक्ति से परिपूर्ण हैं। भरत का पिता के पहले वरदान के प्रति अपनी अनासक्ति एवं निर्दोषिता सिद्ध करना तथा राम का पिता के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए राज्य के प्रति अपनी उदासीनता तथा उनकी निर्दोषिता सिद्ध करने कि लिए इन मुहावरों का उपयोग अत्यंत सार्थक है। सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त २७५ मुहावरों को नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

मुहावरे (नासिकेतोपाख्यान)

१- फूले फले रहो (बने रहो) (पृ० ६)
२- कान दे सुनो (ध्यान से सुनो) (पृ० १०)
३- फूली फली (स्त्री) (पृ० १६)
४- काना कानी होना (फैलना) (पृ० १३)

---

① अच्छी हिन्दी- रामचन्द्र वर्मा, पृ० १५५

५- रहा नहीं गया (रोक नहीं सके) (पृ० १०)
६- हो न हो (शायद) (पृ० १०)
७- आँखें तृप्त होना (खुशी होना) (पृ० १०)
८- सेवा टहल करना (पृ० १०,१७)
९- हर्ष से दूने होकर (पृ० ११)
१०- विपत की मारी हुई (पृ० १३)
११- कान में जाना (मालूम होना) (पृ० १३,३०)
१२- आग हो गये (पृ० १३,३०)
१३- क्रोध की लहर उठना (पृ० १४)
१४- छाती फटना (व्याकुलता होना) (पृ० १५,८)
१५- उथल पुथल (उथल पुथल) (पृ० १५,२३)
१६- एक चित हो (ध्यान से) (पृ० १६)
१७- क्रोध से लाल आँख करना (पृ० १६,२२)
१८- ज्ञान ठिकाने न रहना (बुद्धि ठिकाने न रहना) (पृ० १८,८)
१९- मुँह न देखाना (सामने आना) (पृ० १९,९)
२०- भरे पुरे रहना (भरा पूरा रहना) (पृ० १९,२४)
२१- करम के फेर से (भाग्य के चक्र से) (पृ० २५)
२२- भुरकुस होना (चूर होना) (पृ० २०)
२३- भांजी मारना (बाधा डालना) (पृ० २)
२४- आपही अकेले चट करना (खा जाना) (पृ० २२)
२५- जनम गँवाना (जीवन व्यर्थ बिताना) (पृ० २३)
२६- कलह कराना (झगड़ा करना) (पृ० २३)
२७- एक से एक (सुंदर से सुंदर) (पृ० २८)
२८- चम्पत हो गये (भाग गये) (पृ० २८)
२९- पानी में पानी-सा मिलना (पृ० ३५,२)
३०- सारा अंग जल उठना (क्रोध होना) (पृ० ७८)
३१- नहीं भावना (अच्छा नहीं लगना) (पृ० ७८)
३२- चल खड़े भये (पृ० ७९)
३३- निहाल होना (पृ० ९३)
३४- धूर को सिर चढ़ाना

३५- मृत्यु का आकर घेरना (पृ० ९३)
३६- डेरा डाल देना (रुक जाना) (पृ० ७९)
३७- गंजन करना (दुर्दश करना) (पृ० ९३)
३८- दांत कट कटाकर (पृ० ९४)
३९- अंग भंग करना (पृ० ९४)
४०- नाक काट डालना (पृ० ९५)
४१- आँखों में तनिक नींद न आना (पृ० ९५)
४२- अपने दोनों कानों पर हाथ देना (पृ० ९९)
४३- चित्र समान हो गयी (पृ० १००)
४४- जी ठंडा होना (पृ० १०३)
४५- खंड-खंड कर डालना (पृ० १०३)
४६- धरती पर लोहा देना (पृ० १०३)
४७- फूँक दिया (पृ०-१०३)
४८- मन के बोरे होना (पृ० १०८)
४९- छाती से लगाना (पृ० १०९)
५०- खेद करना (पृ० १०९)
५१- लाल लाल आँखें कर (पृ० ११०)
५२- हँसी होना (पृ० ११२)
५३- अग्नि साक्षी करना (पृ०-११०)
५४- वचन बद्ध होना (पृ० ११०)
५५- मद से मात कर (पृ० ११०)
५६- मुक्का जड़ना (पृ० ११०)
५७- भागा-भागा फिरना (पृ० ११०)
५८- हर लेना (चुराना) (पृ० ११०)
५९- अछता-पछता कर (हारकर) (पृ० ११०)
६०- चरण कमल का आना (पृ० ११०)
६१- युद्ध के लिए पुकारना (पृ० १११)
६२- क्रोध से मूर्च्छित होना (पृ० १११)
६३- धन्य धन्य करना (शवाशी देना) (पृ० १११)
६४- बड़ा भाग होना (पृ० १११)
६५- चित्र लवलीन रहना (पृ० ११२)

६६- अनुग्रह करना (पृ॰ ११२)
६७- न देखने में आना न सुनने में (पृ॰ ७)
६८- दिन रात सेवा टहल में रहना (पृ॰ ७)
६९- (विधि ने) अपने हाथ से बनाया अत्यन्त सुंदर (पृ॰ ७)
७०- सोरहो शृंगार करना (पृ॰ ७)
७१- कुल में कलंक होना (पृ॰ ८)
७२- विलाप करना (पृ॰ ९)
७३- चहुँक उठना (पृ॰ ९)
७४- विपत्ति में पड़ना (पृ॰ ९)
७५- सुनते ही आग होना (पृ॰ १३)
७६- क्या राजा क्या प्रजा (कहावत) (पृ॰ १५)
७७- भाई गोतिया हित मीत (कहावत) (पृ॰ १५)
७८- हाय हाय करना (पृ॰ १७)
७९- रोना कल्पना (पृ॰ १७)
८०- विसराना (पृ॰ १७)
८१- मुँह पर बड़ाई करना (पृ॰ १६)
८२- पीठ ठोंकना (पृ॰ १६)
८३- सदा फूला फला रहना (पृ॰ १६)
८४- ज्ञान ठिकाने में न रहना (पृ॰ १८)
८५- मुख से बात निकलेना (पृ॰ १८)
८६- मनारे का पुराना (पृ॰ १८)
८७- ला खड़ा करना (प्रस्तुत करना) (पृ॰ १९)
८८- कबहीं न मुँह देखना (पृ॰ १९)
८९- मन के वेग समान चलना (पृ॰ १९)
९०- भरे पूरे रहना (सुखी रहना) (पृ॰ १९)
९१- श्रवण से रोमांच होना (पृ॰ २०)
९२- सबसे बैर साधना (पृ॰ २२)
९३- गंजन होना (दुर्दशा करना) (पृ॰ २२)
९४- दुर्गति होना (पृ॰ २३)
९५- मुँह नहीं देखना (सामने नही जाना) (पृ॰ २३)
९६- चित्त देना (मन लगाना) (पृ॰ २४)

९७- चम्पत होना(गायब होना) (पृ॰ २८)
९८- झूठ कलंक लगाना (पृ॰ ३३)
९९- काम के दास होना (पृ॰ ३५)
१००- झगरा झंझट रहना (पृ॰ ३४)
१०१- पानी में पानी सा मिलना (पृ॰ ३५)
१०२- सुसक सुसक रोना (पृ॰ ४३)
१०३- दशन कटकटाय (पृ॰ ४५)
१०४- जलाकर भस्म कर डालना (पृ॰ ४५)
१०५- मार गिराना (पृ॰ ४५)
१०६- धूम मचाना (पृ॰ ४६)
१०७- टकसाये नहीं टकसना (पृ॰ ४६)
१०८- सुचित होना (निश्चिंत होना) (पृ॰ ४६)
१०९- कामवश होना (पृ॰ ४६)
११०- थर थर काँपना (पृ॰ ४६)
१११- नीचे ऊपर निहारना (पृ॰ ४६)
११२- गिड़गिड़ा गिड़गिड़ा कहना (पृ॰ ४७)
११३- हुलसित होना (पृ॰ ५१)
११४- जनम सुफल होना (पृ॰ ५१)
११५- शिष्टाचार करना (पृ॰ ५०)
११६- प्रण रहना (पृ॰ ५१)
११७- मनोरथ फलना (पृ॰ ५१)
११८- आरत हो बषानना (पृ॰ ५१)
११९- कड़ी कड़ी बैन सुनाना (पृ॰ ५३)
१२०- आपही धुनना (पृ॰ ५३)
१२१- शिर भुट्टा सा उड़ाना (पृ॰ ५३)
१२२- मुँह चुकिया सा होना (पृ॰ ५३)
१२३- आँषन में आँसू भरना (पृ॰ ५४)
१२४- उठ खड़े होना (पृ॰ ५४)
१२५- पर का भला नहीं देख सकना (पृ॰ ५७)
१२६- बड़ों का कहा टाल ना सकना (पृ॰ ५७)
१२७- मन का संदेह जाना (पृ॰ ५८)

१२८- अमंगल बोलना (पृ० ५८)

१२९- लागू होना (झगड़ा होना) (पृ० ५८)

१३०- मुँह फुलाना (पृ० ५८)

१३१- अवसर पीछे शिर दे मारना (पृ० ५९)

१३२- पलटा देना (बदले में देना) (पृ० ५९)

१३३- अटवाट खटवाट लेना (पृ० ५९)

१३४- कोप भवन में जाना (पृ० ५९)

१३५- बैर रखना (पृ० ६०)

१३६- लाग रषना (पृ० ६०)

१३७- आकुल होना (पृ० ६१)

१३८- दिन दिन छिजना (पृ० ६४)

१३९- पाँव चारे चलना (पृ० ६७)

१४०- होनी होना (पृ० ६७)

१४१- अपनी अपनी कमाई होना

१४२- भरोसा देना (पृ० ७१)

१४३- कानो पर हाथ दे कहा (पृ० ७२)

१४४- क्षण में बिला जाना (पृ० ६४)

१४५- तार की छाँह सा चंचल (पृ० ६४)

१४६- बाट निहारना (पृ० ७४)

१४७- भूष प्यास से मरना (पृ०-७५)

१४८- पावे की धुनि सुनि (आहट से) (पृ० ७५)

१४९- छाती पीट पीट रोना (पृ० ७६)

१५०- काज सँवार रखना (पृ० ७६)

१५१- भौंचक होना (चकित होना) (पृ० ७७)

१५२- पीछा नहीं छोड़ना (पृ० ७७)

१५३- सारा अंग जल उठना (पृ०-७८)

१५४- तनिक नहीं भावना (पृ० ७८)

१५५- जीव से मार डालना (पृ० ७९)

१५६- चल खड़े होना (पृ०-७९)

१५७- एकेला जान मारने को चलना (पृ० ७९)

१५८- डेरा डाल देना (ठहरना) (पृ० ७९)

१५९- नाकों नाक मर जाना (संतुष्ट करना) (पृ० ८१)
१६०- निहाल होना (पृ० ८१)
१६१- स्वर्गधाम को जाना (पृ० ८२)
१६२- भला बुरा बताना (रास्ता दिखाना) (पृ० ८२)
१६३- पिण्ड पारना (पृ० ८२)
१६४- छाती लगाना (पृ० ८२)
१६५- भला क्या ठेकाना (क्या विश्वास) (कहावत) (पृ० ८२)
१६६- बुद्धि मारी जाना (पृ० ८३)
१६७- वचन हार चुकना (पृ० ८३)
१६८- गात रोमांच हो आना (पृ० ८६)
१६९- लोहू लोहान होना (पृ० ८६)
१७०- अज्ञानता से अंधा होना (पृ० ८८)
१७१- बड़े भाग्य होना (पृ० ९०)
१७२- कान में जा पड़ना (सुनायी पड़ना) (पृ० ९०)
१७३- आनंद विहार करना (पृ० ९१)
१७४- विहार करना (पृ० ९३)
१७५- ठठा करना (मजाक करना) (पृ० ९३)
१७६- दाँत कटकटाकर (अतिक्रोध से) (पृ० ९४)
१७७- अंग भंग करना (पृ० ९४)
१७८- जड़ ही काट डालना (पृ० ९५)
१७९- तनिक नींद न आना (पृ० ९५)
१८०- गाजना (आनंद मनाना) (पृ० ९६)
१८१- बैर बैसाहना (झगड़ा मोल लेना) (पृ० ९६)
१८२- मारने को टूटना (आक्रमण करना) (पृ० ९६)
१८३- शिषावन अच्छा लगना (पृ० ९७)
१८४- दोनो कानों पर हाथ देना (पृ० ९५)
१८५- चित्र समान होना (पृ० १००)
१८६- थर थर काँपना (पृ० १००)
१८७- बदन शुष जाना (डर जाना) (पृ० १०१)
१८८- सिंगार पटार भूलना (पृ० १०१)

१८९- जानकर भी अनजान होना (पृ० १०१)
१९०- कान मूँदना (नहीं सुनना) (पृ० १०२)
१९१- रहा न जाना (पृ० १०२)
१९२- जी ठंढा होना (संतोष होना) (पृ० १०२)
१९३- खंड खंड कर डालना (पृ०-१०२)
१९४- मार कर धरती पर लोटाना (पृ० १०३)
१९५- फूँक देना (जला देना) (पृ० १०३)
१९६- अहेर खेलना (शिकार करना) (पृ० ०४)
१९७- कनषी चलाना (इशारा करना) (पृ० १०५)
१९८- अग्नि साक्षी करना (पृ० १०९)
१९९- मद से मातना (पृ० ११०)
२००- अछता-पछता (पृ० ११०)
२०१- भागा-भागा फिरना (पृ० ११०)
२०२- युद्ध के लिए पुकारना (पृ० १११)
२०३- लवलीन रहना (पृ० ११२)
२०४- हँसी होना (पृ० ११२)
२०५- अधमुआ होना (पृ० ११३)
२०६- बंटमार की भाँति छिपकर मारना (पृ० ११५)
२०७- शिर का बार छितराये (दीन दशा में) (पृ० ११६)
२०८- तिलक देना (पृ० ११७)
२०९- बाट निहारना (प्रतीक्षा करना) (पृ० १२०)
२१०- किचकिचा उठना (क्रोध करना) (पृ० १२०)
२११- दाँत पीसना (पृ० १२०)
२१२- एक से एक (महावीर) (पृ० १२२)
२१३- गरे लगाना (पृ० १२५)
२१४- चौकी करना (रखवाली करना) (पृ० १२७)
२१५- आँषे खुलना (जागना) (पृ० १२७)
२१६- सहाय होना (पृ० १३२)
२१७- मन में कहना (सोचना) (पृ० १३४)
२१८- आँषों में आँसू भरना (पृ० १३४)
२१९- जीवन अकारथ जाना (पृ० १३५)

२२०- वहीं रह जाना (मर जाना) (पृ० १३१)
२२१- अंगीकार करना (स्वीकार करना) (पृ० १४०)
२२२- फंद में पड़ना (बंधन में पड़ना) (पृ० १४०)
२२३- षेम कुशल कहना (पृ० १४३)
२२४- जी घबराना (पृ० १४५)
२२५- जान लेना (पृ० १४५)
२२६- चौकी देना (पृ० १४५)
२२७- झुंड के झुंड होना (पृ० १४६)
२२८- कुछ यत्न न ठहरना (पृ० १४६)
२२९- पीछा करना (पृ० १४७)
२३०- ग्रह शिर पर होना (पृ० १४७)
२३१- जीते नहीं छोड़ना (पृ० १४७)
२३२- खिला-पिला कर बड़ा करना (पृ० १४७)
२३३- शिर काट डालना (पृ० १४८)
२३४- काल उत्पन्न होना (मृत्यु आना) (पृ० १४८)
२३५- काल शिर पर चढ़ना (मृत्यु आना) (पृ० १४८)
२३६- हीत बात कहना (पृ० १४८)
२३७- अकाज होना (हानि होना) (पृ० १४९)
२३८- झुठमुठ दौड़ना (पृ० १५३)
२३९- लाज नहीं लगना (पृ० १३५)
२४०- सुना नहीं जाना (पृ० १५३)
२४१- चढ़ दौड़ना (पृ० १५५)
२४२- पहला होना (पृ० १५५)
२४३- कोप से लाल होना (पृ० १५५)
२४४- पटरा करना (भोजपुरी) (मारना) (पृ० १५६)
२४५- जीभ लरखराना (पृ० १५९)
२४६- बैदकी कराना (चिकित्सा कराना) (पृ० १६०)
२४७- जड़ काटना (पृ० १६०)
२४८- हाहास करना (पृ० १६२)
२४९- चौकी में रहना (पृ० १६३)

२५०- माया रचना (छल) (पृ० १६३)

२५१- अंग लोहू लोहू होना (पृ० १६४)

२५२- हृदय से लगाना (पृ० १६५)

२५३- ढाह देना (भोजपुरी) (तोड़ना) (पृ० १६६)

२५४- अंक में लगाना (पृ० १७३)

२५५- भर इच्छा देना (पृ० १७४)

२५६- आवभगति करना (पृ० १७७)

२५७- आपदा हरना (पृ० १७९)

२५८- एक कौड़ी भी न देना (पृ० १८०)

२५९- गिणती में होना (पृ० १८२)

२६०- बंधन में फँसना (पृ० १९४)

२६१- वश में रखना (पृ० १९४)

२६२- जयजयकार करना (पृ० १९५)

विन्यास की दृष्टि से - वाक्य

वाक्यों का स्वभाव यह है कि वे बोलचाल में छोटे होते हैं जबकि लेखन में प्रायः बड़े होते हैं। वाक्य की संरचना पदों से होती है, अतः वाक्य-विन्यास में मुख्यतः चार बातों का महत्त्व होता है :-

१) पदक्रम

२) अन्वय

३) लोप

४) आगम

(१) पदक्रम या शब्दक्रम :- वाक्य रचना में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत एवं हिन्दी के पदक्रम के नियम काफी भिन्न हैं। संस्कृत में कर्ता, कर्म एवं क्रिया आदि पदों के वाक्य में पहले-पीछे परिवर्तित हो जाने से अर्थ में अधिक अंतर नहीं होता, जबकि हिन्दी में बहुत अंतर हो जाता है। संस्कृत भाषा से अनूदित ग्रंथों में इस बात की पूरी सतर्कता बरती जाती है अन्यथा अनुवाद में भाषा के स्वरूपों में अंतर होने के कारण अर्थान्तर होने की आशंका रहती है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त वाक्यों में पदक्रम की स्थिति प्रेमसागर में प्रयुक्त वाक्यों की तुलना में अधिक उपयुक्त कही जायेगी। प्रेमसागर में 'तुकात्मकता' के प्रयास में पदक्रम खड़ी बोलीगद्य के अनूरूप न होकर पद्यात्मक हो गया है और इसके अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जब लगातार यही स्थिति कई वाक्यों तक जारी रहती है।

---

① प्रेमसागर ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी द्वारा प्रकाशित पृ० ६७

'कर्ता, हरता, भरता, तुम्हीं हो भगवान, भक्तों के हेतु संसार में आप धरते हो वेष अनन्त और सुर नर मुनि हैं तुम्हारे ही अंश सदा सहते ही विराट स्वरूप।'① इसमें खड़ीबोली के अनुसार उपयुक्त पदक्रम इस प्रकार होना चाहिए था- भगवान तुम्हीं कर्ता,हरता,भरता हो, भक्तों के हेतु संसार में आप अनंत वेष धरते हो और सुर नर मुनि तुम्हारे ही अंश हैं।सदा विराट् स्वरूप रहते हो। इसी तरह का एक और वाक्य द्रष्टव्य है :- "तब चतुर्भुज हो उसके पास जाय लगे दो हाथों से अलक संवारने" प्रेमसागर (पृ० १३७) ।

उपयुक्त पदक्रम :- "तब चतुर्भुज हो उसके पास जाय दो हाथों से अलक सँवारने लगे।" कहने का तात्पर्य है कि लल्लू लाल जी ने 'प्रेमसागर' में वाक्यों की रचना में कर्ता, कर्म, क्रिया या क्रिया विशेषण पदों के क्रम पर अधिक ध्यान न देकर 'तुक' पर ही अधिक ध्यान दिया है। वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि लल्लू जी लाल ने गद्य रचना में कथावाचकीय शैली अपनायी है। सामान्य अनौपचारिक ढंग से जिस प्रकार वार्तालाप या कथावाचन चलता है, वही लेखन में ज्यों का त्यों आ गया है। भाषा पर कथावाचन शैली का प्रभाव होने के कारण प्राय: तत्कालीन सभी गद्य लेखक लेखन आरंभ-कारक क्रिया का प्रयोग क्रियार्थक संज्ञा करने आदि से बात करते हैं।

लेकिन उसी युग के लेखक सदल मिश्र के वाक्यों की संरचना में तुकात्मकता के प्रयास का अभाव न होने के कारण स्थिति भिन्न है। उनकी रचना 'चन्द्रावती' एवं 'रामचारित' से ऐसे कुछ वाक्यों की परीक्षा की जा सकती है। यह सही है कि उनके कुछ वाक्यों में पदक्रम की स्थिति त्रुटिपूर्ण हो सकती है,लेकिन उनके अधिकांश वाक्य अपने समकालीन लेखकों के वाक्यों की तुलना में कहीं अधिक सुगठित एवं नियमित है। ① 'चन्द्रावती' (पृ० ७) का एक मिश्रवाक्य परीक्षा के लिए उद्धृत है:- "वहां चन्द्रावती नाम उस राजा की महासुंदरी कन्या, जिसके लक्षणों का वर्णन न तो किया जाता है, न तो कोई वैसी देवतों की कन्या न गन्धर्व और नागों की देखने में आई न सुनने में कि जिसके रूप को देखके जग जीतनवाले कामदेव भी मोहित होए और तीनों लोक में ऐसा कोई नहीं कि उसकी आँखों के देखने से अचेत हो न गिरे। दस सहस्र राजों की कन्या दिन रात उसकी सेवा टहल में रहती थीं, अपने बाप के घर में नाना भाँत विहार करतीं।"

इस बड़े वाक्य में पदक्रम के कारण पढ़ने या अर्थ-ग्रहण में अधिक कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। वाक्य के बड़े हो जाने से 'वहां चन्द्रावती नाम उस राजा की महासुंदरी कन्या 'वाक्यांश' अपने बाप के घर में नाना भांति आनंद विहार किया करती" वाक्यांश से बहुत दूर हो गया है। यह त्रुटि भी बोलचाल की भाषा या कथावचन शैली के कारण नहीं आयी है, बल्कि संस्कृत के श्लोक को एक ही वाक्य में अनूदित करने के प्रयास के कारण आयी है।

इसी क्रम में एक दूसरा वाक्य द्रष्टव्य है- वैशम्पायन जनमेजय से कहते हैं कि हे महाराज! उस राजा की चन्द्रावती कन्या तरुण अवस्था में सहेलियों के साथ सब दिन गंगा स्नान कार षट्रस भोजन

---

① प्रेमसागर की भाषा का रूपात्मक और विन्यासमूलक अध्ययन - (१९७५) मेरठ विश्वविद्यालय - उर्वशी अरोड़ा

को सोरहो शृंगार किया करती थी।'' इस वाक्य का पदक्रम हर तरह से उपयुक्त एवं सुगठित है।

सदल मिश्र की दूसरी कृति 'रामचरित' के अंतिम पृष्ठ के कुछ वाक्य इसी दृष्टि से विचार योग्य हैं-

" इस प्रकार से पुरुष पुरातन श्री रामचन्द्र जबकि भाईन समेत ज्योति सरूप हुए तब इन्द्र ब्रह्मादिक देवता औ सिद्ध मुनि यज्ञ ...... गन्धर्व औ पितर लोग ये सब पूरण मनोरथ हो मारे आनंद के आंषों में आंसू भरने लगे विनको पूजने ओ हाथ जोड़ स्तुति करने तब ब्रह्मा से विष्णु ने कहा- सुनो प्रजापति ये लोग मेरे बड़े भक्त हैं मेरे साथ स्वर्ग चलने को सब आये हैं, इनमें कीट पतंग हैं वे भी पुण्यात्मा हैं वे मनुष्यों की तो क्या बात है तिससे वैकुण्ट समान जो स्थान है वहाँ इन सभों को मेरी आज्ञा से ले जाकर स्थापित करो।''①

इतने बड़े संयुक्त वाक्य में पदक्रम की त्रुटि सिर्फ "आंषों में आंसू भर लगे विनको पूजने औ हाथ जोड़ स्तुति करने'' वाक्यांशों में है, जिन्हें इस प्रकार होना चाहिए था "आंषों में आंसू भर विनको पूजने और हाथ जोड़ स्तुति करने लगे।''

खड़ी बोली में 'रामचरित' की कथा के अंतिम वाक्यों का गठन कितना सही है, इस बात का प्रमाण उनकी समीक्षा से मिलता है। वे वाक्य इस प्रकार हैं- " इतनी बात सुनते ही अति हर्षित हो आचमन कर सकल वानर राक्षस आदि ने तुरंत शरीर त्याग किया औ आगे की भाँति देव सरूप हो वैकुण्ठ धाम को गये। तिनमें सुग्रीव की उत्पत्ति सूर्य से थी इस कारण वह उन्हीं में जा मिला। इस प्रकार तिनके वहां जाते ही पशुपक्षीन समेत जितने लोग राम संग गये थै सो सब सरजू में जा हरि को सुमर मानुष की देह तज उत्तम शरीर धारण कर नाना आभरणन से भूषित हो विमानों पर चढ़ सांतनिक लोक को गये।

उपुर्यक्त वाक्यों में पदक्रम की त्रुटि दृष्टिगत नहीं होती, पर उनके पूर्वकालिक क्रियाओं के कारण वाक्य बोझिल हो गया है।

२) अन्वय - अन्वय का अर्थ है व्याकरण की अनुरूपता। विभिन्न भाषाओं में विशेषण-विशेष्य, कर्ता-क्रिया, कर्म-क्रिया आदि विभिन्न व्याकरणिक कोटियों में लिंग, वचन पुरुष तथा मूल और विकृत रूप आदि की अनुरूपता होती है। अन्वय की दृष्टि से 'प्रेसमागर' के कुछ वाक्य द्रष्टव्य हैं :-

"तुमने अनजाने में जो दान दी हुई गाय फिर दान दी, उसी पाप से आपको गिरगिट हो बन के बीच गोमती तीर अंधे कुएं में रहना होगा।'' २- इस वाक्य में अन्वय संबंधी कोइ त्रुटि नहीं प्रतीत होती। लेकिन प्रथम उपवाक्य का कर्ता 'तुमने' दूसरे उपवाक्य में आप में बदल गया है जो उपयुक्त नहीं।

इसी प्रकार सदल मिश्र ग्रंथावली के वाक्य भी अन्वय की दृष्टि से प्रायः त्रुटिरहित हैं। कुछ वाक्य प्रमाण स्वरूप उद्धृत हैं:-

---

① सदल मिश्र ग्रंथावली - पृष्ठ २०५

(क) "लक्ष्मण का जीवन सफल हो चुका क्यूंकि हर्षित हो वन में भी जा सदा राम की सेवा टहल करते हैं" इसमें क्यूंकि के बाद कर्ता के रूप में 'वे' प्रयुक्त होना चाहिए था।

(ख) "देषो जो राजा जनक की बड़ी सुकुमारी लड़की सुथरी सी अटारी में रत्न के पलंग पै अति कोमल बिछौने पर राम समेत सुख से सोती थी सो इन कुशों पर पति सहित क्यूं कर पौढ़ी होगी।

ऊपर के दोनों वाक्यों में लिंग-वचन संबंधी अन्वय के नियम के पालन के सटीक प्रमाण मिलते हैं।

३) लोप- वाक्य-रचना में सभी अपेक्षित शब्दों का प्रयोग सर्वदा नहीं किया जाता। कभी-कभी कुछ शब्दों का लोप हो जाता है। किन्तु ऐसे शब्दों के लोप में सतर्कता जरूरी होती है, अन्यथा अर्थाभिव्यक्ति में त्रुटि आ सकती है और इस लोप के कारण ही अन्वय संबंधी भूल भी हो सकती है,जैसा कि ऊपर के वाक्य (क) के संदर्भ में देखा गया है। लल्लू जी लाल रचित 'प्रेमसागर' में भी इस प्रकार के लोप के उदाहरण मिलते हैं।

"ऐसे कह कितनी एक दूर बन में जाय तब जाना कि यहाँ से बछड़े ब्रह्मा ले गया, तब श्री कृष्ण वैसे ही बछड़े बनाये लाये। ('प्रेमसागर पृ० २६,ज्ञा०म०') इस वाक्य में 'जाना' क्रिया के कर्ता का लोप हो जाने से अर्थ में बाधा आती है। कर्ता के लोप के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं:-

१) डर कर नयन मूँद लगा थर-थर कांपने।

२) ऐसे हो गये कि जैसे भिन्न बादल एक हा जायं। (प्रेमसागर, पृ० २६,ज्ञा०म०)

३) जिस समय चारों ओर सघन बन देख वृक्षों की बड़ाई करने लगे कि देखो, ये संसार में आ अपने ऊपर कितने दुख सह लोगों का सुख देते हैं (प्रेमसागर, पृ० ३८, ज्ञा०म०प्र०)

ऊपर के वाक्यों में कर्ता के लोप के उदाहरण दिये गये हैं। सदल मिश्र के युग में भी कर्म, क्रिया एवं वाक्यांशों के लोप के भी उदाहरण मिलते हैं, लेकिन उनसे अर्थ में कोई अन्तर नहीं होता। कर्म लोप का उदाहरण निम्नलिखित वाक्य में है :-

"उन्हें देखते ही जानकी समेत रघुनायक तुरंत उठ खड़े भये और शिर झुकाय प्रणाम कर कुशल क्षेम पूछ आसन पर बिठला प्यार कर यह वचन कहने लगे।" इस वाक्य में "शिर झुकाय प्रणाम कर" के पहले 'उन्हें' की अवश्यकता प्रतीत होती है।

४) आगम - कभी-कभी आवश्यकता न होने पर भी कुछ अतिरिक्त शब्दों को आगम कर दिया जाता है निम्नलिखित वाक्यों में 'कि' शब्द का 'आगम' प्रतीत होता है :-

(क) "दस सहस्त्र नृपराजाओं की कन्या के बीच रहके कि किसी पुरुष का मुँह अपने जानने में न देखा" (स०मि०ग्र०पृ०१०)

(ख) तब ऐसे बक झक खिजला कर सुरपति ने मेघ पति को बुलाय भेजा।

(प्रेमसागर, पृ० ४४,ज्ञा०म०)

रचना की दृष्टि से

वाक्यों की रचना-प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने वाक्य के निम्नलिखित भार भेद गिनाये हैं-

१) सरल वाक्य - इसमें एक उद्देश्य और एक विधेय होता है।

२) उपवाक्य - जब दो या इससे अधिक सरल वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बनाते हैं, तो उस एक वाक्य में जो वाक्य मिले होते हैं उन्हें उपवाक्य कहते हैं। अंग्रेजी वाक्य-विज्ञान के अनुसार ये उपवाक्य १- स्वतंत्र एवं २- आश्रित दो प्रकार के हो सकते हैं। आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते है। १- संज्ञा उपवाक्य २- विशेषण उपवाक्य ३- क्रिया विशेषण उपवाक्य। स्वतंत्र उपवाक्य ही प्रधान उपवाक्य हो सकता है।

३) मिश्र वाक्य - जिस वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य तथा एक या एक से अधिक आश्रित उपवाक्य हों।

४) संयुक्त वाक्य - जिस वाक्य में कोई भी उपवाक्य प्रधान अथवा आश्रित न हो।

सदल मिश्र ग्रंथावली में सरल वाक्यों की तुलना में मिश्र एवं संयुक्त वाक्यों का प्रयोग अधिक हुआ है। मिश्र वाक्यों में विशेषण उपवाक्यों की संख्या किसी-किसी वाक्य में तीन-तीन चार-चार से भी अधिक हो गयी है। 'चन्द्रावती' में सरल वाक्यों का भी प्रयोग पर्याप्त रूप में मिलता है। अनुवाद से संबंधित द्वितीय अध्याय में यह कहा गया है कि 'चन्द्रावती' भावानुवाद प्रधान रचना है, जबकि 'रामचरित' एक अनूदित रचना है। स्थल-स्थल पर देवताओं की महिमा के गान के प्रसंग में मिश्र वाक्यों की आवश्यकता एवं उपयोगिता अपरिहार्य हो जाती है इसी प्रकार युद्धादि घटनाओं के वर्णन में संयुक्त वाक्यों की सहायता के बना लेखक को श्लोकों के अनुवाद में असुविधा होना स्वाभाविक था। 'चन्द्रावती' का प्रथम वाक्य एक मिश्र वाक्य है- "चित्र विचित्र सुन्दर सुन्दर बड़ी बड़ी अटारिन से इन्द्रपुरी समान शोभायमान नगर कलिकत्ता, महाप्रतापी और नृपति कम्पनी महाराज के सदा फूला फला रहे कि जहाँ उत्तम उत्तम लोग बसते हैं औ देश देश से एक से एक गुणी जन आय आय अपने अपने गुण को सुफल करि बहुत आनंद में मगन होते हैं।

विश्लेषण इस प्रकार है -

१) महाप्रतापी वीर नृपति कम्पनी महाराज के ....नगर सदा फूला-फला रहे - प्रधान वाक्य

२) जहाँ उत्तम उत्तम लोग बसते हैं (विशेषण उपवाक्य)

३) जहाँ देश देश से गुणी जन आय आय अपने अपने ....मगन होते हैं। (विशेषण उपवाक्य)

'चन्द्रावती' में प्रयुक्त सरल वाक्यों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं- **(स॰मि॰ग्रं॰)**

१) देखते ही उद्दालक ऋषि उठ खड़े भये (पृ॰ ५)

२) घड़ी भर में वो गंगा के तट पर जा पहुँची (पृ॰ ५)

३) इस प्रकार प्रार्थना कर उठ खड़ी भई (पृ॰ ११)

४) इतने में गर्भ नाभी से हृदय में आया (पृ० ११)

ऊपर के सरल वाक्यों से यह स्पष्ट है कि लेखक ने 'उद्देश्य' का कहीं-कहीं लोप कर दिया है।

'रामचरित' में प्रयुक्त सरल, मिश्र एवं संयुक्त वाक्यों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:-

(१)सरल वाक्य

केवल क्रिया से बने वाक्य तथा विस्तार (स०मि०ग्रं०)

क्रिया - देषो (पृ० ११९)

संयुक्त क्रिया - ले आओ (पृ० १२०)

कर्म तथा क्रिया से बने वाक्य एवं विस्तार

कर्म -क्रिया - भय मत करो (पृ० १२५)
कर्म का विस्तार - जो कर्म किया (पृ० १२८)

कर्ता तथा क्रिया से बने वाक्य एवं विस्तार

कर्ता - क्रिया - तुम बता ओ (पृ० १०२)
कर्ता का विस्तार क्रिया - बिन शिर पांव का यह राक्षस है (पृ० १०४)

कर्ता - कर्ता का विस्तार - क्रिया विशेषण तथा क्रिया

कुछ विचार नहीं है (पृ० १०४)

कर्ता - कर्म तथा क्रिया से बने वाक्य एवं विस्तार

तुम तो लछुमण से भी अधिक राम के भक्त हो (पृ० ८१)

कर्ता - कर्म - क्रिया विशेषण तथा क्रिया

मारे पीड़ा के अब मैं प्राण तजता हूँ (पृ० ७५)

२) मिश्रित वाक्य

मुख्य उपवाक्य के साथ विभिन्न उपवाक्यों का प्रयोग संज्ञा उपवाक्य

वाक्य - कि वे तो आज कोप भवन में हैं (पृ० ६०)
कि किसी प्रकार से सीता को श्री रघुनाथ से अब मैं व्याहूँ (पृ० ५) संज्ञा का समानाधिकरण

संज्ञा उपवाक्य एवं विशेषण उपवाक्य (पृ० ८५)

१) ऋषि ने कहा (मुख्य उपवाक्य)
२) कि मेरी भार्या बहुत दिनों से तप कर रही है (संज्ञा उपवाक्य)

३) जो निपट बुढ़िया हो रही है। (विशेषण उपवाक्य)

क्रिया विशेषण उपवाक्य

१) तब देख अनुसूया अति हर्षित हुई (तो) गरे लगा बहुत प्यार कर सीता को बिठलाया (पृ॰ ८५)

२) जब खा पी सब सुचित भयो तब हाथ जोड़ (कालवाचक) अनुसूया ने राम से कहा (पृ॰ ८५)

३) जब तक वे सब गंगा पार हो गये तब तलक मैं वहां ही खड़ा था (पृ॰ ७४)

४) रामचन्द्र कुष पर अति सुख मान ऐसे शो रहे (रीतिवाचक) कि मानो अटारी पर जानकी के संग अच्छे सुथरे पलंग पे पौढे होंए (पृ॰ ६८)

५) ऐसे रामचन्द्र हर्षित हुए कि जैसे इन्द्राणी संग लिये इन्द्र हर्षाये

६) जैसे जीव से काया चेतन होती है, तैसे ही (तुलनात्मक) अहंभाव से जीव को यह बुद्धि होती है (पृ॰ १२८)

७) कुशल क्षेम से जो मनुष्य रहे तो किसी न किसी (कार्य कसाधवाचक) दिन विससे भेंट अवश्य हो (पृ॰ १७६)

८) जिसने जहाँ सुना, वहीं से वह राम पास दौड़ा (पृ॰ १३३)

संज्ञा-विशेषण-क्रिया विशेषण उपवाक्य = मिश्र वाक्य

१) तय यह जान लीजै । १- मुख्यवाक्य

२) कि रावण का विनाश हो चुका है २- संज्ञा उपवाक्य

३) क्यूंकि तीनों लोक में ऐसा किसीं को हम नहीं देखते ३- क्रिया विशेषण उपवाक्य

४) जो रण में तुम्हारे सामने ठहर सके (पृ॰ १४५) ४- विशेषण उपवाक्य

संयुक्त वाक्य

१) इनमें कितने एक तो अरुनाचल नाम पहार पर के रहने वाले हैं जो कितने मेरु ओ मन्दराचल के बसने हारे (हैं) (पृ॰ १२१) वाचक ओ 'पर'

२) मैं अकेला ही जाकर मार डालता पर अकेला हूँ (पृ॰ १२७) 'पर'

३) मै कुछ दुख न दूंगी वरन मैं जो कुछ कार्य होगा सब करूंगी। (पृ॰ ६६) वाचक वरन

४) सीता का समाचार ले आये वे सब नहीं तो आपका काज किये बिना मेरे मधुवन में कभी जा शकते (पृ॰ १६३) नहीं तो

ऊपर लिखे अनुसार स॰मि॰ग्रं॰ में सरल, मिश्र एवं संयुक्त तीनों प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया गया है। अर्थ के अनुसार वाक्य के

(१) विधि

(२) निषेध

(३) प्रश्न

(४) अनुज्ञा

(५) इच्छा

(६) संकेतार्थ

(७) विस्मयादि एवं

(८) संदेह सूचक भेदों पर क्रिया के प्रसंग में सोदाहरण विचार किया जा चुका है।

आधुनिक गद्य पर अंग्रेजी वाक्य विन्यास के अनुसार 'कथन भेद' पर आधारित 'प्रत्यक्ष' एवं अप्रत्यक्ष कथन से संबंधित वाक्यों पर विशेष रूप से विचार करना इस कारण आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि सदल मिश्र के युग तक हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी भाषा का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता अतः अनूदित रचना सदल मिश्र ग्रंथावली में मूल के अनुसार ही 'कथन' प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत हैं। इस कथन की एक विशेषता यह है कि 'कि' संयोजक का प्रयोग बहुत कम किया गया है और अधिकांश कथन योजक चिह्न (-) के बाद प्रस्तुत किये गये हैं जैसे :-

१) भरत ने उत्तर दिया - महाराज मुजको इसे क्या काम, महाराजाधिराज रामचन्द्र हैं मैं उनका दास हूँ (पृ०-७९)

२) प्रणाम कर यह वचन कहने लगा - महाराज मैं विद्याधर हूँ। (पृ०-८७)

***

अनुवादक के रूप में सदल मिश्र

(अध्याय - तेरह)

हिन्दी साहित्य में गद्य का प्रादुर्भाव मूल रूप में न होकर अनुवाद-साहित्य के रूप में ही हुआ। ऐसा प्राय: सभी भाषाओं के साहित्य में होता है। भाषा सर्वप्रथम बोलचाल के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होती है और जैसे-जैसे उस भाषा के बोलनेवाले जनसमुदाय का सम्पर्क एवं कार्यक्षेत्र बढ़ता जाता है, उसकी ज्ञान संबंधी आवश्यकता बढ़ती जाती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने से अधिक विकसित जनसमुदाय की अनुकृति का सहारा लेता है। इसी अनुकृति के क्रम में उसे अनुवाद की आवश्यकता की अनुभूति होने लगती है। प्रत्येक जन-समुदाय या युग-विशेष का विचारक जो कुछ सोचता है, उसे यथा-संभव अपनी भाषा में लिपिबद्ध करने का प्रयास करता है। उसके साथ ही या उसके बाद उस भाषा के बोलनेवाले जनसमुदाय के सम्पर्क में आनेवाला अन्य भाषाभाषी उस ज्ञान को अपनी भाषा के बोलनेवालों के बीच लाने के उद्देश्य से उसे अपनी भाषा में प्रस्तुत करने को आतुर हो उठता है और उसकी यह आतुरता ही अनुवाद साहित्य के सृजन की प्रेरणा प्रदान करती है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि विविधता में एकता का सूत्र स्थापित करना तथा एक भाषा में व्यक्त मूल्यवान् एवं मानवोपयोगी विचारों को दूसरी भाषा में सुलभ करना अनुवाद द्वारा ही संभव है।

यह बात भावों तथा विचारों तक ही सीमित न रहकर संस्कृति के विकास एवं प्रसार के लिए भी जरूरी हो जाती है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि अनुवाद विभिन्न साहित्यों, संस्कृतियों, सभ्यताओं एवं राष्ट्रों के बीच भाषा संबंधी व्यवधान का समाधान कर उन्हें एक-दूसरे से मिलने में सेतु का काम करता है। जहाँ तक राजनीतिक एवं तकनीकी क्षेत्रों के अलावा विज्ञान संबंधी साहित्य के क्षेत्र का प्रश्न है, अनुवाद का महत्त्व सर्वोपरि है।

भक्ति काल

यद्यपि हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में अनुवाद की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ, लेकिन उस काल में भी अनुवाद की महत्ता किसी-न-किसी रूप में प्रमाणित होती है। यह सच है कि मल्लिक मुहम्मद जायसी एवं संत सम्राट् कबीर का साहित्य उनकी अंत:प्रेरणा की देन है, लेकिन सूर के भजनों में श्रीमद्भागवत के भाव स्पष्टत: प्रतिबिम्बित हैं। यह कहना कठिन है कि उनके कौन-से भजन में श्रीमद्भागवत के किस श्लोक का भाव है, लेकिन यह तो नि:संकोच कहा जा सकता है कि उनके साहित्य की भाव भाषा का आधार उनकी अंत:प्रेरणा के साथ-साथ श्रीमद्भागवत भी है। कविकुल शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी विश्वविख्यात कृति रामचरित मानस के प्रारंभ में ही उसकी रचना-सामग्री के संबंध में लिखा है-

"नाना पुराण निगमागम सम्मत यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि"

अर्थात् वे अनेक पुराण, वेद और शास्त्र से सम्मत तथा रामायण में वर्णित और अन्य ग्रंथों से संगृहीत श्री रघुनाथ की गाथा अपने अंत:करण के सुख के लिए अति मनोहर भाषा की रचना में विस्तृत रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि गोस्वामी तुलसीदास ने संस्कृत के ग्रन्थों की सामग्री को अपनी कारयित्री प्रतिभा के बल से जन भाषा में नव्यतम रूप प्रदान किया। यह निर्विवाद है कि गोस्वामी तुलसीदास की रचनाएँ पूर्णत: मौलिक हैं लेकिन उनके जीवन-काल में ही हिन्दी के कुछ कवि ऐसे भी थे, जो संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी पद्य में कर रहे थे। अनुवाद के रूप में साहित्य-सृजन का महत्त्व मौलिक साहित्य की तुलना में भले ही कम हो, लेकिन यह सच है कि इसकी अपनी विशेष उपयोगिता है।

भक्ति काल में ही निर्गुण ज्ञानमार्गी धारा के अन्तर्गत अक्षर आनन्द में दुर्गा सप्तशती का हिन्दी पदों में अनुवाद किया। केशव की रामचन्द्रिका उनके संस्कृत ग्रन्थों के प्रसंगों का भावानुवाद है। नन्ददास की रास पंचाध्यायी भी भागवत पुराण के पाँच अध्यायों का अनुवाद है।

रीति काल

जब हम रीतिकाल पर विचार करते हैं, तो यह पाते हैं कि पं० परमानन्द ने 'शृंगार सप्तशती' के नाम से बिहारी सतसई का संस्कृत में पदानुवाद किया। हर्ष कवि द्वारा संस्कृत काव्य 'नैषधीय चरति' का पदानुवाद किया गया। इसी प्रकार इस काल में गद्य अनूदित 'बैताल पंचविशति' के अनुवादक ने अपनी ब्रज भाषा गद्य में रचित पुस्तक का नाम 'बैताल पचीसी' रखा।

आधुनिक काल

हिन्दी के आधुनिक काल के आरंभ होते ही स्थिति भिन्न होने लगी और संस्कृत के अतिरिक्त अनेक भारतीय भाषाओं से हिन्दी गद्य में अनुवाद कार्य प्रचुर मात्रा में शुरू हो गये और इस दृष्टि से खड़ीबोली गद्य के विकास में अनुवाद की सहायता अनुपम रही है। संवत् १७९८ में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योग वशिष्ट' नाम का गद्य ग्रंथ खड़ीबोली में लिखा। इसमें संस्कृत के श्लोकों का अनुवाद किया गया है। लल्लू लाल ने हितोपदेश का अनुवाद किया। सन् १८०० से १८५० के मध्य लल्लू लाल, सदल मिश्र एवं सदासुख लाल के कर-कमलों द्वारा अनेक संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद किये गये। यद्यपि श्री लल्लू लाल का सबसे अधिक जनश्रुत ग्रंथ 'प्रेमसागर' श्रीमद्भागवत का सीधा गद्यानुवाद नहीं है, फिर भी खड़ीबोली के प्रारंभिक मुद्रित गंथों में इसका स्थान गौरवपूर्ण है। श्री सदल मिश्र द्वारा 'नासिकेतोपाख्यान' का चन्द्रावली के नाम से खड़ीबोली अनुवाद की पुस्तक प्रारंभिक काल में ही प्रकाशित रूप में उपलब्ध हो गयी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने तो 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'मुद्राराक्षस', 'कर्पूर मंजरी', 'धनंजय-विजय' आदि सभी नाटकों का अनुवाद बँगला से किया था। इसी क्रम में राजा लक्ष्मणसिंह ने 'शकुन्तला' और 'मेघदूत' के शुद्ध हिन्दी अनुवाद किये।

इस प्रकार बँगला तथा संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद का कार्य दिनानुदिन आगे बढ़ता गया और हिन्दी की 'खड़ीबोली' तरह-तरह से सुसज्जित होती गयी। अनुवादकों की यह शृंखला बढ़ती ही गयी जिनमें श्री तोताराम वर्मा एवं मथुराप्रसाद के नाम भी उनके क्रमश: 'कोटो वृत्तान्त' एवं 'मर्चेण्ट आफ वेनिस'

जो अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित है, के कारण स्मरणीय है। द्विवेदी-युग में सूक्ष्म और गूढ़ भावों को प्रकट करनेवाली भाषा कहलाने की दिशा में भी हिन्दी के अनुवाद ने अपना योगदान किया। स्वयं द्विवेदी जी ने 'कौटिल्य कुठार', 'कुमार संभव', 'मेघदूत' 'रघुवंश' आदि के अनुवाद किये। इसी काल में श्री गोपालराम गहमरी जी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'चित्रांगदा' आदि कई ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया। आधुनिक युग के विश्व-विख्यात उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द की मौलिक रचनाओं के साथ-साथ अनेक अनूदित रचनाएँ भी हैं। निबंध के क्षेत्र में द्विवेदी जी की महत्त्वपूर्ण देन अनूदित पुस्तक के रूप में उनकी 'बेकन विच रत्नावली' है। आज स्वातंत्र्योत्तर काल में अनुवाद कार्य की गति और भी अधिक तीव्र हो गयी है और ज्ञान-विज्ञान, प्रशासन, विधि एवं अनेक तकनीकी पुस्तकों के अनुवाद का कार्य कुशल भाषाविदों द्वारा संपन्न हो रहा है। जब से हिन्दी को राष्ट्रभाषा या राजभाषा के पद पर आसीन होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है इसमें अनेक स्रोतों से अनुवाद होने लग गये हैं और इस भाषा की श्रीवृद्धि अनवरत एवं बुद्धिमत्तापूर्वक की जा रही है। यह बात दूसरी है कि नवीन तकनीकी शब्दावली आदि के कारण कुछ कठिनाइयाँ हो रही हैं, लेकिन कुल मिलाकर हिन्दी भाषा की समृद्धि में वृद्धि ही हुई है।

अनुवाद भाषा

हम ऊपर कह आये हैं कि इस दुनिया में अनुवाद कार्य दो भिन्न भाषा-भाषियों के बीच सेतु के सदृश होता है। आज ज्यों-ज्यों संसार के भिन्न-भिन्न भागों के लोग एक-दूसरे के अधिक निकट आ रहे हैं और भाषाओं तथा राजनीति की सीमाओं को लाँघकर एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं, त्यों-त्यों इस प्रकार के अधिकाधिक सेतु आने की आवश्यकता भी बढ़ती जा रही है। फिर शताब्दियों की दासता के बाद स्वतंत्र हुए इस देश में तो बौद्धिक तथा भावात्मक एकीकरण के माध्यम के रूप में अनुवाद का महत्त्व विशेष रूप से बढ़ जाता है। लेकिन यह कार्य देखने में जितना सरल लगता है, वास्तव में उतना सरल नहीं। हिन्दी के सच्चे सपूत पं॰ महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अनुवाद कार्य की व्याख्या करते हुए एक स्थान पर जो अपने विचार व्यक्त किये हैं, उसे उद्धृत करते हुए मैं यह विचार करना चाहूँगा कि अनुवाद क्रिया की सार्थकता का आधार क्या हो सकता है। यद्यपि द्विवेदी जी के विचार काव्यानुवाद के संबंध में हैं, फिर भी सामान्य अनुवाद के संबंध में भी उनके ये विचार कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं- स्वतंत्र कविता करने की अपेक्षा दूसरे की कविता का अनुवाद अन्य भाषा में करना बड़ा कठिन काम है। एक शीशी में भरे हुए इत्र को जब दूसरी शीशी में डालने लगते हैं तब डालने ही में पहले कठिनता उपस्थित होतीं है और यदि बिना दो-चार बूँद इधर-उधर टपके; वह दूसरी शीशी में चला भी गया तो इस उलट-फेर में उसके सुवास का विशेषांश उड़ जाता है। एक भाषा की कविता का दूसरी भाषा में अनुवाद करनेवालों को यह बात स्मरण रखनी चाहिए। बुरा अनुवाद करना मूल कवि का अपमान करना है, क्योंकि अनुवाद के द्वारा उसके गुणों का ठीक-ठीक परिचय न होने के कारण पढ़नेवालों की दृष्टि में वह हीन हो जाता है। इसलिए किसी पुस्तक का अनुवाद आरम्भ करने से पहले अनुवादक को अपनी योग्यता का विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है। सच तो यह है कि जो अच्छा कवि है वही अच्छा अनुवाद करने में समर्थ हो सकता है, दूसरा नहीं। (पं॰ महावीरप्रसाद द्विवेदी) चूँकि हर भाषा का प्राचीन साहित्य काव्य में ही लिखा गया इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि गद्य रचना में अनुवाद की आवश्यकता की अनुभूति बाद में हुई। पश्चिम में भी अनुवाद कार्य पहले काव्य क्षेत्र में ही हुआ और कितने महान् साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में रूप में अपनी-अपनी भाषा को दूसरी भाषाओं की अमूल्य कृतियों की निधि के रूप में दी। ऐसे अनुवादकों की प्रतिभा की प्रशंसा आज भी मुक्त कंठ से की जाती है। हम इस प्रसंग में पश्चिम के जिन तीन महान् अनुवादकों के नाम स्मरण करेंगे वे हैं -

(१) एलेक्जेंडर फ्रेजर टिटलर (१७८१-१८१४)

(२) मैथ्यू अर्नाल्ड (१८२२-१८८८) तथा

(३) एडवर्ड फिट्जराल्ड (१८०९ - १८८३)

(१) एलेक्जेंडर फ्रेजर टिटलर

उन्होंने अपनी पुस्तक में अंग्रेजी भाषा के अनुवाद की विशेषकर काव्यानुवाद की समस्याओं के शास्त्रीय निरूपण का प्रथम व्यवस्थित प्रयत्न किया । इनके पहले **जरोम, स्मनिस, लूथर, डोलेट,** अंग्रेजी बाइबिल के अधिकृत संस्करण के अनुवादक **ड्राइडन** और **जार्ज कैम्बकैल** प्रधानत: अनुवादक थे और यदि उन्होंने अनुवाद के सिद्धान्त के पक्ष का थोड़ा-बहुत विवेचन किया है तो यह अपनी स्वयं की व्यावहारिक कठिनाइयों की पृष्ठभूमि में है। इनमें से ऐसा एक भी अनुवादक नहीं है जिसने अनुवाद का पृथक् शास्त्र के रूप में भावन किया हो और उसकी विविध समस्याओं को उसी ढंग से समझने का प्रयत्न किया है। टिटलर के समय तक यूरोप की प्रमुख राष्ट्रीय भाषाएँ लैटिन के पाश से मुक्त हो गयी थीं और उनका एक स्वतंत्र स्वरूप बन गया था। इस काल में विभिन्न राष्ट्रों के बीच साहित्यिक और सांस्कृतिक संपर्क का विकास होने लगा था और यूरोप की विभिन्न भाषाओं में साहित्यिक आदान-प्रदान का क्रम निरन्तर बढ़ता जा रहा था। इस स्थिति में अनूदित रचनाओं के गुण-दोषों की अधिक बारीकी से जाँच करना अनिवार्य हो गया था। १७९१ से द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत तक अर्थात् १८१४ के बाद तक काव्य ग्रंथों तथा साहित्य की अन्य विधाओं के भी अनुवाद तो सहस्रों की संख्या में हुए पर काव्यानुवाद संबंधी चिन्तन के क्षेत्र में दो नाम मुख्य रूप से लिये जाते हैं- एलेक्जेंडर फ्रेजर टिटलर तथा मैथ्यू अर्नाल्ड। इनके अतिरिक्त इस काल का एक और विश्वविख्यात अनुवादक फिटजेराल्ड है, जिसने काव्यानुवाद के संबंध में एक विशेष दृष्टिकोण का उन्मीलन करने के अतिरिक्त अनुवाद के विषय में सूत्र रूप से कुछ विचार भी प्रस्तुत किये हैं। पाश्चात्य अनुवाद-सिद्धान्त के विकास में फिटजेराल्ड का नाम भले ही बहुत अधिक महत्त्व नहीं रखता हो, लेकिन एक अनुवादक के रूप में उन्हें उच्च स्थान प्राप्त है। श्री टिटलर ने अपनी उक्त प्रसिद्ध पुस्तक में अनुवाद के संबंध में मुख्यत: तीन सिद्धान्त निरूपित किये हैं। ये सिद्धान्त ग्रीक भाषा में (सोर्स लैंग्वेज) (Source language) से एवं लक्ष्य भाषा (टार्जेट लैंग्वेज) (Target language) में भाषांतरित विचारों, शैली और लेखन-विधि एवं मूल रचना की समस्त सहजता से संबंधित हैं। इस प्रकार उनके सिद्धान्तों के अनुसार निम्नलिखित तत्त्व सामने आये -

१) अनुवाद के मूल रचना के विचारों का पूर्ण भाषांतरण होना चाहिए।

२) अनुवाद में शैली और लेखन-विधि मूल के ढंग की ही होनी चाहिए।

३) अनुवाद में मूल रचना की समस्त सहजता होनी चाहिए।

ये बातें टिटलर के ही शब्दों में श्रेष्ठ अनुवाद की कसौटी के लिए इस प्रकार हैं-

I would describe a good translation to be that in which the merit of the original work is so completely transfused into an other language , as to be as distinctly apprehended and as strongly felt by a native of the country to which that language belongs , as it is by those who speak the language of the original work.

1.That the translation should give a complete transcript of the ideas of the original work;

2.That the style and manner of writing should be of the same character with that of the original; and

3.That the translation should have all the ease of original composition.

उनके मत से श्रेष्ठ अनुवाद वह है ज़िसमें "मूल कृति का गुण दूसरी भाषा में इतनी पूर्णता से आ जाता हो कि उसे जिस देश की वह भाषा हो, वहाँ का मूल निवासी उतनी ही स्पष्टता से समझे और उतनी ही तीव्रता से अनुभव करे जैसा कि मूल कृति की भाषा बोलनेवाले लोगों के संदर्भ में होती है।

टिटलर ने श्रेष्ठ अनुवाद के स्वरूप तथा उसके लक्षणों का विवेचन करते समय अनुवाद की सर्वसंम्मत परिभाषा देने में होनेवाली जिस कठिनाई का उल्लेख किया है, वह मूलत: स्रोत भाषा और मूल भाषा के प्रकृति भेद से संबंधित है। एक भाषा के एक शब्द का दूसरी भाषा में **नितान्त सटीक समानार्थक** शब्द मिलना सदा सम्भव नहीं होता। फिर अनुवाद एक भाषा के शब्द की जगह दूसरी भाषा का समानार्थक शब्द रख देना भर नहीं है। अनुवाद में शब्दों के अतिरिक्त अन्य बातें जो महत्त्वपूर्ण होती हैं, के वाक्य रचना, मुहावरों, शैली तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के प्रश्न से संबंधित हैं। इसीलिए अनुवाद के संबंध में उसकी दो विधियाँ मानी जाती हैं - शब्दानुवाद तथा भावानुवाद या मूलनिष्ठ अनुवाद या मूल मुक्त अनुवाद। चूँकि अनुवाद की पहली विधि में अर्थात् जहाँ शब्दानुवाद या भावानुवाद पर ही जोर दिया जाता है, वहाँ अनुवाद में स्पष्टता नहीं होती। ऐसे अनुवाद के क्षेत्र में यह सबसे लोकप्रिय और साथ ही सबसे भ्रामक पद्धति रही है, पर धार्मिक और विधिक साहित्य के अनुवाद में इस पद्धति का अपना महत्त्व है। चूँकि अनुवाद की यह विधि अनेक बाधाओं में पूर्ण होती है और अनुवादक अपने कार्य में पूर्णत: स्वतंत्र नहीं होता, इसलिए मूल मुक्त अथवा भावानुवाद की पद्धति अधिक लोकप्रिय होती जा रही है। अनुवाद की इस पद्धति में मूल रचना के शब्दों पर नहीं, मूल रचना के भावों पर विशेष बल दिया जाता है। लेकिन इस अनुवाद में एक बात का अवश्य डर रहता है कि कहीं अनुवाद मूल से बहुत दूर न हट जाय। इसलिए ऊपर उल्लिखित सिद्धान्तों की जाँच करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि टिटलर ने अनुवाद के संबंध में सीमान्त स्थितियों को त्याग दिया है और मध्यम मार्ग ग्रहण किया है । उनके विचार से अनुवाद में मूल कृति का गुण अनुवाद भाषा में पूरी तरह से आ जाना चाहिए और अनुवाद भाषा के पाठकों को उस गुण की उतनी ही तीव्रता से अनुभूति करनी चाहिए जितनी तीव्रता से मूल भाषा के पाठक करते हैं।

ऊपर टिटलर के जिन तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है, उनमें पहले पर ध्यान देकर सोचने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुवाद में मूल कृति के पूरे विचारों का स्थानांतरण करने में किसी प्रकार की भूल नहीं होनी चाहिए। ऐसा तभी हो सकता है जब अनुवादक को भाषा ज्ञान और शास्त्र ज्ञान-दोनों हो। यदि अनुवादक को दोनों में से किसी एक में भी निपुणता नहीं है, तो वह सफल अनुवादक नहीं हो सकता। किसी भाषा की प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत कठिन साधना है। कोशों अथवा व्याकरणों से हम किसी भाषा की प्रकृति का बहुत कम परिचय पा सकते हैं। हर भाषा के अंदर वाक्य रचना, शब्दावली तथा प्रयोगों की ऐसी अनेक बारीकियाँ होती हैं, जो विपुल तथा सचेत अध्ययन के फलस्वरूप ही बोधगम्य हो पाती हैं । हर भाषा में ऐसे अनेक शब्द और मुहावरे होते हैं जिनका दूसरी भाषा में अनुवाद संभव नहीं है। इसीलिए टिटलर ने अपनी ऊपर लिखी पुस्तक के पेज १७-१८ पर लिखा है-

"Where the sense of an author is doubtful and where more than one meaning can be given to the same passage of expression (which by the way, is always a defect in composition) the translator is called upon to exercise his judgment and to select that meaning which is not consonant to the train of thought in the whole passage or the author's usual mode of thinking and of expressing himself. To imitate the obscurity or ambiguity of the original, is a fault, and it still a greater, to give more than one meaning"

अर्थात् "जब मूल लेखक का अभिप्राय संदिग्ध हो अथवा एक ही अवतरण के एक से अधिक अर्थ सम्मत हों (टिटलर के मत से वह सदा ही रचना का दोष होता है) तो वहाँ अनुवादक को अपनी सहज बुद्धि का उपयोग करना चाहिए और उसी अर्थ को ग्रहण करना चाहिए जो मूल लेखक की विचारधारा के सबसे निकट हो। मूल लेखक की विचारधारा अथवा अस्पष्टताओं को अनुवाद में प्रस्तुत करना भूल है।" इस प्रकार अनुवाद के लिए मूल रचना की भाषा और विषय की पूरी जानकारी अत्यंत आवश्यक है।

हमने टिटलर के विचार देखे कि मूल लेखक की भिन्नार्थक विचारधारा अथवा अस्पष्टता को हमें अनुवाद में ज्यों-का-त्यों नहीं रखना चाहिए। यही कारण है कि टिटलर ने कुछ स्थितियों में अनुवादक को यह अधिकार देने की बात उठायी है कि यदि अनुवादक को कुछ विचार महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ें तो क्या वह उन्हें और बल देने के लिए अपनी ओर से कुछ जोड़ सकता है और यदि उसे कुछ विचार अनावश्यक या कम महत्त्व के मालूम पड़ें तो क्या वह उनको अपनी ओर से कुछ काँट-छाँट कर सकता है? इस मामले में टिटलर की राय यह है कि इस सीमाओं में अनुवादक को अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए इसीलिए उन्होंने इन प्रसंग में एक कदम आगे बढ़कर यह कहा है कि

" An ordinary translator sinks under the energy of his original , the man of genius frequently rises above it."

अर्थात् साधारण अनुवादक का अनुवाद मूल की शक्ति से दब जाता है और प्रतिभाशाली अनुवादक का अनुवाद मूल की शक्ति से ऊपर उठ जाता है।

अभी तक हमने टिटलर के अनुवाद संबंधी प्रथम आवश्यकता अर्थात् विषय-वस्तु के स्थानांतरण में सतर्कता की आवश्यकता पर विचार किया है। अनुवादक टिटलर ने शैली के संबंध में भी स्पष्टत: कहा है कि अनुवाद की शैली जहाँ तक हो सके मूल के अनुरूप होनी चाहिए। इस संबंध में टिटलर के स्पष्ट विचार हैं :-

" A good translator must be able to discover at once the true character of his author's style. He must ascertain with precision to what class it belongs; whether to that of the grave, the elevated, the easy, the lively, the florid and ornamented, or the simple and unaffected; and these characteristic qualities he must have the capacity of rendering equally conspicuous in the translation as in the original. If a translator fails in this discernment and wants this capa

city, let him be ever so thoroughly master of the sense of his author, he will present him through a distorting medium of exhibit him often in a garb that is unsuitable to his character."

उनके कहने का तात्पर्य यह है कि अनुवाद में मूल लेखक की शैली तथा स्वरूप की रक्षा होनी चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि अनुवादक मूल लेखक के साथ साधारणीकरण कर ले, उसकी शैली को आत्मसात् कर ले और यह समझ ले कि उसका पाठक किस वर्ग का है। यदि वह ऐसा नहीं करता और लेखक के अर्थबोध पर ही निर्भर करता है, तो वह लेखक को विकृत रूप में ही उपस्थित करेगा और उसके साथ न्याय नहीं कर सकेगा।

संक्षेप में इस बात को यों कहा जा सकता है कि अनुवाद कार्य में भाषा-शैली का स्थान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र में शैली से मिलता-जुलता अर्थ देनेवाला एक शब्द है - रीति। इस शब्द की परिभाषा के रूप में ही वामन ने कहा था "विशिष्ट पद रचना रीतिः" यहाँ इसी संबंध में यह भी विचारणीय है कि अनुवाद में उद्दिष्ट पाठक की योग्यता का क्या महत्त्व है। अनुवाद की शैली के नियमन के लिए एक और तत्त्व यह है कि स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की प्रवृत्तियों पर भी ध्यान रखना जरूरी है।

कव्यानुवाद के संबंध में एक यह प्रश्न भी विचारणीय है कि क्या पद्य का अनुवाद पद्य में ही किया जाय या उसका अनुवाद गद्य में भी किया जा सकता है। इस बात को समझने के लिए सम्पूर्ण वाङ्मय को स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है ज्ञान साहित्य और शक्ति साहित्य। ज्ञान साहित्य मुख्यतः तथ्यात्मक होता है और शक्ति साहित्य भावात्मक या प्रेरणात्मक। एक में बुद्धितत्त्व की प्रधानता होती है, तो दूसरे में भावतत्त्व की। एक का लक्ष्य पाठक को सूचना अथवा जानकारी देना है और दूसरे का आनन्द अथवा रस। यही कारण है कि दो प्रकार के साहित्य के अनुवाद में पृथक् विधि एवं दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। जहाँ शास्त्रीय साहित्य के अनुवाद में अर्थ-बोध और अर्थ-प्रेषण की समस्या आती है, वहीं काव्यानुवाद की समस्याएँ शब्द विषयक, छंद विषयक और शैली विषयक होती हैं। ऊपर के इस प्रश्न पर कि पद्य का अनुवाद पद्य में हो यह गद्य में, प्रायः सभी का यही कहना है कि पद्य का अनुवाद पद्य में हो और गद्य का गद्य में। इस संबंध में टिटलर का विचार यह है कि कविता का अनुवाद कविता में ही होना चाहिए और केवल कवि ही यह कार्य सफलतापूर्वक कर सकता है। लेकिन ऐसा होना स्वाभाविक नहीं। क्योंकि होमर, वर्जिल, वाल्मिकि, कालिदास तथा शेक्सपीयर हर युग में नहीं होते और इन दैवी प्रतिभासम्पन्न महान् कवियों की रचनाओं का अनुवाद तथाकथित रूप में असम्भव हो जायगा। इसलिए उस स्थिति को भी सर्वथा त्याज्य नहीं माना जा सकता कि पद्य का अनुवाद गद्य में भी किया जाय। लेकिन यह तो आवश्यक है ही कि यह कार्य भी कोई उत्कृष्ट गद्यकार ही करे।

अनुवाद में मौलिक रचना की-सी सहजता होनी चाहिए- टिटलर की इस स्थापना के संबंध में कठिनता का अनुमान लगाया जा सकता है। इस बारे में स्वयं टिटलर ने अपनी उक्त पुस्तक के पेज ११३ पर कहा है वि "जिस व्यक्ति के पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हों, उसके लिए शोभा और स्वतंत्रता का प्रदर्शन करना आसान नहीं है।" बड़े-से-बड़े चित्रकार के लिए चित्र की अनृकृति में मूल चित्र की आत्मा की रक्षा करना कठिन है। अंत में श्री टिटलर के इस निष्कर्ष को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं होता कि "अनुवादक के कर्त्तव्य-कर्म का सम्पादन करने के लिए सबसे योग्य व्यक्ति वह होगा जिसमें मूल लेखक की-सी प्रतिभा हो।"

(२) मैथ्यू अर्नाल्ड (१८२२-८८)

मैथ्यू अर्नाल्ड अपने समय के महान् आलोचक एवं कवि थे। उन्होंने साहित्य को बहुत व्यापक अर्थ में ग्रहण किया और समाज, शिक्षा, धर्म, इतिहास और संस्कृति सभी से संबद्ध समस्याओं को अपने साहित्य का विषय बनाया। अर्नाल्ड ने शैली का महत्त्व देते हुए कहा- "The style is the expression of the nobility of the poet's character, as the matter is the expression of the richness of his mind." (Quoted in Lionel Trilling, 'Mathew Arnold' New Year, 1949.p.30) अर्थात् जिस प्रकार विषय-सामग्री कवि के मन की समृद्धि की अभिव्यक्ति है, उसी प्रकार शैली उसके चरित्र की भव्यता की अभिव्यक्ति है। शैली का अर्थ यह है कि आपको जो बात कहनी है आप उसे अच्छे-से-अच्छे ढंग से कहें। आपको जो बात कहनी हो, वह आपके युग पर निर्भर है।

जहाँ तक अनुवाद का संबंध है, अर्नाल्ड इसे मौलिक रचना से हीन मानते थे। उन्होंने 'मेरोप' नामक पुस्तक की भूमिका में जो विचार दिया है उसका सारांश यह है कि प्रथम लेखक तथा अनुवादक की प्रतिभा के अंतर के कारण अनुवाद मूल रचना से हीन तो होता ही है, इसके अतिरिक्त वह उस सर्वश्रेष्ठ रचना से भी हीन होता है, जिसे अनुवादक अधिक प्रेरक परिस्थितियों में रच सकता था। कोई व्यक्ति ऐसे किसी विषय से अनुप्राणित नहीं हो सकता जिसका उसने स्वतंत्र रूप से भावन न किया हो। मैथ्यू अर्नाल्ड ने न्यूमैन ने होमर के महाकाव्य के अनुवाद के बाद 'आन ट्रान्सलेटिंग होमर' व्याख्यानमाला में अपने विचार रखे थे। अनुवादक न्यूमैन का मूल रचना की विशेषताओं को अनुवाद में **अक्षत** करने का आग्रह इतना प्रबल था कि वह होमर की शब्दावली तक को यथासंभव अनुवाद में बनाये रखना चाहता था, चाहे वह शब्दावली कितनी पुरानी क्यों न हो। मैथ्यू अर्नाल्ड ने उसकी इन धारणाओं का खण्डन किया है। उनके अनुसार सफल अनुवाद में एक प्रमुख विशेषता यह होनी चाहिए कि उसका पाठक वर्ग पर वैसा ही प्रभाव पड़े जैसा मूल रचना का पड़ता। उन्होंने इसके लिए यह आवश्यक समझा कि अनुवादक को मूल रचनाकार से तादम्य होना चहिए और उसे मूल रचनाकार की साहित्य तथा शैलीगत विशेषताओं को आत्मसात् कर लेना चाहिए। उनके अनुसार दोनों के बीच अभेद स्थापित होना चाहिए।

(३) एडवर्ड फिट्जेराल्ड (१८०९-८३)

सुविख्यात पत्रकार, कवि तथा अनुवादक एडवर्ड फिट्ज़ेराल्ड का 'उमर खैयाम की रुबाइयाँ' का अनुवाद सम्भवतः अनुवाद के समूचे इतिहास में सबसे प्रसिद्ध कृति है। उमर खैयाम की रुबाइयाँ की अनूदित रूप में रचना के पीछे श्री फिट्जेराल्ड के प्रेरक मित्र श्री काबेल का बहुत बड़ा श्रेय है। काबेल सन् १८५६ में भारत आया था। उसने इसके पहले ही फारसी में रचित रुबाइयत की एक प्रति अपने मित्र फिट्जेराल्ड को दी थी। लेकिन रुबाइयत के अनुवाद की सच्ची प्रेरणा का प्रमाण तब मिला जब श्री फिट्जेराल्ड ने बगीचे में घूमते-घूमते एक रुबाई का अच्छा अनुवाद प्रस्तुत किया। इस पुस्तक के मूल संस्करण में फिट्जेराल्ड ने अनुवादक के रूप में अपना नाम नहीं दिया था। फिट्जेराल्ड के अनुरोध से पुस्तक-विक्रेता ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं को समीक्षार्थ प्रतियाँ भेजीं। लेकिन उससे बिक्री में कोई वृद्धि नहीं हुई। प्रायः दो वर्ष तक रुबाइयत की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। अन्त में पुस्तक-विक्रेता ने रुबाइयत की प्रतियों को रद्दी की टोकरी में डाल दिया। १८६१ में किसी अज्ञात व्यक्ति की दृष्टि में यह पुस्तक आयी और उसने एक पेनी प्रति पुस्तक के हिसाब से मूल्य देकर कुछ प्रतियाँ खरीदीं। १८६८ में रुबाइयत

का दूसरा और १८७२ में तीसरा संस्करण निकाला। रुबाइयों को सर्वप्रथम सार्वजनिक मान्यता देने का श्रेय अमरीकी आलोचक चार्ल्स इलियट नोर्टन को था। चार्ल्स नोर्टन ने रुबाइयत के अनुवादों के आधार पर नार्थ अमरीकन रिव्यू (सी ९ अक्टूबर, १८६९, पेज ५७५-५७६) में एक लेख प्रकाशित किया जिसमें फिट्जेराल्ड की प्रसिद्ध कृति की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है और यह कहा गया है कि उनके लिए अनुवादक शब्द पर्याप्त नहीं है। यह शब्द उनके लिए किसी ऐसे दूसरे शब्द के अभाव में रखा गया है, जिससे कि उनकी एक भाषा से दूसरी भाषा में काव्यानुवाद की असीम शक्ति की अभिव्यक्ति दी जा सके। अनुवाद की यह कृति नये समय, रीति एवं मनोदशा के सर्वथा अनुकूल प्रस्तुत की गयी। किसी दूसरे देश की भाषा में रचित काव्य कृति का सर्वाधिक कुशलतापूर्ण अनुवाद का इससे अधिक प्रशंसनीय उदाहरण नहीं मिल सकता। इसमें मूल रचना के सभी गुण हैं। अनुवाद में फारसी के कवि उमर खैयाम की प्रभावोत्पादकता एवं योग्यता का इससे उच्चतम प्रमाण नहीं हो सकता। यह एक कवि के कार्य से प्रेरित एक कवि की कृति है। यह उस कृति की अनुकृति न होकर पुनः प्रस्तुत कृति है, अनुवाद न हो कर एक कवि की कृति का पुनः प्रेषण है। इस रचना में पूर्व की काव्यात्मक कृति को अंगेजी पद्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लयात्मकता, अभिव्यक्ति, संगीतात्मकता और भाषा सौष्ठव जैसे बाह्य गुणों की दृष्टि से भी यह एक सफल कृति सिद्ध हुई है।

बाद में रस्किन ने भी इस अनुवाद की प्रशंसा की थी। लेकिन अपने अनुवाद के संबंध में स्वयं फिट्जेराल्ड ने १८५८ में काबेल को लिखे एक पत्र मे लिखा था जिसका भाव यह है कि "मेरा अनुवाद आपको रूप-विधान तथा अनेक बातों में विवरण की दृष्टि से रोचक लगेगा। यह शब्दानुवाद से बहुत दूर है। कई रुबाइयों को आपस में मिला दिया गया है। उमर की सबसे बड़ी विशेषता सरलता है और मुझे संदेह है कि मेरे अनुवाद में उसका कुल अंश जाता रहा है।" लेकिन स्वयं फिट्जेराल्ड का यह विश्वास था कि अनुवादक को मूल रचना का अपनी रुचि के अनुसार संस्कार करना चाहिए। "जीवित कुत्ता मरे हुए शेर से अच्छा होता है।" फिट्जेराल्ड के अनुवाद के मूल्यांकन के संबंध में एक विद्वान् (प्रो॰ जे॰ अहमद अवकाश प्राप्त अध्यक्ष, फारसी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय) ने इस आशय के विचार व्यक्त किये हैं - कि फिट्जेराल्ड की अनुवाद कला के उत्कर्ष को समझने के लिए यह उचित लगता है कि उसके कुछ अवतरणों की तुलना मूल से की जाय और देखा जाय कि उसने मूल से कितनी घटा-बढ़ी की है और वह उनकी भाव-रक्षा में कहाँ तक सफल हुआ है। फिट्जेराल्ड ने कहीं-कहीं मूल की दो-दो तीन-तीन रुबाइयों के भाव को एक ही रुबाई में भरने का प्रयत्न किया है, इसलिए यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि खैयाम की कौन-सी रुबाई है। लेकिन कुल मिलाकर यह कहना कठिन है कि अनुवाद मूल से हल्का है। कहने का तत्पर्य यह है कि अनुवाद कार्य में स्रोत भाषा के अर्थ की अभिव्यक्ति मूल भाषा में ठीक-ठीक होनी चाहिए। अर्थ की कसौटी पाठक की बोधगम्यता पर निर्भर होगी। इसीलिए अनुवाद-शास्त्र के विश्वविख्यात विचारक श्री नाइडा ने अपनी पुस्तक में बोधगम्यता को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। वस्तुतः जो विद्वान् व्यक्ति मूल से स्वयं पूरी तरह परिचित होता है, उसके लिए बहुत परिश्रम-साध्य, शाब्दिक अनुवाद भी सही होगा क्योंकि वह इसे गलत अर्थ में नहीं समझेगा। इससे विपरीत भाषा के विस्तृत क्षेत्रवाले समुदाय के मामलों में यह स्थिति भिन्न होगी। ऐसा विशेष रूप में उस समय होगा जब कोई समाज लाखों-करोड़ों व्यक्तियों द्वारा बोली जानेवाली तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय भाषा का प्रयोग करता हो। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसी स्थिति में शब्दावली और व्याकरणिक ढाँचों की दृष्टि से अनुवाद के कई स्तर होंगे और इसकी आवश्यकता तब और अधिक होगी, जब सभी व्यक्तियों

को उसमें दी गयी बातों को समझने के अवसर अनिवार्यतः समान ही होंगे।

बोधगम्यता की जाँच का संबंध मुख्यतः दो विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों का पता लगाने एवं उन्हें अलग-अलग करने में है-

१) एक उस अभिव्यक्ति का, जिसके बारे में गलत समझे जाने की संभावना हो तथा

२) जो इतना कठिन और बोझिल (व्याकरण या शब्दावली की दृष्टि से) हो कि पाठक पाठ में दी गयी बातों को समझने के प्रयास से ही हतोत्साहित हो जाय।

अंग्रेजी के दो उदाहरण हैं जिसका अर्थ होता है वर पक्ष के मित्र आदि अर्थात् वरयात्री। इसी प्रकार का अर्थ है किसी व्यक्ति को अपने दुर्व्यवहार के लिए लज्जित होना न कि किसी को दुःख देकर मारना। इसीलिए यह कहा जाता है कि जब किसी भाषांतरित अर्थ को जनता का बहुत बड़ा प्रतिशत गलत समझे, तो उसे उचित अनुवाद नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार कोई-कोई अनुवाद भ्रांतिमूलक के साथ-साथ शैली की दृष्टि से इतना बोझिल हो जाता है कि उसकी बोधगम्यता प्रायः असम्भव हो जाती है। नाइडा के शब्दों में- "In addition to being quite misleading, a translation may also be so stylistically heavy as to make comprehension almost impossible."

अनुवादक के मामले में कभी-कभी बुनियादी कठिनाइयाँ तब आती हैं, जब लोगों को जिस स्रोत भाषा से अनुवाद हो उसके और जिस भाषा में अनुवाद हो उसके दोनों के बारे में बहुत ही गलत विचार हैं। इस कार्य के लिए यदि (स्रोत भाषा) मातृभाषा हो तो भी उसके प्रति क्रांतिकारी रूप से पुनः चिंतन का दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। इसलिए नाइडा के निम्नलिखत विचार बिंदुओं पर विचार करना जरूरी है-

१) हर भाषा की अपनी प्रकृति होती है।

सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि यह बात स्वीकार की जाय कि प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है। अर्थात् प्रत्येक भाषा के कुछ अपने विशेष लक्षण होते हैं जिससे कि उसका एक विशेष स्वरूप बनता है:- ये लक्षण हैं- शब्द-निर्माण क्षमता, वाक्यांश-क्रम के विचित्र नमूने, उपवाक्यों को वाक्यों से जोड़ने के तकनीक, पद्य, लोकोक्तियों एवं गीत के प्रकार। प्रत्येक भाषा संस्कृति केन्द्र एवं जनता की विशेषताओं के क्षेत्रों के लिए शब्दावली में धनी होती है।

२) प्रभावी संप्रेषण के लिए प्रत्येक भाषा की प्रकृति का आदर जरूरी है।

किसी भाषा में कुछ विशेषता के अभाव पर रोने-पीटने से अच्छा है कि स्रोत भाषा की विशेषताओं का आदर किया जाय और उसकी अन्तःशक्ति का अधिक-से-अधिक संभव सीमा तक उपयोग किया जाय। यह दुर्भाग्य की बात है कि कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें अनुवादक एक नयी भाषा का पुनर्निर्माण करने की कोशिश करते हैं। जैसे लैटिन अमेरिका में एक मिशनरी ने एक ऐसी भाषा में कर्मवाच्य लाने की कोशिश की जिसमें कर्मवाच्य था ही नहीं । यह बात सामान्य रूप से स्वीकार योग्य है कि बहुत-सी ऐसी भाषाएँ हैं, जिनमें कर्मवाच्य नहीं है। इसलिए नाइडा कहते हैं - "Rather than force formal structure of one language upon another, effective translator is quite

prepared to make any and all formal changes necessary to reproduce the message in the distinctive structural forms of the receptor language.

One must simply accept the fact that there are many language which do not have a passive voice. They merely chose to report actions as active."

किसी एक भाषा में कही गयी बात को दूसरी भाषा में कहा जा सकता है, लेकिन ऐसा तभी होगा जब भाषा के रूप को ही संदेश का आवश्यक अंग न माना जाय।

"Anything that can be said in one language can be said in another, unless the form is an essential element of the message."

अनुवाद के बारे में औसत श्रेणी के व्यक्तियों के लिए भाषाओं में 'क्षमता एवं पर्यायवाचकता' ही सबसे अधिक विवादजनक बातें रही हैं। ऐसा व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि यदि बाइबिल में कहीं बर्फ की चर्चा आयी है तो किसी ऐसे देश की भाषा में इसके लिए कौन-सा शब्द रखा जायगा जहाँ के लोगों ने बर्फ देखा नहीं हो और उनकी भाषा में बर्फ के लिए कोई पर्यायवाची शब्दी भी नहीं हो। इसका समाधान इसी रूप में हो सकता है कि कुछ लोगों की भाषा में इस बात के बावजूद कि उन्होंने बर्फ का अनुभव नहीं किया हो, उसके लिए शब्द हो। कुछ भाषा में इसके लिए कोई ऐसा दूसरा शब्द हो जिसका अर्थ दूसरा हो लेकिन वह शब्द इस अर्थ में भी प्रयुक्त होता हो जैसे- frost ही इस प्रकार का शब्द हो और ऐसी स्थिति में संभावना यह हो सकती है कि वहाँ के लोग दोनों वस्तुओं के लिए एक ही शब्द का प्रयोग करते हों ।

३) उस भाषा में इसके लिए पर्यायवाची शब्द न होकर पर्यायवाची मुहावरे हों

बाइबिल में स्नो के स्थान पर दूसरी भाषा में ऐसा मिल सकता है कि इसके लिए रूपक अलंकार से भिन्न शब्द भी हो सकता है ।

कुछ लोग यह आपत्ति उठाते हैं कि जब तक किसी शब्द के लिए दूसरी भाषा में पर्यायवाची शब्द न हो अनुवाद नहीं हो सकता। इस पर लेखक कहता है- अर्थात् कोई भी संप्रेषण संपूर्ण नहीं होता। इसका कारण यह है कि दो व्यक्ति समान शब्दों का अर्थ हमेशा समान रूप में नहीं लेते और दो भाषाओं के बीच पूर्ण प्रतियोगिता की संभावना नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए जब हिब्रू bered शब्द के लिए अंग्रेजी में loving kindness या covesent love कहते हैं तो इसमें बहुत-सी बातें अनकही रह जाती हैं। इसका कारण यह है कि हिब्रू भाषा के इस शब्द से उसके बोलनेवालों में जो पारस्परिक प्रेम की संपूर्ण सामाजिक संरचना का बोध होता है और उनके आदिम जातीय प्रधान और उनके अनुगामियों के बीच संबंध की जो भावाभिव्यक्ति इस शब्द से होती है, उसे हम लोग सोच भी नहीं पाते। इसीलिए नाइडा कहते हैं- कि यह अत्यन्त आवश्यक है कि यदि किसी संदेश के अर्थ को वहन करने के लिए अत्यावश्यक तत्त्व रूप ही है तो एक भाषा से दूसरी भाषा में संप्रेषणीयता में स्पष्टत: सीमा आ जाती है। इस प्रकार के अर्थ को हू-ब-हू रखना आम तौर पर असंभव ही होता है। उदाहरण के लिए बाइबिल में एक स्थान पर (Wind or spirit) शब्द का प्रयोग मिलता है। जेसस इन शब्दों का प्रयोग करते हैं जबकि ग्रीक भाषा में इन दोनों शब्दों के लिए एक ही शब्द है- (pucume) इसका परिणाम

यह होता है कि यह शब्द श्लेष हो जाता है और इसे अंग्रेजी में हू-ब-हू नहीं कहा जा सकता। अत: ऐसी स्थितियों में अधिक-से-अधिक यही किया जा सकता है कि हाशिये में इस बात का एक नोट दे दिया जाय कि इसमें एक ही शब्द के दोनों अर्थ हैं।

इसी प्रकार हम हिब्रू भाषा के पद्य के लय को कितनी ही कविता के परिवर्णी स्वरूपों और अभिप्रेत अनुप्रास (Intentional Attitude) को अंग्रेजी भाषा में हू-ब-हू नहीं रख सकते, ऐसे अवसर पर चूँकि दो भाषाएँ बिलकुल समान नहीं होतीं, इसीलिए यह आवश्यक होता है कि हमें किसी निहित भाव की रक्षा के लिए कुछ औपचारिक सुन्दरताओं का त्याग करना पड़े।

४) संदेश के सारांश का बनाये रखने के लिए, रूप को परिवर्तित कर देना ज़रूरी है।

यदि सभी भाषाएँ रूप में एक-दूसरे से भिन्न हैं (चूँकि उनकी मौलिकता इसी में है कि वे दो भाषाएँ हैं) तो यदि सारांश को बनाये रखना है, तो रूप को बदल देना बिलकुल स्वाभाविक ही होगा।

ऊपर हमने बँगला से हिन्दी, लैटिन से अंग्रेजी, फारसी से अंग्रेजी में किये गये अनुवादों के संबंध में विभिन्न ख्याति प्राप्त अनुवादकों के विचारों एवं सिद्धांतों का विवेचन किया है। भारत में ही उत्पन्न उर्दू भाषा में किये गये अनुवाद कार्य के संबंध में उर्दू विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के रीडर डॉ॰ जहीर अहमद सिद्दीकी के विचारो को भी हम इसी प्रसंग में अपने समक्ष रखकर अनुवाद की महत्ता एवं वास्तविकता के बारे में सोचेंगे और देखेंगे कि अनुवाद की व्यापकता कहां तक सार्थक है। डॉ॰ सिद्दीकी के 'उर्दू में अनुवादकार्य' का हिन्दी अनुवाद भारतीय अनुवाद परिषद् की प्रसिद्ध पत्रिका अनुवाद के नवम्बर-फरवरी ६६-६७ के अंक में प्रकाशित है। (अनु. रमेशचन्द्र [illegible])

उन्होंने लिखा है कि उर्दू में अनुवाद कार्य काफी पहले प्रारम्भ हो चुका था। एक तरह से उर्दू स्वयं अनुवाद का एक शाश्वत रूप है। इसका आविर्भाव उन समस्याओं के कारण हुआ जो भारत में फारसी बोलनेवालों के कारण मुसलमानों के सामने आयी। उन लोगो ने अनुभव किया कि इस वातावरण में फारसी भाषा का प्रयोग न तो अब संभव है और न वांछनीय। भारत के लोग चाहते थे कि वे यहाँ की विचारधाराओं या भावनाओं में ढल जायँ। अत: उर्दू को अपनाकर उन्होने दोनों देशों के बीच एक नये संतुलन या नयी दिशा की स्थापना की। इस विषय में दो देशों का संबंध होना स्वयं अनुवाद का मूल तत्त्व था।

इस संबंध में फारसी से उर्दू में काव्यानुवाद की सार्थकता क्या है इस पर विचार न कर धर्मशास्त्रों के क्षेत्र में अनुवाद की आवश्यकता पर विचार करने पर हम यह देखते हैं कि प्राय: सभी देशों के साहित्य के इस दृष्टि से अनुवाद ने मानव जाति का बड़ा उपकार किया है। एक देश से दूसरे देश के धर्म के प्रचार की स्थिति में तो अनुवाद की आवश्यकता होती ही है, लेकिन इसके समकक्ष एक ही देश में कालांतर में भाषा के नये रूप में परिवर्तित हो जाने के कारण भी अनुवाद की आवश्यकता पड़ जाती है। जब वैदिक संस्कृत की भाषा लोगों के लिए सुगम नहीं रही तो सामान्य जन की नवविकसित भाषा लौकिक संस्कृत में धर्मशास्त्रों का लिखित अनुवाद भी हुआ और बाद में उनका बोलियों में लिखित रूप में न सही, लेकिन विभिन्न कथावाचकों द्वारा व्याख्यान के रूप में अनुवाद ही जनता के समक्ष जनता

की बोली में रखा गया। इस प्रसंग में डॉ० सिद्दीकी ने उर्दू के बारे में जो अपने विचार व्यक्त किये हैं वे इस प्रकार हैं :-

"कवियों के अतिरिक्त अनुवादों की सबसे अधिक आवश्यकता अनुभव करनेवाले व्यक्ति धर्म-शास्त्री थे। नयी पीढ़ियाँ उनके साहित्यिक कार्यों और प्रणालियों को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हुईं, इसलिए धर्मशास्त्रियों ने अपनी बात समझाने के लिए सुगम मार्ग अपनाने का निश्चय किया। उन्होंने अपने लेखन में कठिन और शुद्ध शब्दों के स्थान पर अरबी और फारसी के समानार्थी ग्राम्य शब्दों का प्रयोग किया। उन्होंने कुरान का अनुवाद ऐसी उर्दू में किया जो इस पवित्र ग्रंथ के लोकप्रिय रूप में अपनी उपादेयता खो चुकी है।"

उन्होंने इसी प्रसंग में आगे लिखा है- "इन नक्कालों ने अरबी और फारसी ग्रंथों के जो अनुवाद किये उन्हें पढ़ने के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता था और अनूदित ग्रंथों को समझना मूल ग्रंथों को समझने से भी अधिक प्रयास साध्य था। दुर्भाग्य से गत वर्षों में भारत में अरबीवाद भिन्न-भिन्न रूपों में पनपा और इससे धार्मिक क्षेत्रों में अनुवाद की यह गलत पद्धति जड़ पकड़ती गयी। आज भी बहुत-से धर्मशास्त्रियों का यही विचार है कि जनता में धर्मप्रचार करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि आभिजात्य स्रोतों से अनगढ़ शब्दावली उधार ले ली जाय।"

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि अनुवाद से प्रत्येक विकासशील भाषा को बल मिला है। यही कारण है कि वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, नयी दिल्ली ने अनुवाद को एक सेतु माना है। उनके विचार हैं- आज ज्यों-ज्यों संसार के भिन्न-भिन्न भागों के लोग एक-दूसरे के अधिक निकट आ रहे हैं और भाषाओं तथा राजनीति की सीमाओं को लाँघकर एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं, त्यों-त्यों इस प्रकार के अधिकाधिक सेतुओं की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। हमारे अपने देश के लिए भी अनुवाद की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। चाहे अपने देश के विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों के लोगों के साथ एक अपनी सौन्दर्यानुभूतियों का सम्प्रेषण करने के लिए हो या अपनी बात उन तक पहुँचाने के लिए हो अथवा विदेशी भाषा-भाषियों के साथ वैचारिक आदान-प्रदान या पत्र-व्यवहार करने के लिए हो, हमें अनुवाद की एक विस्तृत योजना बनानी ही होगी। अनुवाद कार्य में शब्दावली की समस्या के समाधान के लिए हमें संस्कृत भाषा का सहारा लेना ही होगा। यह सच है कि अनेक ऐसे शब्द हैं जो एकाधिक भारतीय भाषाओं में यद्यपि समान हैं परन्तु उनके अर्थों में भिन्नता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि एक ही शब्द का एक प्रदेश में एक अर्थ है, तो दूसरे में कुछ और है।

उदाहरणार्थ 'उपन्यास' हिन्दी और बँगला में उपन्यास ही है परन्तु तेलुगु में इसका अर्थ भाषण है। शिक्षा का अर्थ हिन्दी में अध्यापन और विद्या है लेकिन मराठी में इसका अर्थ दण्ड है। हिन्दी और उर्दू में चर्चा का प्रयोग सामान्य कथन के संदर्भ में होता है परन्तु वही शब्द मराठी में घृणा का सूचक है। हिन्दी में तरुण का अर्थ है युवक परन्तु तेलुगु में इसका अर्थ है समय। हिन्दी में संसार विश्व का पर्याय है जबकि तेलुगु में यह परिवार है। हिन्दी में चोट घाव है परन्तु कई प्रदेशों महाराष्ट्र आदि में यह अशिष्ट शब्द है। हिन्दी प्रदेश में क्षेत्र का अर्थ खेत है, किन्तु केरल में इसका प्रयोग मंदिर के अर्थ में होता है।

इसलिए संस्कृत भाषा से शब्दों को ग्रहण करते समय भी अनुवादकार्य की शुचिता एवं शुद्धता के लिए यह आवश्यक होगा कि प्रत्येक शब्द के अर्थ ग्रहण में ऊपर लिखे अनुसार कोई द्विविधा की

स्थिति उत्पन्न न होने दी जाय। भारतीय संस्कृति की रक्षा की पृष्ठभूमि पर विचार करने पर यह निश्चय ही मानना होगा कि इस देश की सभी संस्कृतियों एवं भाषाओं के संरक्षण एवं संवर्द्धन में संस्कृत भाषा का अद्वितीय योगदान है। जब भारत का संपर्क विदेशियों से हुआ, तो विदेश से आये विद्वानों का ध्यान इस समृद्ध भाषा की ओर गया। ऐसे ही एक अंग्रेज विद्वान् सर विलियम जोन्स ने लिखा है- कि संस्कृत कई दृष्टियों से लैटिन एवं ग्रीक भाषाओं से भी ऊँचा स्थान रखती है। संस्कृत भाषा के महत्त्व पर विचार करते हुए इस देश के भूतपूर्व स्व॰ प्रधानमंत्री पं॰ जवाहरलाल नेहरू ने एक सिम्पोजियम में कहा था- कि संस्कृत में आश्चर्यजनक जीवनीशक्ति है और इसका प्रमाण इस बात में मिलता है कि जब अफगान शासकों द्वारा दिल्ली में शासन स्थापित किये जाने के बाद यहाँ की राजकाज की भाषा का स्थान उर्दू या फारसी लेने लगी, तो उस समय प्रबुद्ध वर्ग धीरे-धीरे संस्कृत के अध्ययन से हटकर उर्दू-फारसी के अध्ययन की ओर आकृष्ट होता गया। इसी क्रम में जनता की लोकप्रिय भाषाओं का भी अभ्युदय होता गया। लेकिन इस क्रम में संस्कृत का लोप नहीं हो सका। इसका अध्ययन-अध्यापन चलता रहा। हाँ, यह सच है कि इसकी गुणात्मक शक्ति में कमी आने लगी।

इस प्रसंग में पंडित नेहरू ने आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास में संस्कृत के प्रयोग के कारण होनेवाली बाधाओं की भी चर्चा की है और कहा है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास में संस्कृत के प्रयोग सातत्य बाधक है। इसका कारण यह है कि शिक्षित वर्ग आधुनिक भारतीय भाषाओं में तैयार की जानेवाली कृतियों को नीची निगाह से देखते हैं। इन विद्वानों की दृष्टि में संस्कृत या फारसी में रचित कृतियों की तुलना में आधुनिक भारतीय भाषाओं की रचनाएँ किसी भी तरह समकक्ष नहीं हो सकतीं। फलस्वरूप आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचना करनेवाले साहित्य-सेवी बहुत साहस करके कुछ लिखते हैं। लेकिन इन सारी बाधाओं के बावजूद आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास शताब्दियों से होता गया और अब उनमें अधिकांश भाषाएँ ऐसी हैं जो कृतियों की दृष्टि से बहुत समृद्ध हो चुकी हैं।

इन भाषाओं में हिन्दी के विकास में संस्कृत, उर्दू एवं अंग्रेजी का योगदान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यह बात दूसरी है कि अन्य भारतीय भाषाएँ भी संस्कृत से बहुत-कुछ पाती रही हैं। भाषावैज्ञानिकों के अनुसार भारतीय भाषाओं में तमिल जैसी द्रविड़ परिवार की कुछ प्रमुख भाषाएँ संस्कृत से उत्पन्न नहीं मानी जातीं। फिर भी तमिल में भी संस्कृत के पर्याप्त शब्द आ गये हैं और यही कारण है कि साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति के मन में यह विश्वास रहता है कि तमिल भी संस्कृत से ही उत्पन्न भाषा है। खड़ीबोली हिन्दी के विकास में १९वीं शताब्दी के योगदान पर विचार करते समय अनुवाद के महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में ही उल्लेख किया गया है, खड़ीबोली में संस्कृत से अनुवाद का कार्य अठारहवीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हो गया था। लेकिन यह अनुवाद कार्य बहुत अधिक व्यापकता नहीं प्राप्त कर सका। इसमें प्रमुख कारण उस समय प्रेस एवं अन्य सम्पर्क सुविधाओं का अभाव कहा जा सकता है।

ज्यों-ज्यों ईस्ट इंडिया कम्पनी के पैर जमते गये और भारत का शासन उसके हाथ में आता गया, देश के भीतर एक नयी विदेशी जाति के संपर्क से कई क्षेत्रों में परिवर्तन दिखायी पड़ने लगे। मिशनरी पादरियों के आने के बाद तो स्थिति ने और भी गति पकड़ ली। इन पादरियों में से कुछ इतने अधिक

परिश्रमी एवं लगनशील थे कि उन्होंने इस देश की भाषा सीखने में कठिन तपस्या की। संस्कृत और लैटिन के एक ही भाषा कुल की भाषाएँ होने से उन्हें सुविधा हुई और उन्होंने सबसे पहले संस्कृत का अध्ययन किया। उन्होंने बाइबिल के संदेश को भारतीय जनता में पहुँचाने के उद्देश्य से अनेक भारतीय भाषाओं में इसके अनुवाद की व्यवस्था की । अंग्रेजी या लैटिन से सीधे हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में योग्य अनुवादक न मिल पाने की कठिनाई के समाधान के लिए उन्होंने स्वयं बाइबिल का अनुवाद सीधे संस्कृत में करने का प्रयास किया। इसमें उनकी यह इच्छा थी कि संस्कृत की अनूदित कृति से पुन: भारतीय भाषाओं में स्थानीय पंडितों द्वारा अनुवाद कराना अधिक आसान हो जायगा।

ऐसे मिशनरी विद्वानों में विलियम केरी का महत्त्व सर्वाधिक है। उनके प्रयास से बाइबिल हिन्दी की प्रथम मुद्रित पुस्तक के रूप में जनता के सामने आयी। यद्यपि इस पुस्तक का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर अधिक न पड़ा, फिर भी इसके योगदान से इन्कार नहीं किया जा सकता। उस युग में अनेक वर्नाक्यूलर स्कूल खोले गये और इन स्कूलों के लिए पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया। ये वर्नाक्यूलर स्कूल मिशनरियों के द्वारा भी खोले गये थे। इनकी कितनी ही पाठ्यपुस्तकों का निर्माण पाश्चात्य शिक्षकों ने ही किये और करवाये। यही कारण था कि इन पुस्तकों की भाषा भारतीय भाषा में अनूदित बाइबिल की भाषा से प्रभावित थी। डॉ॰ केरी ने विभिन्न भाषा क्षेत्रों में सैकड़ों मील दूर पंडितों की सहायता से बँगला के अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं में अनुवाद कराये थे। डॉ॰ विलियम केरी का जनता से प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं था। वे उनकी बोलचाल की भाषा से परिचित थे। उनका भाषा ज्ञान पंडिताऊ था। उनके सहायक पंडित थे। परिणामस्वरूप उनके बाद के पाश्चात्यों का हिन्दी वाङ्मय डॉ॰ विलियम केरी एवं श्री रामपुर के मिशनरी समाज से प्रभावित हुआ। अतएव बहुत समय तक इस वाङ्मय की भाषा पंडिताऊ रही, शैली में कृत्रिमता बनी रही। पाश्चात्य लेखक भूल गये कि भाषा का विकास होता है और भाषा झील नहीं पहाड़ी झरना होती है।

हम ऊपर कह आये हैं कि हिन्दी गद्य का आरंभ अनुवाद से हुआ है। ये अनुवाद या तो संस्कृत से किये गये अथवा अंग्रेजी से। पाश्चात्यों का हिन्दी वाङ्मय सीधे अंग्रेजी से रूपांतरित होकर प्रकाशित हुआ।

डॉ॰ विलियम केरी का नाम तत्कालीन अनुवादकों में बड़े आदर से लिया जाता है। इन्हीं के समकालीन बाइबिल के एक दूसरे अनुवादक भी थे, जिनका नाम विलियम बाडले था।

अनुवाद-सिद्धान्तों का निचोड़ यह है कि अनुवाद तीन प्रकार के माने जाते हैं -

१) शाब्दिक अनुवाद

२) भावप्रधान अनुवाद

३) मूल के अधिकतम निकट तुल्यता प्रधान अनुवाद।

शाब्दिक अनुवाद कभी-कभी वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य के मामले में कुछ आवश्यक हो सकता है। एक भाषा दूसरी भाषा से भिन्न होती है। एक के विचार उन्हीं पर्यायवाची शब्दों में दूसरी भाषा में व्यक्त नहीं किये जा सकते। यही कारण है कि शाब्दिक अनुवाद भद्दा और अस्वाभाविक हो जाता

है। शब्द विचारों के वाहक और भाव के प्रतीक होते हैं और भावों के अतिरिक्त उनका कुछ मूल्य नहीं होता।

भावात्मक अनुवाद में अनुवादक मूल कृति के सारांश और भावों को लेकर उन्हें अपने विचारों और शब्दों में प्रस्तुत करता है। वह मूल रचना को पढ़कर जो विचार अपने मन में अंकित करता है, उन्हीं को अनुवाद में रख देता है। भावप्रधान अनुवाद का एक उदाहरण इस वाक्य में मिलता है कि मैं ही सच्चा जीवन हूँ- (I am bread of life)। यहाँ शाब्दिक अनुवाद से भाव की हत्या हो जायगी। पर भावात्मक अनुवाद में भी दोष होता है और वह दोष यह है कि अनुवादक निष्पक्ष नहीं रह पाता। वह अनूदित कृति में अपनी रुचि आरोपित करता है।

मूल के अधिकतम निकट तुल्यता प्रधान अनुवाद तीसरे प्रकार का अनुवाद ऊपर के दोनों अनुवादों की चरमसीमा के बीच एक लड़ी है। इसके अनुसार शाब्दिकता की उपेक्षा के साथ अनुवादक के भाव-विचारों पर प्रतिबंध होता है। ऐसा अनुवाद स्वाभाविक,मुहावरेदार, मूल कृति के अर्थ के अनुरूप होता है। ऐसी अनुवाद-कृति पढ़ने में जरा भी कृत्रिम नहीं मालूम पड़ती और बिलकुल मूल कृतिप्रतीत होने लगती है।

डॉ॰ विलियम केरी के अनुवाद में जो प्रयास किया गया है, वह प्रारंभिक स्थिति की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पं॰ अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने हिन्दी भाषा के इतिहास में कहा है- "यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पादरी साहिब (डॉ॰ केरी) की भाषा अपने पूर्ववर्ती लोगों से अधिक प्रांजल है और उसमें खड़ीबोली का अधिकतर विशुद्ध रूप पाया जाता है। वह हरिश्चन्द्रकालिक हिन्दी के सन्निकट है। उसको देखकर यह विश्वास नहीं होता कि उस समय किसी पादरी की लेखनी से ऐसी भाषा लिखी जा सकती है। मुझको इसमें किसी योग्यतम हिन्दू के हाथ की कथा दृष्टिगत होती है।"

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी डॉ॰ केरी की भाषा को 'विशुद्ध हिन्दी' संबोधित किया है। इस बात की सत्यता की जाँच के लिए हम विलियम केरी के अनुवाद के कुछ अंशों को उद्धृत करने का लोभ संवरण नही कर सकते :-" If I speak in the tongue of men and of angels, but haye not love, I am a noisy gong on a changing cymatal. And if l have prophetic powers and understand all mystries and all knowledge, and if I have all faith, so as to remove mountain, but have not love, I am nothing. If I give away all I have, and if I deliver my body to be burned, but have not love, I gain nothing."

"मैं जो आदमियों की व फरिश्तों की जुबान बोलता हूँ, तो भी मेरा प्रेम न होने से मैं आवाज करने हारे पीतल के जैसा या के ठनठनिये मंदोरे के जैसा। मेरी जो नवी की बातें कहने की मकदूर है और सारा तत्त्व वा सब विद्या जो मैं जानता हूँ और जिसमें पहाड़ लाँघ सकूँ जैसा भी मुझे सब सूरत विश्वास होय तो भी मेरा प्रेम न होने से मैं कुछ नहीं। कंगाल लोगों की परवरिश के वास्ते मेरी सारी दौलत भी जो बाँट देवुं और अपना सरीर भी जो जलावने का देवुं तो भी मेरा प्रेम न होने से मुझे कुछ फायदा नहीं। प्रेम बहुत दिन बरदाश्त करता है व नर्म खासियत होती है। प्रेम हिंसा करता नहीं प्रेम में तअम्मूल नहीं और यह अलंकारी भी नहीं, बदनुमा काम करता नहीं, अमानी तल्लाश करता नहीं। एक

बारगी गुस्सेवार नहीं, कुछ बुरा चाहता नहीं। अयथार्थ में आनन्द नहीं करता है,लेकिन सच्ची बात पर आनन्द करता है सबको ढाँकता है, सबको यातकाद करता है सबकी तबक्षी करता है सबको फीगेज करता है। प्रेम कभी मिटता नहीं लेकिन नवी की ना कहो वह मिटेगा मासा जा उन्हीं का अंत होगा विथा जा कहो वह भी गुन होगी- विश्वास आसा प्रेम यिंह तीन बरकरार हैं, मगर उन्हीं के बीच प्रेम बड़ा हो।''

ऊपर के उद्धरण से यह स्पष्ट है कि विलियम केरी ने भावों की रक्षा के लिए पूरी सतर्कता बरती है। तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार हिन्दी में उर्दू-फ़ारसी के शब्दों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। ऊपर के अंशों में फिरिश्तों, जुबान, नबी, मकदूर, तल्लाश, गुस्सेवार, तवक्कर आदि शब्दों के कारण उर्दू एवं फारसी का प्रभाव स्पष्ट है।

यही कारण है कि पाश्चात्यों के आरंभिक अनुवादों में ब्रजभाषा का अमिट प्रभाव देखा जा सकता हैं उनके अनुवाद की विशेषताएँ हैं -

(१) शाब्दिकता
(२) वाक्यों की बनावट अंग्रेजी ढंग पर
(३) भाषा घरेलू
(४) मुहावरेदार
(५) अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग
(६) विराम-अल्पविराम का प्रचलन
(७) व्याकरणसम्मत भाषा का आग्रह
(८) दोहा-चौपाई का प्रसंगवत् प्रयोग।

सौन्दर्यवादी क्रोचे की मान्यता है कि ''साहित्य में अनुवाद कार्य संभव नहीं। यदि किसी कृति का रूपान्तर दूसरी भाषा में किया जाय, तो रूपांतरित कृति अपने आप में स्वतंत्र रचना होती है। क्योंकि कला अखण्ड है। कुछ सीमा तक यह कथन सत्य है। पर अनुवाद-कार्य अनुवादक की प्रतिभा पर निर्भर है। रूपांतरकार जितना प्रतिभाशाली, भाषाओं का पूर्णज्ञाता, अनुवाद शास्त्र का पंडित होगा, सफलता उतनी ही सुनिश्चित है।'' विलियम वाडले इस सत्य के ज्वलंत उदाहरण थे। वे बहुभाषा विज्ञ थे। उनके अनुवाद में आकर्षण था। मौलिकता की झलक थी। भाषा में प्रवाह था। गंभीर अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता कूट-कूटकर भरी थी। उनके द्वारा अंग्रेजी भाषा से किया गया बाइबिल का अनुवाद हिन्दी गद्य साहित्य में आरंभिक अनुवादों में श्रेष्ठतम है।

पाश्चात्य हिन्दी वाङ्मय और भारतीय हिन्दी साहित्य के अनुवादों में एक विशिष्ट अंतर है। पाश्चात्य हिन्दी वाङ्मय में मूल को बनाये रखने के लिए अनुवादक ने भाषा-शैली की स्वाभाविकता की उपेक्षा की है। पर भारतीय हिन्दी अनुवादक ने मूलकृति के भाव को ग्रहण कर अभिव्यक्ति को यथासंभव अकृत्रिम बनाने के प्रयास में एक नयी ही रचना रची है।

पाश्चात्य हिन्दी वाङ्मय परिमाण में प्रशंसनीय था। पर कलातत्त्व का उसमें अपेक्षाकृत अभाव था, क्योंकि वह प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर नहीं लिखा गया। वह प्रयाससिद्ध अधिक है।

लेकिन उसी काल में पाश्चात्य विद्वानों के अतिरिक्त भाषा के क्षेत्र में एक नयी रेखा का प्रादुर्भाव तब हुआ जब फोर्ट विलियम कॉलेज में ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज कर्मचारियों को भारतीय भाषा के प्रशिक्षण की आवश्यकता समझी गयी। इस क्षेत्र की सबसे नयी बात यह थी कि इसमें बाइबिल जैसी अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत करने की बात को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया, बल्कि संस्कृत के जन-प्रचलित ग्रंथों के ही अनुवाद कराये गये। इसी क्रम में श्री लल्लू लाल कवि एवं पं० सदल मिश्र के योगदान हैं। इस संबंध में पं० सदल मिश्र ने अपनी दोनों पुस्तकों के प्रारम्भ में जो विचार दिये हैं, उनके उदाहरण इस प्रकार हैं :-

"चित्र विचित्र सुन्दर बड़ी-बड़ी अटारिन से इन्द्रपुरी समान शोभायमान नगर कलिकत्ता महा प्रतापी वीर नृपति कम्पनी महाराज के सदा फूला फला रहे, कि जहाँ उत्तम-उत्तम लोग बसते हैं और देश-देश से एक-से-एक गुणी जन आप-आप अपने गुण को सुफल करि बहुत आनन्द में मगन होते हैं।

नाम सुन सदल मिश्र पंडित भी वहाँ आन पहुँचा वे बड़ी बड़ाई सुनि सर्व विद्या निधान ज्ञानवान महाप्रभान श्री महाराज जान गिलकृस्त साहब से मिला कि जो पाठशाला के आचार्य हैं तिनकी आज्ञा पाय दो-एक ग्रंथ संस्कृत से भाषा वो भाषा से संस्कृत किये। (अब सम्वत् १८६० में नासिकेतोपाख्यान) जो कि, जिसमें चंद्रावती की कथा कही है, देववाणी से कोई समझ नहीं सकता, इसलिए खड़ीबोली में किया।" (चन्द्रावती)

इसी प्रकार रामचरित या अध्यात्म रामायण के प्रारम्भ में भी पं० सदल मिश्र ने जो शब्द कहे हैं वे भी उदाहरणीय हैं :-

"अब इस पोथी के भाषा करने का कारण यिह है कि मैं जो सदल मिश्र पंडित हूँ मुझको पाठशाला में जो साहब लोगों के लिए कलकत्ता में हुई, संस्कृत की पोथियाँ भाषा करने को महा उदार सकल गुण निधान मिस्तर जान गिल्कृस्त साहब ने ठहराया ओं एक दिन आज्ञा की कि आध्यात्म रामायण को ऐसी बोली में करो जिसमें फारसी अरबी न आवे। तब मैं इसको खड़ीबोली में करने लगा और सम्वत् १८६२ (सन् १८०५) में नौ आव उवरनन वल्ज़ली लार्ड मारटंग साहब बहादुर के राज्य में इस पोथी को समाप्त किया और नाम इसका राम चरित्र पर जहाँ कहीं कठिन वेदांत था मैंने देखा कि इसकी भाषा सब कोई समझ न सकेगा इस कारण बुसे छोड़ दिया अब गुणवानों से यिह भरोसा है कि इस पोथी के बीच जिस जगह ऊँच नीच देखें तो कृपा कर बुस दोष को हियावें औ अशुद्ध को शोधें।" (रामचरित)

ऊपर के दोनों उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि पंडित सदल मिश्र को उपर्युक्त दोनों पुस्तकों का खड़ी-बोली में अनुवाद करने का काम जॉन गिलक्राइस्ट ने इस उद्देश्य के साथ सौंपा था कि ये अनूदित पुस्तकें पाठशाला अर्थात् फोर्ट विलियम कॉलेज के लिए उपयोगी होंगी। उन्हें नासिकेतोपाख्यान के अनुवाद का कार्य सन् १८०३ में तथा अध्यात्म रामायण का सन् १८०५ में सौंपा गया। संस्कृत से हिन्दी अनुवाद का यह कार्य एक दूसरे भाषा मुंशी श्री लल्लू लाल कवि के द्वारा भी सम्पन्न हो रहा था। लल्लू लाल [illegible]ा प्रेमसागर की रचना का समय भी सन् १८०३ ही था। लल्लू लाल ने फोर्ट विलियम कॉलेज में रहकर एक दर्जन पुस्तकों की रचना की। लेकिन इन पुस्तकों में से एक भी पुस्तक शायद ही अनूदित रूप में है। सिर्फ एक पुस्तक राजनीति संस्कृत की प्रसिद्ध पुस्तक हितोपदेश का अनुवाद कही जा सकती है। शेष पुर[illegible]कों की स्थिति यह है कि उनमें से अधिकांश ब्रजभाषा की किसी-न-किसी पुस्तक का

खड़ीबोली में प्रस्तुतिकारण ही है। इन पुस्तकों की सूची इस प्रकार है-

(१) सिंहासन बत्तीसी- १८०१- इसकी रचना सुन्दर कवीश्वर की ब्रजभाषा में लिखित पुस्तक के आधार पर की गयी है।

(२) बैताल पचीसी -१८०१- सुन्दर कवीश्वर की ब्रजभाषा की पुस्तक से

(३) शकुन्तला नाटक-१८०१- नेवाज की ब्रजभाषा पुस्तक से

(४) माधोनल -१८०१- मोतीराम की ब्रजभाषा पुस्तक से

(५) राजनीति-१८०२-संस्कृत हितोपदेश से अनूदित

(६) प्रेमसागर १८०३-१८१० चतुर्भुज मिश्र की ब्रजभाषा से

(७) लतीफा-इ-हिन्दी १८१०-मनोरंजक कहानियों का संग्रह

(८) ब्रजभाषा में विभक्ति एवं संयोग के सामान्य सिद्धान्त अर्थात् ब्रजभाषा व्याकरण

(९) सभा विलास १८१७- ब्रजभाषा और अवधी बोलियों में कविताओं का संग्रह

(१०) विद्या दर्पण १८१८

(११) माधोविलास १८१७- माधो और सुलोचना की गद्य-पद्य मिश्रित कथा

(१२) लाल चंद्रिका १८१८

ऊपर की सूची से यह स्पष्ट है कि लल्लू लाल जी की ऊपर की रचनाओं में से शयद ही उनकी कोई रचना मौलिक है। उनकी ब्रजभाषा ग्रामर को छोड़कर शेष सभी रचनाएँ अधिकांश ब्रजभाषा पर आधारित हैं। हितोपदेश के एक श्लोक का अनुवाद नीचे उदाहरण योग्य है -

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।

पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मम् ततः सुखम्।।

पुनि जैसे कहयो है कि सब पदार्थनि में विद्यारूपी पदार्थ उत्तम है क्योंकि आहार की देनवारी पुन्य मार्ग की दिखावन हारी अरु सदा चतुराई की दाता है जाको भाग न ले सके अरु मोल नहीं वाक्य नहीं यह गुप्त धन याकों चोर ठगराज छल करिन ले सके विद्या देती है नम्रता पाये भयो सुपाव भये मिलतू है धन धन मिले करतु है धर्म धर्म सें सुखी रहतु है अरु जैसे नदी नारे को समुद्र पहुँचावे तैसे विद्या नर कों राजा तक ले जाय आगे जैसो वाके कपार में लिख्यो होय तैसो फल मिले (राजनीति प्रथम संस्करण,१८०९)

अनुवाद की दृष्टि से मूल्यांकन करने पर इसमें शब्दानुवाद शैली का प्रयोग ही दिखायी पड़ता है। लेकिन अनुवादक के रूप में वह स्थान पाने या विशेष महत्त्वपूर्ण होने की बात इस छोटी-सी रचना से प्रमाणित नहीं होती। हाँ, श्री लल्लू लाल जी की इस रचना १८०१ से यह जरूर प्रमाणित होता है कि फोर्ट विलियम कॉलेज में अनुवाद का प्रथम प्रयास करनेवाले या अनूदित रूप में प्रथम पुस्तक प्रस्तुत करनेवाले व्यक्ति लल्लू लाल कवि ही ये।

सन् १८०१ में ही लल्लू लाल द्वारा रचित दूसरी पुस्तक सिंहासन बत्तीसी के संबंध में जो उल्लेख उसी पुस्तक में मिलता है, मैं उसे भी उद्धृत करना आवश्यक समझता हूँ।

यह कहानी सिंहासन बत्तीसी की संस्कृत में थी- शाहजहाँ बादशाह की फर्माइश से- सुन्दर कवीश्वर ने ब्रज की बोली में कही- अब शाहआलम बादशाह के अहद में मुवाफिकि इरतादि जनाबि जान गिलकृस्त साहिब्वाला मनावियसनि बारह सौर पंदरह हिजरी- मुताखिकिलनि अठारह सौर एक ईसवी-काजिम अली शहर ने जिसका तखल्लुस जवाँ है श्री लल्लू लाल जी कवि की मदद से मुहावरे खास औ आम में अहलिहिंद के लिखी- इसलिए कि नौसिख साहिबों के सीखने और समझने को सहज हो और हर एक के रोजमरे की उन्हें समझ हो- हिन्दू मूसलमान शहरी बेसंजाती-अअला अदना के कलाम को जाने-दूसरे के समझाने के मुहताज न हों (पृ॰१,२)

इसी प्रकार श्री लल्लू लाल जी कवि की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना प्रेमसागर भी एक ऐसी ही पुस्तक है जिसे उन्होंने श्री चतुर्भुज मिश्र के ब्रजभाषा पद्यानुवाद से खड़ीबोली में प्रस्तुत किया। इसमें भागवत पुराण के दशम स्कंध में वर्णित कृष्ण कथा को ही ऐसी भाषा में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें ब्रजभाषा के ही शब्दों को ज्यों-के-त्यों या थोड़े विकृत रूप में प्रयुक्त किया गया है। प्रेमसागर की रचना की प्रथम पंक्तियों में ही यह अभ्युक्ति मिलती है कि एक समय व्यासदेव की श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कंध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने दोहे-चौपाई में ब्रजभाषा किये पाठशाला के लिए।

इससे यह भी अनुमानित हो रहा है कि श्री चतुर्भुज मिश्र भी फोर्ट विलियम कॉलेज के पाठ्यक्रम के लिए पुस्तकों की रचना में लगे थे और वे संस्कृत से ब्रजभाषा में पुस्तकों की रचना कर रहे थे।

लल्लू लाल जी ने उसी पाठ्य पुस्तक को खड़ीबोली में प्रस्तुत किया। अत: हम उन्हें अनुवादक की कोटि में नहीं रख सकते और इसीलिए उनकी प्रसिद्ध कृति 'प्रेमसागर' का अध्ययन अनूदित कृति के रूप में नहीं कर रहे हैं।

लल्लू लाल जी के समकालीन सहयोगी सदल मिश्र पंडित भी फोर्ट विलियम कॉलेज के एक दूसरे भाषा पंडित थे। यद्यपि वास्तव में इनका कार्यकाल १८०३-१८०९ बहुत थोड़ा रहा, फिर भी उनकी रचनाओं का स्थान प्रशंसनीय रहा। उनकी रचनाओं को अपने समय में प्रकाशित होने का भी अवसर नहीं मिल सका। उनकी रचनाओं का क्रम इस प्रकार है :-

१) चन्द्रावती या नासिकेतोपाख्यान १८०३
२) रामचरित या अध्यात्म रामायण - १८०६
३) हिन्दी फारसी शब्दावली -१८०९
४) तुलसीदास के रामचरित मानस का संपादन -१८१०

पं॰ सदल मिश्र की ऊपर की प्रथम दो पुस्तकें संस्कृत की क्रमश: नासिकेतोपाख्यान एवं अध्यात्म रामायण का अनुवाद हैं। इन दोनों पुस्तकों के प्रारंभ में ही लेखक ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है:-

"नाम सुन सदल मिश्र पंडित भी वहाँ आन पहुँचा वो बड़ी बड़ाई सुनि सर्व विद्या निधान ज्ञानवान महाप्रधान श्री महाराज जान गिलकृस्त साहब से मिला कि जो पाठशाला के आचार्य हैं। तिनकी आज्ञा पाय दो एक ग्रंथ संस्कृत से भाषा वो भाषा से संस्कृत किये।

अब संवत् १८६० में नासिकेतोपाख्यान को कि, जिसमें चन्द्रावती की कथा कही है, देववाणी से कोई-कोई समझ नहीं सकता, इसलिए खड़ीबोली में किया।"

"अब इस पोथी को भाषा करने का कारण यिह है कि मैं जो सदल मिश्र पंडित हूँ, मुजको

पाठशाला में जो साहब लोगों के लिए कलकत्ता में हुई संस्कृत की पोथियां भाषा करने का महा उदार सकल गुण निधान मिस्टर जॉन गिलकृस्त साहब ने ठहराया औ एक-दिन आज्ञा की कि अध्यात्म रामायण को ऐसी बोली में करो जिसमें फारसी अरबी न आवे। तब मैं इसको खड़ीबोली में करने लगा औ सम्वत् १८६२ में नौ आप गदरकन वन्डाली लार्ड मारतंग साहब बहादुर के राज्य में इस पोथी को समाप्त किया औ नाम इसका रामचरित रखा पर जहां कहीं कठिन वेदान्त था मैंने देखा कि इसकी भाषा सब कोई समझ नहीं सकेगा इस कारण इसे छोड़ दिया अब गुणवानों से यिह भरोसा है कि इस पोथी के बीच जिस जग ऊँच-नीच देखें तो कृपाकर उस दोष को छिपावें औ अशुद्ध को शोधें। (रामचरित - सदल मिश्र ग्रंथावली)

ऊपर के उद्धरणों को प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य मात्र इतना कहने का है कि संस्कृत के उक्त दो ग्रंथों के खड़ीबोली में प्रथम अनुवादक के रूप में पं॰ सदल मिश्र का स्थान सर्वोपरि है। हम उनके इस प्रारंभिक प्रयास का अध्ययन करते समय यह न भूलें कि उनको इस कार्य के सम्पादन में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। उस समय न तो खड़ीबोली गद्य का कोई स्वरूप निर्धारित था और न ही प्रकाशित रूप में इस भाषा के अध्ययन-अध्यापन के लिए पुस्तकें थीं। लेखक के सामने अनुवाद ग्रंथ के रूप में भी कोई ऐसी पुस्तक नहीं थी जिसके आधार पर वह अपने प्रस्तावित कार्य के लिए एक मानदंड निर्धारित कर लेता। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृत भाषा से खड़ीबोली में पुस्तक लेखन के लिए प्रस्तुत लेखक के समक्ष सहायक तत्त्वों के रूप में कुछ भी नहीं था। पं॰ सदल मिश्र की जीवनी के प्रसंग में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे संस्कृत के एक अच्छे ज्ञाता थे और वे अपनी जीविका के लिए सर्वप्रथम कथावाचक का कार्य करते रहे। इसी क्रम में उन्हें जनभाषा का वास्तविक अनुभव हुआ। वे बहुत दिनों तक पटना (बिहार) में कथावाचन करते रहे और उसके बाद कलकत्ते में। फलस्वरूप बिहारी बोलियों का प्रभाव उनकी भाषा पर बहुत अधिक सीमा तक मिलता है। उनके अनुवाद की भाषा पर विचार करने से पहले मैं उनकी अनुवाद कला पर विचार करूँगा और इस दृष्टि से संक्षेप में उनके उपर्युक्त दोनों ही ग्रंथों का अध्ययन करने का प्रयत्न करूँगा।

पं॰ सदल मिश्र की प्रथम रचना 'चन्द्रावती' अथवा 'नासिकेतोपाख्यान' में भावात्मक अनुवाद के लक्षण अधिक हैं। लेखक ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि कहीं अनुवाद की भाषा संस्कृत शब्दों के पर्याय के झंझट के कारण उलझ न जाय। उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा कि जो बातें कथा के लिए जरूरी नहीं हैं, उन्हें छोड़ देना उपयुक्त ही होगा। उदाहरणार्थ पं॰ सदल मिश्र ने पुस्तक के मंगलाचरण के निम्नलिखित प्रथम श्लोक का अनुवाद करना आवश्यक नहीं समझा-

"नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्

देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्"

'सूत उवाच' की शब्दार्थ न देकर कथा सीधे इस प्रकार शुरू कर दी गयी है- "एक समय राजा जनमेजय गंगा के तीर पर बारह बरस यज्ञ करने को रहे। एक दिन स्नान-पूजा करि ब्राह्मणों को बहुत सा दान दे देवता पितरों को तृप्त करके ऋषि और पंडितों को साथ लिये वैशम्पायन मुनि के पास जा, दण्डवत् कर खड़े हो हाथ जोड़, कहने लगे कि "महाराज आप वेद पुराण सब शास्त्र के सार जाननिहार जिस पर व्यास मुनि के शिष्य, सब योगियों में इन्द्र के समान हो। ऐसी कथा, कि जिसके सुनने से पाप कटे और कोई रोग न होय, भर जन्म संसार में अच्छा भोग, अंत में मुक्ति मिले हमसे कहिए" अइ अनूदित अंश के लिए स्रोत भाषा संस्कृत में सिर्फ दो श्लोक हैं- "सूत उवाच - गंगा तीरे सुखासीनः कृतस्नानो

हचलंकृत:।। दानं दत्ता च विधिवद् द्विजेभ्यो जनमेजय:। जनमेजय उवाच- पृच्छामि ते महाप्राज्ञ सर्वशास्त्र विशारद। कथयस्व कथां दिव्यां सर्वपाप प्रणाशिनीम्। यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो: मुच्यते नात्र संशय:। आदि शब्दों के न तो अर्थ दिये गये और न ही पर्याय, बल्कि इसके अतिरिक्त हिन्दी रूपांतर में ऐसे शब्द भी आ गये हैं, जिनके संस्कृत शब्द स्रोत भाषा के संबंधित अंश में के ही नहीं- जैसे- 'बारह बरस यज्ञ करने के बाद', 'पूजा करि', 'बहुत सा', 'दण्डवत करि खड़े हो हाथ जोड़', 'कोई रोग न होय वेद पुरानन के जाननिहारा' एवं 'भर जन्म संसार में अच्छा भोग' आदि यह स्पष्ट है कि अनूदित भाषा में इन शब्दों का प्रयोग अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए किया गया है और ऊपर संस्कृत के जिन शब्दों के पर्याय नहीं दिये गये, उनसे अर्थ को कोई हानि नहीं पहुँच सकी।

पुन: कथा को आगे बढ़ाते हुए भी इसी सिद्धांत को अपनाया गया है और वैशम्पायन ऋषि के आश्रम के विस्तृत वर्णन के मुख्यांश का अनुवाद ही रखा गया। संस्कृत के मूल ग्रंथ के " नाना द्रुम लताकीर्णं नानापुराणोपशोभितम्। हंसे: कारण्डवैश्चैव चक्रवाकैश्च शोभितम्। संव्यमानं सभा नीकैर्महिशैर्गवयैर्मृगै:।" इन पंक्तियों का अनुवाद सिर्फ यही लिखकर पूरा किया गया कि "उनके सुहावने आश्रम पर कि जिसको बड़े-बड़े मुनि लोग नित्य आप सेवें और जहाँ नाना प्रकार के वृक्षों पर लता सब छा रही थीं" - इस प्रकार नाना पुष्पोपशोभितम् , हंसे: ..... मृगै:" का अनुवाद जरूरी नहीं समझा गया। लेकिन इसके बाद ही मात्र एक श्लोक "समागतं तथा दृष्ट्वा आतिथेयं चकारस:। स्वागतं मुनिशार्दूल विष्टरं चोपविश्यताम्। यदर्थमिह चायातस्तद्वचस्व तपोधन।" देखते ही उद्दालक मुनि खड़े हो गये, सिर नवा प्रणाम वो जैसा कुछ चाहिए वैसा आदर भाव का आसन दे बैठाया। हाथ पांव धोला, कुशल क्षेम दो उनके आवने का कारण पूछा- यहां 'आतिथेय' शब्द को स्पष्ट करने के लिए अनुवादक ने उसकी पूरी व्याख्या कर दी है। आतिथेय के अंतर्गत उठकर खड़ा होना, सिर नवा प्रणाम करना, एक हाथ पाँव धोलाना आदि बातें आ जाती हैं। अनुवादक ने इसे और भी स्पष्ट करने के लिए जैसा कुछ चाहिए वैसा आदर भाव कर आसन दे बैठाया भी अपनी ओर से लिख दिया है।

इसके बाद कथा आगे चलती है और अनुवाद का क्रम बहुत-कुछ मूल के साथ-साथ चलता है। पं० सदल मिश्र की यह अपनी मौलिकता है कि वे अध्याय समाप्त होने पर भी कथा को जारी रखते हैं और भाषा का तारतम्य कहीं टूटता नहीं।

लेकिन द्वितीय अध्याय के प्रारंभ में एक श्लोक का अर्थ कुछ विचित्र-सा प्रतीत होता है- "उद्दालकस्ततो वाक्यं श्रुत्वालन्तरधीयत स्वाश्रम चागतस्तत्र मनस्येतदचिन्तयत्" का अनुवाद आज की टीका की पुस्तक में इस रूप में मिलता है कि "उद्दालक मुनि ब्रह्मा के वचन को सुनकर अन्तर्धान हो गये और वहाँ से अपने आश्रम में आ बैठकर मन में विचार करने लगे कि" और पं० सदल मिश्र के अनुसार अनुवाद इस प्रकार है:- उनका यह वचन सुनते ही ब्रह्मा वहाँ से गुप्त हो गये। तब उद्दालक ने जी में जाना कि विधि "यहाँ अनुवाद अर्थ के अंतर की त्रुटि प्रतीत होती है। इतना ही नहीं "भार्याया: प्रथम पुत्र: श्रुतो दृष्टो न कस्यचित् ब्रह्मण तु भृषेवोल परिहास्यं कृतं मम। कथं मम भवेत् पुत्र: कथं भार्या लभाम्यहम्।" पंक्तियों का अर्थ गुप्त अन्तर्धान होने के बाद आना चाहिए, लेकिन लेखक ने उन्हें इस प्रकार पहले ही प्रस्तुत कर दिया है- "प्रजापति की बात सुनि चकित हो उद्दालक ने कहा कि "महाराज, आप बड़े होकर मिथ्या बात कहते हो कि जो देखने में न आयी, न सुनने में। भला बिना भार्या भी किसी

को पुत्र होता है?

इसके बाद के श्लोकों का अनुवाद क्रमबद्ध रूप में चलता है। पु०: चन्द्रावती के रूप के वर्णन के श्लोकों के अर्थों के विस्तार के लिए लेखक ने कुछ अतिरिक्त विशेषणों का प्रयोग किया है।

चन्द्रावती के गर्भाधान के बाद से उसकी मानसिक एवं शारीरिक स्थिति से संबंधित श्लोकों का अनुवाद बड़ा ही सार्थक और सटीक हुआ है। ऐसे ही प्रसंगों के लिए प्रसिद्ध अनुवाद शास्त्री श्री इड़ा ने लिखा है- जिसका सारांश इस प्रकार है :-

किसी एक भाषा में कही गयी बात को दूसरी भाषा में कहा जा सकता है, लेकिन ऐसा तभी होगा जब भाषा के रूप को ही संदेश का आवश्यक अंग न माना जाय। इस प्रकार सम्बंधित श्लोक नीचे लिखे अुनसार अनुवाद सहित उद्धृत किये जाते हैं-

मासे तु प्रथमे तस्या मीलितं शुक्रशोणितम्
रोमराजित रगंश्य द्विवतीये मासि चाभवत्
तृतीये मासि सम्प्राप्ते शरीरं विपुलायते
चतुर्थे च ततो मासे स्तनं कृष्णामुखं भवेत्
पंचमे मासि सम्प्राप्ते उदरं व्यलिगेति च
सम्भूतमुदरं दीर्घ मासे षष्ठे च सप्तमे,
दुष्ठा चाप्युदरं कन्या भ्रष्टतेजा स्तदाभवत्

अनुवाद- पहिले मास में तो उस कन्या को अधिक से देह में रूप उपजा और दूसरे में गर्भ का लक्षण जानने में आया। तीसरे मास में पियरा मुँह हो गया। चौथे में रोएँ अलग-अलग होने लगे (स्तन की बात छोड़ दी गयी) पाँचवें में कुच और नितम्ब ऐसे भारी हुए कि जिसके भार से अलग रहकर किसी से कुछ बात न कर सकती।

ऊपर के अंश में लेखक पंक्तियों का अनुसरण करते-करते आगे चलकर स्वतंत्र हो गया है और इसी स्वतंत्रता के कारण भाषा में प्रवाह तथा अर्थ में स्पष्टता आ सकी है। शब्द, वाक्य, श्लोक एवं अध्याय की चिंता किये बिना भाषा एवं भावाभिव्यक्ति को ही सर्वोपरि महत्त्व देते हुए अनुवाद का कार्य सम्पन्न किया गया है। यहाँ दूसरे एवं तीसरे अध्याय के संगम के श्लोकों के अर्थ के क्रम को विभाजित करने के लिए अलग से पृष्ठ करे कौन कहे, पैरा तक को अलग नहीं किया गया है जैसे :- "और विछुरी हुई हरनी के समान चारों ओर देखने लगी। उसी समय एक ऋषि जो सत्य धर्म में रत थे।"

वीवन्ती च दिशः सर्वायूथभ्रष्टा मृगी यथा, इति श्री नासिकेतोपाख्याने ....

वैशम्पायन उवाच : - काश्चित्तत्र समायातः सत्यधर्मपरो मुनिः।

इस प्रकार हम यह पाते हैं कि नासिकेतोपाख्यान के अनुवाद में लेखक ने अर्थ को ही प्रधानता देते हुए जहाँ-तहाँ व्याख्या भी कर डाली है। जहाँ "नासाग्रेण तु कन्याया. पुरुषः सर्वलक्षणः" का इतना ही अनुवाद 'उस कन्या को नासिका के अग्रभाग से समस्त लक्षणों से युक्त एक पुत्र हुआ' पर्याप्त **होता**,

वहाँ लेखक ने पुत्र जन्म की व्याख्या कर डाली है। "इतने में गर्भ नाभी से हृदय में आया। वहाँ से कण्ठ में जा नाक के पथ से महातेजस्वी सूर्य समान पुत्र उत्पन्न हुआ।"

लेखक ने कथा को प्रभावशाली एवं रोचक बनाने के लिए कहीं-कहीं चौपाई की भी रचना की है जैसे-" जब रघु की पुत्री का क्रोध सब मिट गया, तब पुत्र का ऐसा मोह हुआ कि जिससे शोकसागर में डूबी चारों दिशा शून्य वो अंधार ही देखने में आया -

चौपाई

योग और तप कुछ नहीं भावे। रह-रह नयन नीर आवे।।
क्यों हूँ क्षण भर धीर न पावे। आकुल हो हो समय बितावे।।

संस्कृत -

रघुवंशोद्भवा कन्या रुदती शोक विह्वला।
पुत्र शोकेन सन्तप्ता गंगा तीरे समागता।"

लेखक ने कई स्थलों पर श्लोक का अनुवाद पद्य में ही करने का प्रयास किया। उदाहरणार्थ :-

तत उद्दालकः क्रुद्धो दृष्ट्वा पुत्रं चिरागतम्।
उवाच क्रोध ताम्राक्षोंहयग्निहोत्र विघातकम्

"देखते ही वे क्रोध से लाल-लाल आँखें करके बोले"-

इतना दि काहो कहाँ लगाये।
तेरे कारण बहुत दुख पाये।
अग्निहोत्र वह यज्ञ हमारा।
तुझ बिन गया अकारथ सारा।

पं० सदल मिश्र ने उन श्लोकों के अनुवाद को छोड़ दिया है, जो स्तुति के थे। छठे अध्याय के २ से ५ तक के श्लोक नासिकेतोपाख्यान में यमराज की स्तुति के हैं। चन्द्रावती में उनके अनुवाद नहीं दिये गये। इसके अलावा इस स्तुति की महिमा के संबंध में भी श्लोक सं० ६ एवं ७ में जो बातें कही गयीं, उन्हें भी अनुवादक ने छोड़ देना उपयुक्त समझा। लेकिन यमराज के मुख से नासिकेत के लिए कहे गये 'विप्रेन्द्र ब्रूहि आगमन कारणम्' शब्दों की व्याख्या करने या नासिकेत की विशेषता बताने के लिए लेखक ने निम्नलिखित चार चौपाइयों की रचना की :-

बालहिपन में धड़ी सिधाई । कहो मुनीष कैसे यह पाई।।
धन्य पिता जिनके तुम भये । तुम्हें देख पातक सब गये।।
कारण कौन यहां तुम आये । बार-बार मेरे गुण गाये।।
अमृत वाणी बहुत सुनायी। जो कहत सोहावनि अति सुखदायी।।

इसके बाद जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती जाती है, लेखक 'अर्थ' को महत्ता देते हुए अनुवाद के

प्रति अधिक सजग होता जाता है। छठे एवं सातवें अध्याय में इस बात का प्रमाण मिलता है। अष्टम अध्याय में वर्णित विभिन्न नरकों के नाम न गिनाकर अनुवादक ने कुम्भीपाक एवं सहस्त्र नरक का संक्षेप में वर्णन कर कथा को आगे गति दी है। नवें अध्याय में वर्णित सभी ऋषियों के नाम अनुवाद में भी गिना दिये गये हैं और नरक मे विभिन्न पापों को करनेवाले व्यक्तियों को मिलनेवाले फलों का वर्णन किया गया है। इसमें अनुवादक ने कुछ ऐसे कर्म अपनी ओर से भी सम्मिलित कर दिये हैं जो मूल में नहीं हैं। जैसे - कन्यादान समय में भांजी मारना आदि आदि। पूरे दशवें, ग्यारहवें तथा बारहवें अध्यायों में नरक के दु:खों का वर्णन ही चलता रहता है और इसमें भी अनुवादक ने श्लोकों का सहारा लेते हुए स्वतंत्र अनुवाद किया है। लेखक ने प्रमुख घटनाओं के वर्णन के साथ पाप-पुण्य के फलों की सूची तो दी ही है, कहीं-कहीं उन्हें और अधिक विस्तृत कर अपने कथावाचन के अनुभव का भी उपयोग किया है। इस बात का प्रमाण विशेष रूप से उनकी निम्नलिखित चौपाइयों एवं कवित्त में मिलता है-

मोती मूँगा रतन हैं देते। सो हैं मणिमय गृह में रहते।।
पनही द्रव्र वो शीतल पानी। हरषि दान करते जो ज्ञानी।।
सों हैं इन्द्रपुरी को जाते। महा भोग जहँ वो हैं पाते।।
हाथी ऊँट अन्न के दानी। दया धर्म वो शील के खानी।।
स्थान परम को वे हैं जाते। गण गन्धर्व जहां हैं गाते।।
बड़े तीर्थ में जा हैं मरते। सो भवसागर को हैं तरते।

लेखक ने इसी क्रम में प्रसंगानुसार चन्द्रावती में एक दोहा और एक कवित्त भी प्रस्तुत किये हैं।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि अपनी 'चन्द्रावती' पुस्तक को अनूदित रूप में प्रस्तुत करने में अनुवादक ने भावानुवाद ही प्रस्तुत किया है और उनके इस प्रयास से यह अनूदित कृति एक मौलिक पुस्तक हो गयी है।

पं॰ सदल मिश्र की दूसरी कृति 'रामचरित' अर्थात् 'अध्यात्म रामायण' उनकी पूर्ववर्ती रचना चन्द्रावती की तुलना में अनुवाद की दृष्टि से अधिक सफल प्रमाणित हुई है। इस पुस्तक के अनुवाद के संबंध में श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने लंदन यूनिवर्सिटी से पी॰ एच॰ डी॰ की उपाधि के लिए प्रस्तुत अपने शोध प्रबंध (थीसिस) में स्पष्ट शब्दों में लिखा है- कि "रामचरित की भाषा में तत्सम शब्द बहुत हैं। **ब के लिए व का तथा ख के लिए ग** का प्रयोग देखा जा सकता है। रामचरित की तुलना उसके मूल अध्यात्म रामायण में करने पर यह प्रतीत होता है कि प्रेम सागर की तुलना में यह अनुवाद अधिक सटीक है।"

वास्तव में रामचरित मात्र प्रेमसागर की तुलना में ही नहीं, वरन् चन्द्रावती की तुलना में भी अनुवाद की दृष्टि से एक सफल कृति है। इतना ही नहीं, इस संबंध में यह नि:संकोच कहा जा सकता है कि संस्कृत से भारतीय भाषा हिन्दी (खड़ीबोली) में सफलतापूर्वक अनूदित यह आदि ग्रंथ है। इसमें लेखक ने पुस्तक का अनुवाद करते समय प्रारंभ में ही स्पष्ट रूप से कह दिया है कि "जहाँ कहीं कठिन वेदान्त था मैंने देखा कि इसकी भाषा सब कोई समझ न सकेगा, इस कारण उसे छोड़ दिया।" इसी आधार पर अनुवादक ने ऐसे स्थलों का अनुवाद न कर सारांश प्रस्तुत किया है।

इनके अनुवाद की कुछ पंक्तियों की तुलना हम संस्कृत मूल के शब्दों के साथ करें, तो यह देखेंगे कि लेखक ने अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कितना अधिक परिश्रम किया है। उस समय लेखक के पास न कोई शब्दकोश होंगे और न ही कोई भाषा व्याकरण से संबंधित मार्गनिर्देशक पुस्तक। हिन्दी की अनेक बोलियाँ अपने-अपने क्षेत्र में प्रयोग में आती जरूर थीं, लेकिन खड़ीबोली के रूप में इसके स्थिरीकरण की प्रक्रिया अभी शुरू भी नहीं हुई थी। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए अध्यात्म रामायण संस्कृत ग्रंथ का अनुवाद बहुत ही सार्थक कहा जायगा।

चन्द्रावती के अनुवाद के आरंभ में गणेश वन्दना में एक दोहे की रचना की गयी है और मूल ग्रंथ की वन्दना का अनुवाद नहीं किया गया है। मूल ग्रंथ में वन्दना के श्लोक इस प्रकार हैं-

रामं विश्वमयं वन्दे रामं वन्दे रघूजहम्
राम विप्रवरं वन्दे रामं श्यामाभुवं भजे
यस्य वागं शुतश्च्यूत रम्यं रामायणमृतम्
शैलता सेवितं वन्दे तं शिवं सोम रूपिणम्
सच्चिदानंद संदोहं भक्तिभूति विभूषणम्
पूर्णानन्दमहं वन्दे सद्गुरुं शंकर स्वयम्
अज्ञानध्वान्त संहर्त्री ज्ञानालोक विलासिनी
चन्द्रचूड व चत्रचन्द्र चन्द्रिकेयं विराजते।

जबकि पं० सदल मिश्र ने अपने ग्रंथ का आरम्भ हिन्दी में रचित वंदना से किया है, ऐसा प्रतीत होता है कि पं० सदल मिश्र जी को खड़ी बोली में चौपाई, दोहे एवं कवित्त आदि की रचना का भी अभ्यास था।

श्री गणेशाय नमः ।

सिंधुसुता मुख चन्द्र चकोर,जा लग सिद्धि रहे कर लोर।।
विविध रूप होए विघन विदाने, प्रतिपालक साहेब हमारे।
जगमग जोति जासु तन लसे, संत जनन के मानस बसे।
आनंदरूप गजानन बड़े, भजन काज रहत जो खड़े।
नृपति वीर जब से तूं भए, होत सिंगार जगत के नये।
फूल उठी बसुधा हरषानी, धन्य धान्य से अकुलानी।
घर घर मंगल चार घनेरे, रंग ओ राम करहिं बहुतेरे।
सुचित होए नर को कलोले ,मणिभूषण पहिरें अनमोले।
रण अंगन पगु देत तुम्हारे, इंद्रहु हों पर त्राहि पुकारे।
थर थर कांप उठे दिग पाल,निज शास्त्रन धरती मह डाल।

पं॰ सदल मिश्र की इस मौलिक प्रतिभा की चर्चा के बाद हम उनकी अनुकारयित्री प्रतिभा का विश्लेषण करते हुए उनकी सर्वोत्तम कृति 'रामचरित' का अध्ययन करेंगे।

अध्यात्म रामायण के प्रारंभिक सर्ग 'माहात्म्य' के प्रथम श्लोक का अनुवाद न कर लेखक ने द्वितीय श्लोक से अनुवाद कार्य प्रारम्भ किया है। कथा का सीधे अनुवाद न करते हुए उन्होंने अपनी ओर से कथात्मक शैली अपनाते हुए इस प्रकार लिखा है - "किसी समय बदरिकाश्रम में शौनक आदि ऋषियों ने सूत से पूछा कृपा निधान अब कुछ विशेष हरि का यश सुनाइये, तब वे कहने लगे कि एक बार नारद योगी पर उपकार के लिए सिगरे लोक फिरते-फिरते सत्य लोक में जा पहुँचे यह एकदा नारदो योगी परानुग्रहकाञ्छया, पर्यटनसकलां लोकान् सत्यलोकमुपागमत्।

प्रारम्भ का साठवें (६०) श्लोक तक का प्राय: ३ अनुवाद प्रस्तुत कर दिया है। इसमें कुछ श्लोकों के अनुवाद अपनी स्पष्टता एवं अर्थबोधता के लिए उद्धरण योग्य हैं।

श्री रामगीतामाहात्म्यं कृत्स्नं जानाति शंकर:।
तदर्ध गिरिजा वेत्ति, तदर्ध गिरिजा वेद्म्यहं मुने।

अनुवाद- "रामगीता का महातम सब तो शंकर जानते हैं, और आधा पारवती विसका आधा मैं जानता हूँ।"

यहाँ 'कृत्स्नं' के लिए सबका प्रयोग बहुत ही बोधगम्य है। माहात्म्य के अंतिम श्लोक "अध्यात्मरामचरितस्य मुनीश्वरायमाहात्म्यमेतदुदितं कमलासनेन। य: श्रद्धया पठति वा शृणुयात्य मर्त्य: प्राप्नोति विष्णुपदवीं सुरपूज्यमान:। का अनुवाद थोड़े किन्तु सटीक शब्दों में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है - "शौनक आदि ऋषि से सूत कहता है कि विसकी महिमा जो प्रजापति ने नारद को सुनाया, जो मनुष्य सुने-सुनावे सो वैकुण्ठ में जा देवतान में पूज्य होवे" यहाँ मुनीश्वर के लिए नारद तथा कमलासनेन के लिए प्रजापति शब्दों का प्रयोग अर्थ को सुबोध बनाता है। इससे भी अधिक सुबोधता की बात अंतिम पंक्ति में मिलती है, जहाँ लेखक ने 'प्राप्नोति विष्णुपदवीं सुरपूज्यमान:' के लिए जो मनुष्य सुने-सुनाये सो वैकुण्ठ में जा देवतन में पूज्य होवे के रूप में अर्थ स्पष्ट किया है। यहाँ जो पढ़ता है या सुनता है के बदले जो सुने या सुनाये कहना अनुवादक की अपनी मौलिकता है। क्योंकि पढ़नेवाला सिर्फ अपने लिए भी पढ़ सकता है, लेकिन जब वह पढ़कर सुनाता है तो सुनने एवं सुनानेवाले दोनों पुण्य के भागी होते हैं।

बालकाण्ड के प्रथम खण्ड के प्रारंभिक दो श्लोकों के अनुवाद पर दृष्टि डालने से पं॰ सदल मिश्र की अनुवाद शैली की मौलिकता इस बात में प्रकट होती है कि उन्होंने शब्दानुवाद की शैली न अपनाकर अपनी अनूदित कृति को मौलिक ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास किया है। अधिकांश अनुवादक श्लोकों का अनुवाद ज्यों-का-त्यों करने का प्रयास करते हैं, इन प्रथम दो श्लोकों में अंतिम चरण "तं जानकीशं भजे। सीतापतिं विदित तत्त्वमिहं नमामि" -का अनुवाद हिन्दी में पहले ही किया गया और श्लोक में राम के विशेषण में आरंभ में आये हुए शब्दों के अर्थ का उल्लेख हिन्दी में बाद में किया गया।

"ब्रह्मा बोले- विस अविनाशी चेतनरूप सीतापति को बार-बार मैं प्रणाम करता हूँ कि जो ....। इसी प्रकार दूसरे श्लोक

को उद्धृत करते हुए हम उसके विभिन्न अनुवादों पर विचार करें-

विश्वोद्‌भव स्थिति लयादिषु हेतुमेकं। मायाश्रयं विगतभायमचिन्त्य मूर्तिम्।
आनन्द सान्द्रममलं निजबोधरूपं। सीतापतिं विदित तत्त्वमहं नमामि।।

गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित अनुवाद -

"जो विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय आदि के एकमात्र के कारण हैं, माया के आश्रय होकर भी मायातीत हैं, अचिन्त्य स्वरूप हैं, आनन्दघन हैं,उपाधिकृत दोषों से रहित हैं तथा स्वयं प्रकाशस्वरूप हैं, उन तत्त्ववेत्ता श्री सीतापति को मैं नमस्कार करत हूँ।"

"अरु जो संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय के हुत हैं औ देषने में सब माया-मोह में पड़े हैं, पर विचारिये तो विन से दूर हैं अरु जो आनन्द मूर्ति जोति स्वरूप है ।"

यहाँ यह पूर्णतः स्पष्ट है कि पंडित जी ने शाब्दिक अनुवाद पर जोर न देकर भावार्थ को महत्त्व दिया है और इसके फलस्वरूप उनका कथ्य अधिक सुबोध एवं सुगम है। लगभग २०० वर्ष पूर्व अनूदित इस ग्रंथ की तुलना में बिलकुल हाल में गीता प्रेस द्वारा अनूदित ग्रंथ की शैली की दुर्बोधता को सामने रखकर हम देखें, तो अनुमान लगा सकते हैं कि अनुवाद कार्य में पंडित जी की मौलिकता कैसी है।

अनुवाद के उदाहरण के लिए हम निम्नलिखित श्लोक के अर्थ की परीक्षा गीता प्रेस द्वारा आज अनूदित पुस्तक एवं आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व पं॰ सदल मिश्र द्वारा अनूदित पुस्तक की तुलना करते करते हुए करेंगे।

ज्ञानं सविज्ञान मधानुभक्ति-वैराग्ययुक्तंच मितं विभास्वत्।
जानाम्यहं योषिदपि वृदुक्तं यथा तथा ब्रूहि तरन्तियेन।

अर्थ -

जिस ज्ञान के द्वारा मनुराय संसार-समुद्र से पार हो जाते हैं उस भक्ति और वैराग्य से परिपूर्ण प्रकाशमय आत्मज्ञान का वर्णन आप विज्ञान सहित इस प्रकार स्वल्प शब्दों में कीजिये, जिससे मैं स्त्री होने पर भी आपके वचनों को समझ सकूँ।

इसी की तुलना में पं॰ सदल मिश्र का अनुवाद इस प्रकार है- यों तो आपके कहे हुए वैराग्य सहित ज्ञान-विज्ञान भक्ति स्त्री हो के मैं भी बहुतेरे जानती हूँ पर जिससे तुरंत ही संसार-सागर तरिये से मैं सुना चाहती हूँ। अरु सच पूछिये तो भवसमुद्र पार होने के लिए जिस विन दूसरा कोई उपाय नहीं है।

ऊपर के दोनों अंशों में दो वाक्य खण्ड तुलना योग्य हैं-
(१) मैं स्त्री होने पर भी आपके वचनों को (सहज ही) समझ सकूँ।
(२) मैं आपके कहे हुए वैराग्य सहित ज्ञान-विज्ञान भक्ति स्त्री हो के भी बहुतेरे जानती हूँ।

ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट होगा कि जानाम्यहं योषिदपि त्वदुक्तं का अर्थ किन पंक्तियों में अधिक स्पष्ट है। जान सकूँ और जानती हूँ के अर्थान्तर को अधिक स्पष्ट करने के लिए ही मैं बहुतेरे जानती हूँ लिखा हुआ है।

पं॰ सदल मिश्र जी ने शब्दानुवाद पर कम ध्यान देकर अर्थ की प्राणवत्ता की रक्षा का जो श्लाघनीय प्रयत्न किया है, उसका एक प्रमाण इस बात में भी मिलता है कि पार्वत्युवाच, श्री महादेव उवाच, श्री भगवानुवाच, ब्रह्मोवाच एवं वशिष्ठ उवाच आदि का अनुवाद उन्होंने मात्र पार्वती जी बोलीं, श्री महादेव जी बोले, वशिष्ठ जी बोले, भगवान् ने कहा आदि लिखकर नहीं किया वरन् उन्होंने कथा के तारतम्य को अधिकाधिक सुदृढ़ करने के लिए अपनी ओर से क्रिया विशेषण आदि का भी प्रयोग किया है।

(१) श्लोक १/७ में पूर्व पार्वत्युवाच के लिए सिर झुकाय देवी ने कहा-

(२) श्री महादेव उवाच-तब सदाशिव फिर बोले।

(३) पार्वत्युवाच-शिव की इतनी बातें सुन अति आनन्द मगन हो पार्वती बोलीं - श्लोक २/१

(४) श्री महादेव उवाच- उमा की इतनी बातें सुन अति हर्षित हो महादेव जी बोले।

श्लोक २/४

(५) श्री भगवानुवाच- कौशल्या निपट चकित हुईं तो हर्ष से आँखों में आँसू भर-भर प्रणाम करने लगीं। ५ श्लोक २/२०

(६) श्री भगवानुवाच- कौशल्या की इतनी बातें सुन भगवान् बोले- श्लोक २/३०

ईस प्रकार ऊपर के उदाहरणों से इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि पं॰ सदल मिश्र ने इस ग्रंथ को मौलिक रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

श्लोकों के अनुवाद में भी इस बात के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अनुवादक ने जहाँ कहीं यह आवश्यक समझा कि विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए भाषा मुहावरेदार एवं अनेक वाक्य युक्त होनी चाहिए, वहाँ उन्होंने कथावाचक शैली का प्रयोग निःसंकोच किया है, लेकिन अनुवाद में बहुत-से ऐसे स्थल भी आये हैं, जहाँ उन्होंने पूरे-के-पूरे श्लोक का अनुवाद या तो छोड़ दिया है या उसके निहित सार तत्त्व को दूसरे श्लोक का अर्थ देते हुए दो-एक शब्दों में समाहित कर लिया है। इस संदर्भ में दूसरे सर्ग के श्लोक १७ एवं १८ को उद्धृत किया जा सकता है-

अतस्तवाङ्घ्रिर्मे दृष्टश्चित्तदोषापनुत्तये, सद्योन्तर्हृदये नित्यं मुनिभिः सात्वतेर्वृतः

ब्रह्मादयेः स्वार्थसिद्धार्थमस्माभिः पूर्वसेवितः अपरोक्षानुभूत्यर्थ शानिभिर्हृदिभावत

अर्थ-

अतः भक्त मुनिजन जिनका निरन्तर अपने हृदय में ध्यान करते हैं ऐसे आपके चरण-कमलों का आज मैंने अपने अन्तःकरण के दोषों का तत्क्षण नाश करने के लिए दर्शन किया है। आपके इन चरणकमलों का पहले भी हम ब्रह्मा आदि देवगण ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए सेवन किया है और ज्ञानी मुनिजनों ने अपरोक्षानुभव के लिए अपने हृदय में निरंतर ध्यान किया है। (गीता प्रेस)

लेकिन पं॰ सदल मिश्र जी ने इतना ही कहा है- यह समझ आपके बिन चरणन की आप गहा

हूँ।

इसी प्रकार राम-कौशिल्या के बीच हुए संवाद के प्रसंग में आये निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद देना आवश्यक नहीं समझा गया- संवादभाव योयस्तु पठेद्वा शृणुयादपि। स याति मम सासप्यं करणे मत्स्मृतिं लभेत।

इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि इस श्लोक का अनुवाद करने से कथा में व्यक्तिक्रम आता और उसका प्रवाह अवरुद्ध होता। अनुवादक की शैली में कथा अनवरत रूप में इस प्रकार चल रही है- इस कारण मैंने मनुराय का जनम लिया है। अब जो-जो तुम्हारी मन कामना है सो-सो एब सुफल होगी ओ भवसागर पार उतरन ही इश मेरे रूप का दुर्ल्लभ दर्शन जो तुमे हुआ है सो अपने उस जनम की तपस्या का फल समझो। ऐसे जननी का बुझा समझा फिर आप बालक होकर लगे रोने।

इतना ही नहीं अनुवादक कथा के प्रारंभिक प्रसंग को बनाये रखने के लिए इस बात की याद दिलाते रहते हैं कि यह कथा शिव एवं पार्वती के बीच वार्तालाप के रूप में चल रही है।

श्लोक है-

लालारुण प्रतीकाशो ललिताखिल लोक्य:।
अथ राजा दशरथ: श्रुत्वा पुत्रोद्भवोत्सवम्।
आनन्दार्थवमग्नो सावायणों गुरुणा सह।।

इसके अनुवाद के प्रसंग में शिव की उक्ति का स्मरण दिलाते हुए पंक्तियाँ इस प्रकार हैं- शिव कहते हैं कि इतने ही में राजा दशरथ के पुत्र की उत्पत्ति सुनी तो महामगन हो सभा से झट उठ गुरु को साथ लिये अँगने में चले आये और सौर घर के द्वार पर जा कमलनयन महासुभग सुत को मँगाकर देष बहुत जुड़ाने अरु वशिष्ट की आज्ञा पाय विस समय के जितने कुछ जात कर्म करने योग थे सो सब ज्यों कर चुके कि त्यों ही कैकयी के एक सुमित्रा के जोड़ही दो बालक हुए। यहाँ अनुवादक ने शैली को सुन्दर बनाने के लिए अपनी ओर से कई बातें जोड़ दी हैं जैसे- "अंगने में चले आये" "सौर घर के द्वार पर जा" एवं "कमलनयन महासुभग को" मँगाकर आदि-

इसी प्रकार अनुवादक ने पुन: चारों पुत्रों के नामकरण प्रसंग के अनुवाद के उपरान्त पुन: इस बात की याद दिलायी है- " इतनी कथा सुनाय फिर महादेव बोले- हे पारवती! जब कुछ दिन के वे लड़के भये-

अनुवाद-कला की विशेषता पर जोर देते हुए जो बातें बतायी गयी हैं, वे पं. सदल मिश्र के प्रसंग में बहुत हद तक अनुकूल प्रमाणित होती हैं। उनमें से कुछ बातें इस प्रसंग में पुन: उद्धरण योग्य हैं। नाइडा के अनुसार- बस्तुत: जो विद्वान् व्यक्ति मूल से पूरी तरह परिचित होता है, उसके लिए बहुत परिश्रमसाध्य, शाब्दिक अनुवाद भी सही होगा क्योंकि वह इसे गलत अर्थ में नहीं समझेगा। इसी संदर्भ में बोधगम्यता के ऊपर जोर दिया गया है। बोधगम्यता की जाँच का संबंध मुख्यत: दो विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों का पता लगाने एवं उन्हें अलग-अलग करने में है-

.) एक उस अभिव्यक्ति की जाँच का संबंध, जिसके बारे में गलत समझे जाने की संभावना है

और

(२) जो इतना कठिन और बोझिल व्याकरण या शब्दावली की दृष्टि से हो कि पाठक पाठ में दी गयी बातों को समझने के प्रयास से ही हतोत्साहित हो जाय।

इसलिए कुशल अनुवादक इस बात से बचने की कोशिश करता है कि उसका अनुवाद भ्रांतिमूलक न हो या शैली की दृष्टि से इतना बोझिल न हो कि उसकी बोधगम्यता प्राय: असंभव हो जाय।

इन दोनों बातों की ओर पं॰ सदल मिश्र का ध्यान रहा और यही कारण है कि उनका अनुवाद मात्र शब्दों के भाषान्तरण पर आधारित न होकर भावाभिव्यक्ति या प्रेषणीयता पर आधारित है। इस संबंध में श्री नाइडा की निम्नलिखित पंक्तियों को पुन: प्रस्तुत करने के लोभ का संवरण नहीं कर सकता- कि "किसी भाषा के औपचारिक स्वरूप को दूसरी भाषा के स्वरूप पर थोपना उचित नहीं, इसलिए कुशल या विवेकशील अनुवादक जिस भाषा में अनुवाद करता है, उसके विशेष संरचनात्मक स्वरूप के अनुसार जहाँ भी आवश्यक समझता है, परिवर्तन लाता है।"

ऊपर के उद्धरणों के अतिरिक्त सदल मिश्र ग्रंथावली में सैकड़ों ऐसे स्थल आये हैं, जहाँ पं॰ सदल मिश्र ने खड़ीबोली में अपनी बात को अधिक-से-अधिक बोधगम्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए मूल से हटकर कुछ अपनी बातें भी कही हैं। लेकिन उनके इस अंतर से अभिव्यक्ति दुर्बल न होकर बलवती हो गयी है।

संस्कृत में कर्मवाच्य या भाववाच्य का प्रयोग अधिक होता है, लेकिन अनुवादक ने खड़ीबोली के स्वरूप की रक्षा करते हुए लगभग सभी जगहों में कर्तृवाच्य का प्रयोग किया है।

अनुवाद के बारे में कुछ मनोरंजक प्रसंग भी आते हैं, जहाँ अनुवादक ने संस्कृत के शब्दों के पर्याय के रूप में खड़ीबोली के लिए सटीक शब्द खोजे हैं-

अपूपान्मोदकान्कृत्वा कर्णशष्कुलिकास्तथा।
कर्णपूरांश्च विविधान् वर्षवृद्धो च वायनम्।

अनुवाद-

और वर्षगाँठ के दिन भी पूआ, लड्डू, जलेबी, कचौड़ी आदि विविध व्यंजन बनाकर उत्सव मनाती थी।

वर्ष-वर्ष जब-जब राम का जनम दिन आवे तब-तब महा महोत्सव ठान लड्डू, पेड़े, टीकरी पैरकिये आदि अनेक-अनेक प्रकार की मिठाई, पूआ, पूरी आदि भाँति-भाँति के पकवान बनाय-बनाय सब इष्ट मित्र के घर-घर वयना भेजें।

यहाँ कर्णशष्कुलिका: के लिए 'जलेबी' शब्द उपयुक्त न होकर पैरकिया ज्यादा उपयुक्त है। क्योंकि यह कर्ण के आकार का ही होता है। ऐसा लगता है कि पंडित जी कर्णपूरांश्च के लिए कोई उपयुक्त शब्द नहीं पा सके। उन्होंने टीकरी शब्द अपनी ओर से जोड़ दिया जो कि बिहार में पंडित जी के अपने आरा जिले में बिकनेवाली मिठाइयों में विशेष स्थान रखती है।

कांडों एवं सर्गों के विभाजन एवं उनकी संख्या देने में भी अनुवादक ने स्वतंत्रता बरती है। मूल अध्यात्म रामायण में प्रत्येक काण्ड में सर्ग के अंत में "श्री मदध्यात्म रामायणे उमामहेश्वर संवादे बालकाण्डे श्री रामहृदयं नाम: प्रथम: सर्ग:" को अनुवादक ने दो सर्गों में विभाजित किया है। इस सर्ग के कुल ५६ श्लोकों का अनुवाद करते समय ४३ श्लोकों को द्वितीय सर्ग में तथा शेष १३ (४४ से ५६) श्लोकों को तृतीय सर्ग में विभाजित किया गया है। ऊपर बताये गये अनुसार- सर्ग के अंत में आनेवाली संस्कृत पंक्ति का अनुवाद न कर हिन्दी में सर्ग की समापन पंक्ति मात्र इस रूप में रखी गयी है- "इति श्री रामचरित्र बालकाण्डे द्वितीय अध्याय:" इति श्री रामचरित्रे बालकांडे तृतीयोध्याय:। आदि आदि।

अच्छा यह होता कि अनुवादक इस वाक्य को भी हिन्दी में प्रस्तुत करता, लेकिन चूँकि अनुवादक कथावाचक थे, इसलिए सभी कथावाचकों की भाँति सर्ग या अध्याय की समापन पंक्ति को उन्होंने संस्कृत में कह देने की प्रवृत्ति अपनायी। यह स्वाभाविक ही है।

मूल के माहात्म्य सर्ग की गणना अनुवादक ने बालकाण्ड के प्रथम सर्ग के रूप में की है।

	मूल	**अनुवाद**	
बालकाण्ड	७	७	समाप्त:
अयोध्या	९	९	समाप्त:
अरण्य	१०	१०	समाप्त:
किष्किन्धा	९	९	समाप्त:
सुन्दर काण्ड	५	५	समाप्त:
युद्ध काण्ड	१६	१६	समाप्त:
उत्तर काण्ड	९	८	समाप्त:

शैलीकार
सदल मिश्र

(अध्याय -चौदह)

'शैली' शब्द अंग्रेजी में स्टाइल के रूप में जाना जाता है। इस शब्द का प्रयोग स्थापत्य,चित्र एवं वास्तु शिल्प आदि कलाओं के क्षेत्र में भी मिलता है। "भाषा में जब शैली या स्टाइल का प्रयोग किया जाता है तो यह इन दूसरे प्रकार के संदर्भों से बिलकुल अलग होता है, क्योंकि भाषा का अपना विशेष कार्य है, जो किसी भी दूसरे उपयुक्त संदर्भ में लागू नहीं हो सकता, वह कार्य है- भाषा की प्रेषणीयता ।"

"भाषा केवल कुछ पुनरावर्तमान साँचों को ज्यों-का-त्यों उतारने की प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि यह निरंतर व्यवहार में लायी जा रही है, रूपांतरित हो रही है, सरल हो रही है और निरंतर नये-नये संदर्भों में उपयोजित होने के कारण विकसित हो रही है।"①

इस प्रकार व्यवहार में लाये जाने, रूपांतरित तथा निरंतर नये-नये संदर्भों में उपयोजित होने के लिए यथासमय एवं यथापरिस्थिति भाषा के स्वरूप या ढंग में परिवर्तन की आवश्यकता होती ही रहती है। हम अपने दैनिक जीवन में यह पाते हैं कि हमारे लिखने एवं बोलने की भाषा अलग-अलग होती है। इसी बात को हम दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि हमारे बोलने एवं लिखने का ढंग अर्थात शैली अलग होती है। लिखने में हमें अधिक सावधान रहना पड़ता है, क्योंकि हमें पाठक पर अपने लेख का प्रभाव डालना होता है। ऐसी स्थिति में हम अपने विचार अच्छे-से-अच्छे ढंग से प्रकट करना चाहते हैं। यदि हमारे विचार तो बहुत अच्छे हों पर उन्हें प्रकट करने का ढंग प्रभावोत्पादक न हो, तो वैसी स्थिति में हम कुशल लेखक नहीं माने जायँगे। लेकिन यदि हम अपनी बात को किसी प्रभावोत्पादक एवं सम्यक् ढंग से प्रकट कर सकें, तो वह ढंग 'शैली' होगा। अत: यह कहा जा सकता है कि "अच्छी साहित्यिक शैली वही है जो विचार या भाव को ठीक तरह से ठीक शब्दों में निर्भ्रान्त रूप में प्रकट कर सके। लेकिन इसके लिए यह जरूरी है कि वह ढंग कुछ निराला होना चाहिए-दूसरों का अनुकरण या पिष्ट पेषण नहीं होना चाहिए।"② "शैली ही दुरूह को सुगम और सुगम को दुरूह बनाती है। साहित्य का सारा सौन्दर्य शैली पर ही आश्रित है। जब लेखक कोरे भाव व्यंजन से ऊपर उठकर, अच्छे-अच्छे उपयुक्त शब्दों तथा वाक्य-रचना के सुन्दर प्रकाश से अपनी कृति सजाने का कार्य आरम्भ करता है, तभी वह मानो अपनी शैली की सृष्टि करता है।" शैली की प्रशंसा में पोप ने कहा है- "शैली हमारे विचारों की वेशभूषा है।" कारलाइल के अनुसार "यह लेखक के विचारों का परिधान नहीं, बल्कि त्वचा है।"③

---

① रीति विज्ञान - विद्यानिवास मिश्र (पृष्ठ १३)

② रीति विज्ञान - विद्यानिवास मिश्र (पृष्ठ १३)

③ अच्छी हिन्दी - रामचन्द्र वर्मा (पृष्ठ ७८)

साहित्य शास्त्र में शैली शब्द के लिए 'रीति' शब्द का प्रयोग किया जाता है और वामन की उक्ति **'विशिष्ट पद-रचना रीति' इसी अर्थ में उद्धृत की जाती है।** डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में जिस कारण "शैली-विज्ञान शब्द का प्रयोग न करके रीति विज्ञान शब्द का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त लगता है, वह यह है कि शैली के विषय में एक बहुत ही व्यापक धारणा रूढ़ हो चुकी है, कि "शैली आत्मनिष्ठ होती है।" अर्थात् शैली आदमी की अदा, भंगिमा, रुझान तथा रुचि की अधिक परिचायिका होती है, समष्टिगत व्यवहार के वैशिष्ट्य की उतनी परिचायिका नहीं होती और इस दृष्टि से 'शैली' शब्द का प्रयोग आधुनिक भाषा शास्त्र की 'लिंग्वोस्टाइल' के संदर्भ में इसीलिए उतना उपयुक्त नहीं माना जा सकता।" संस्कृत नाटकों में इसके लिए 'वृति' शब्द का प्रयोग मिलता है। जो भी हो, हम यहाँ इस उलझन में नहीं पड़ना चाहते कि ऊपर गिनाये गये 'शैली', 'स्टाइल', 'रीति' एवं 'वृति' में से कौन-सा शब्द अधिक सार्थक है, बल्कि हमारा लक्ष्य शैली की प्रकृति को समझना है और उसी परिप्रेक्ष्य में सदल मिश्र एवं उनके समकालीन सहयोगियों की कृतियों में उपलब्ध विशेषताओं का विश्लेषण तथा मूल्यांकन करना है।①

डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र ने जोल्तान के अनुसार रीति-विज्ञान के तीन प्रकार बताये हैं :-

(१) भाषागत तत्त्व (ध्वनि, पद, प्रत्यय, प्रकृति, वाक्य संरचना आदि) की रीतिपूरक प्रयोजकता या दूसरे शब्दों में अर्थप्रकाशकता का अध्ययन।

(२) किसी लिखित या भाषिक संदेश की रीति का विश्लेषण (किन्तु यह संदेश वास्तविक रूप में संलक्ष्य हो, वाचिक या लिखित माध्यम, द्वारा) उदाहरण के लिए कविता, कहानी, भाषा आदि का रीति-विश्लेषण।

(३) किसी संदेश-प्रकार विशेष की रीति का विश्लेषण : यह प्रकार-विशेष उन तमाम विशेषताओं के समग्रयोग के रूप में आंकलित होते हैं, जो उस तरह के सभी संदेशों में प्राप्त होते हैं, उदाहरण के लिए वैज्ञानिक साहित्य का रीति-विश्लेषण या शुद्ध सर्जनात्मक साहित्य का रीति विश्लेषण या काव्य-साहित्य का रीति-विश्लेषण।

प्राचीन भारतीय साहित्य शास्त्र के ध्वनि-सम्प्रदाय, रीति-सम्प्रदाय, वक्रोक्ति-सम्प्रदाय, अलंकार-सम्प्रदाय एवं औचित्य-संप्रदाय सबका उद्देश्य रीतिगत विशेषताओं पर ही बल देना है। साहित्यिक शैली के विश्लेषण के लिए साहित्य की विभिन्न विधाओं पर दृष्टि डालना आवश्यक है। साहित्यिक शैली एक अविच्छिन्न रेखा है जिस पर कम-से-कम चार ऐसे बिंदु अंकित किये जा सकते हैं, जिन पर यह रेखा सुविधापूर्वक खंडित होती हुई प्रतीत होती है- ये हैं-

साहित्य

१. निबंध २. कथा ३. नाटक ४. कविता
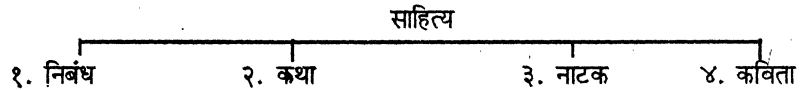
ये चार बिंदु साहित्यक शैली के मोड़ हैं। ②"साहित्यिक शैली की अविच्छिन्नता के संदर्भ में ये चार बिंदु मिलकर एक स्वायत्त स्थिति को जन्म देते हैं। इन चारों में परस्पर लेन-देन चलता रहता है।

---

① रीति विज्ञान - डा॰ विद्यानिवास मिश्र (पृष्ठ १५)

② शैली विज्ञान - डा॰ सुरेश कुमार (पृष्ठ १०८)

तदनुसार निबंध निबंधात्मक होने के अतिरिक्त कथात्मक, नाटकीय तथा काव्यात्मक हो सकता है। कथा कथात्मक होने के अतिरिक्त नाटकीय,निबन्धात्मक एवं काव्यात्मक हो सकती है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में जहाँ दार्शनिक प्रसंग हैं, वहाँ निबंध की, जहाँ भावात्मक प्रसंग हैं, वहाँ नाटक-तत्त्व की तथा जहाँ धटनाओं का वर्णन है, वहाँ कथा की झाँकी मिल जाती है। इसी प्रकार लेखक ने चन्द्रावती अथवा नासिकेतोपाख्यान के आरंभ में जिन दोहों एवं चौपाइयों को प्रस्तुत किया है, उनमें काव्य का स्वाद मिल जाता है। नासिकेतोपाख्यान अर्थात् चन्द्रावती के बीच-बीच भी कुछ कथोपकथन भी दोहे चौपाइयों में ही प्रस्तुत किये गये हैं।

नासिकेतोपाख्यान की गणेश वंदना गद्य एवं पद्य दोनों रूपों में है, पहले गद्य में फिर पद्य में। गणेश वंदना का दोहा इस प्रकार है-

गणपति चरण सरोज द्वौ, सकल सिद्धि की राश।
बन्दन करि सब होत है, पूरण मन की आश।

इसी प्रकार 'रामचारित' का प्रारंभ 'श्री गणेशाय नमः' के उल्लेख के पश्चात् निम्नलिखित चौपाइयों से किया गया है:-①

विष्णु वंदना

सिंधु-सुता मुख चन्द्र चकोर, जा लग सिद्धि रहें कर जोर।
विविध रूप होए विघन विदारे, प्रतिपालक सोहेव हमारे।।

गणेश वंदना

जगमग जोति जासु तन लसे, संत जनन के मानस बसे।
आनंद रूप गजानन बड़े, भक्त काज रहत जो खड़े।।

राजा की प्रशंसा

नृपति वीर जब ते तू भये, होत सिंगार जगत के नये।
फूल उठी वसुधा हरषानी, धन धान्यन ते अति अकुलानी।।
घर घर मंगल चार घनेरे, रंग ओ राग करहि बहुतेरे।
सुचित होए नर करैं किलोलें, मणि भूषण पहिरें अनमोलें।
रण अंगन पगु देत तुम्हारे, इन्द्र हु हों पर त्राहि पुकारे।
थर थर कांपे उठे दिगपाल, निज शस्त्रन धरती मह डाल।

रीतिकाल की परंपरा के क्रम में आश्रयदाता की प्रशंसा के रूप में सदल मिश्र ने अंतिम बारह पंक्तियों (तीन चौपाइयों) की रचना की है। इन चौपाइयों की भाषा पर ब्रजभाषा की छाप स्पष्ट है। जहाँ तक युद्ध में वीरता के वर्णन का प्रश्न है, ईस्ट इंडिया कंपनी की दक्षिण-विजय के पश्चात् ही फोर्ट

① सदल मिश्र ग्रन्थावली, (पृष्ठ ३३)

विलियम कॉलेज की स्थापना हुई थी और संभवत: लेखक का संकेत उसी की ओर है। इन चौपाइयों की तुलना में चन्द्रावती के घटना वर्णन एवं कथोपकथन के प्रसंग की चौपाइयाँ खड़ीबोली का अधिक प्रतिनिधित्व करती हैं।

योग और तप कुछ नहीं आवे, रह रह नयन-नीर भर आवे।
क्यों हूँ क्षण भर धीर न पावे, आकुल हो हो समय बितावे।

खड़ीबोली में काव्य-रचना के प्रथम आधुनिक कवि के रूप में सदल मिश्र की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धरण योग्य हैं, जो उद्दालक के मुख से अपने पुत्र के प्रति कही गयी हैं -

इतना दिन कहो कहां लगाए, तेरे कारण बहुत दुख पाए।
अग्निहोत्र यह यज्ञ हमारा, तुम बिन गया अकारथ सारा।

यद्यपि इन चौपाइयों में मात्रा-संबंधी त्रुटियाँ हैं, पर इनके अन्वय "कहो, इतना दिन कहाँ लगाये, तेरे कारण बहुत दुख पाए, हमारा यह अग्निहोत्र यज्ञ तुम बिन सारा अकारथ गया।" खड़ीबोली का स्वरूप प्रस्तुत करता है।

यमराज के द्वारा नचिकेता के प्रति प्रस्तुत चौपाइयाँ भी इसी प्रसंग में उद्धृत हैं-

बालहिपन में घड़ी सिधाई, कहो मुनीश कैसे यह पाई।
धन्य पिता जिनके तुम भए, तुम्हें देख पातक सब गये।
कारण कौन यहां तुम आए, बार बार मेरे गुण गाए।
अमृतवाणी बहुत सुनाई,जो कहत सोहविनि अतिसुखदाई।

इन चौपाइयों में सिद्धि के लिए सिधाई से ग्रामीण शब्द का प्रयोग अर्थ में बाधा उपस्थित करता है। इन चौपाइयों में भी मात्रा संबंधी त्रुटियाँ विद्यमान हैं।

रीतिकाल के सर्वाधिक प्रिय छन्द 'कवित्त' में भी लेखक ने एक रचना प्रस्तुत की है-

नरक विनासी सुख के रासी हरि चरित्र नहीं गाए,
कोध लोभ को नीच संग कर कहो कौन फल पाए।
त्यजि आचार महामद माते हृदय च्येत में लाए।
आतुर हैव नारिन के पीछे मानुष जनम गंवाए।

कवित्त में वर्णिक मात्राओं की स्थिति उचित प्रतीत होती है यद्यपि 'हैव' च्येत एवं त्यजि आदि शब्द खड़ीबोली से भिन्न लगते हैं, फिर भी "गाए, पाए, ल्याए एवं गंवाए" आदि शब्द खड़ीबोली के ही हैं, इसमें मतभेद नहीं। इन उद्धरणों से सदल मिश्र के एक अच्छे कवि होने का प्रमाण मिलता है। लेकिन उनकी यह विशेषता है कि उनके गद्य में लल्लू जी लाल कवि के गद्य में मिलनेवाले लय एवं तुकान्तता की अतिशयता नहीं मिलती।

सदल मिश्र का रचना-सौष्ठव उनके द्वारा प्रयुक्त खड़ीबोली गद्य में और अधिक स्पष्ट है। यद्यपि उन्होंने कोई मौलिक साहित्यिक रचना प्रस्तुत नहीं की परन्तु उनकी 'चन्द्रावती' अथवा नासिकेतोपाख्यान

आवानुवाद होने के कारण खड़ीबोली गद्य की प्रथम मौलिक साहित्यिक रचना मानी जा सकती है। **उनकी दूसरी कृति 'रामचरित' एक अनूदित कृति होकर भी अपनी मौलिकता को बनाये हुई है। इन कृतियों की भाषा-शैली पर विचार करने के प्रसंग में साहित्यिक अनुवाद और शैली विज्ञान् के संबंध में यह उल्लेखनीय है कि "साहित्य का एकमात्र माध्यम, क्योंकि भाषा है और शैली का संबंध मूलरूप से भाषा के साथ है, अत: साहित्यिक अनुवाद में शैली का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाता है। हम प्रकारांतर से यह भी कह सकते हैं कि साहित्यिक अनुवाद मूल रूप से भाषा (संरचना तथा शब्दकोश) की समस्या न होकर शैली (उक्त के चयन, प्रवर्तन तथा विन्यास) की समस्या है।"①**

"साहित्यिक अनुवाद को सर्जनांतरण या सर्जनात्मक भाषांतरण कहा जाता है। हम मूल भाषा में लिखी एक कविता या कहानी या नाटक आदि किसी साहित्यिक रचना के लिए लक्ष्य भाषा में एक कविता या कहानी या नाटक आदि किसी साहित्यिक रचना का सृजन करते हैं। हमें यह स्मरण रखना होगा कि किसी साहित्यिक रचना का संसार उस भाषा से निष्पन्न संसार है,जिस भाषा में वह रचना लिखी गयी है। लाक्षणिक भाषा में कह सकतें हैं कि साहित्यिक अनुभव भाषागत अनुभव ही है, परंतु विशिष्ट भाषागत अतएव शैलीगत। इसीलिए साहित्यिक अनुवादों की प्रकृति व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक अनुवादों से भिन्न हो जाती है। वे जिन प्रसंगों के वाहक हैं उनका भाषा से बाहर भी अस्तित्व होता है तथा हम उन्हें सामने एक कसौटी के रूप में रखकर मूल अनूदित पाठों की सदृशता को माप सकते हैं । परंतु साहित्यिक प्रसंग तो साहित्यिक रचनाओं के भीतर ही होता है। उसके अनुवाद की सफलता मापने के लिए हमारे पास कोई वस्तुनिष्ठ कसौटी नहीं हो पाती। यह सब हमारे भाषा ज्ञान पर निर्भर है। **अतः साहित्यिक अनुवाद में शैली का प्रश्न केन्द्रीय महत्त्व का हो जाता है।②**

ऊपर बताये अनुसार पाठों की सदृशता के बारे में 'अनुवादक के रूप में सदल मिश्र' **शीर्षक** तेरहवें अध्याय में विस्तार से विचार किया जा चुका है। अत: यहाँ हम सदल मिश्र ग्रंथावली के **प्रसंग** में शैली पक्ष पर ही विचार करेंगे। चूँकि 'नासिकेतोपाख्यान' एवं 'अध्यात्मरामायण' दोनों ही संस्कृत-काव्य हैं और इनका अनुवाद गद्य में प्रस्तुत है, अत: रचना में छंद की सममूल्यता का प्रश्न ही नहीं उठता। जहाँ तक सांस्कृतिक तत्त्वों का प्रश्न है, उनमें भी विशेष अंतर होने की संभावना क्षीण है। संस्कृत में 'कामदेव' प्रेम के देवता कहलाते हैं लेकिन अंग्रेजी में वे 'क्यूपिड' कहलाते हैं। दोनों की सममूल्यता में अंतर है। भारतीय साहित्यिक संस्कृति में जिस रूप में कामदेव को सौन्दर्य का उपमान माना जाता है,पाश्चात्य साहित्यिक संस्कृति में उस रूप में नही माना जाता। इस प्रकार संस्कृत से अंग्रेजी में 'कामदेव' का 'क्यूपिड' अनुवाद साहित्यिक संस्कृतिगत अंतर सहित होगा। लेकिन संस्कृत से हिन्दी में 'कामदेव' का 'कामदेव' अनुवाद संस्कृतिगत समतुल्यता से युक्त होगा।

अत: हम शैली के प्रसंग में सिर्फ इसी तत्त्व की परीक्षा करेंगे कि मूल ग्रंथ की सौन्दर्यानुभूति की व्यंजना के लिए अनुवादक ने किस शैली का प्रयोग किया है। साहित्यिक सौन्दर्यानुभूति साहित्यिक कृति में ही उपलब्ध होती है, उससे बाहर कहीं उसकी सत्ता नहीं होती, अत: अनुवादक अपने शैलीगत अंतर्ज्ञान से काम लेता है और उस अंतर्ज्ञान में विश्लेषणात्मक पद्धति उसकी सहायक होती है।

---

① शैली विज्ञान - डॉ॰ सुरेश कुमार, (पृष्ठ १७४)

② वही, (पृष्ठ १७४)

साहित्यिक कृति की संरचना के दो स्तर होते हैं :-

(१) साहित्यिक संरचना का स्तर

(२) भाषा संरचना का स्तर।

साहित्यिक संरचना के दो उपस्तर माने जाते हैं :-

(१) गठन (पूर्ण प्रभाव) का उपस्तर

(२) बुनावट (लघु प्रभाव) का उपस्तर।

इनका सोपान क्रम भी यही होता है। इनके नीचे भाषा-संरचना का स्तर है जो क्रमश: अर्थ, व्याकरण और शब्दकोश तथा स्वरों-वर्णों के सोपान क्रम में बँधा होता है। इन दोनों स्तरों में विद्यमान संबधों को शैली कहते हैं। शैली के दो पहलू हैं - (१) चयन (२) नवप्रवर्तन, चयन और नवप्रर्वतन की प्रक्रियाओं के फलस्वरूप एक साहित्यिक कृति को अपना व्यक्तित्व प्राप्त होता है। शैली के निर्धारण में जिन शक्तियों का योगदान रहता है- वे हैं "लेखक, भाषा समुदाय की साहित्यिक संस्कृति और उसके अंतर्गत उस विशिष्ट कृति से संबंधित साहित्यिक उपसंस्कृति, भाषा के इतिहास में एक विशिष्ट कालखंड, भाषा के भौगोलिक तथा उसके अंतर्गत सामाजिक स्तर से संबंधित एक विशिष्ट भेद, विशिष्ट साहित्यिक कृति में लेखक की उद्देश्यगत विशिष्टता आदि। इस प्रकार 'साहित्य और शैली' के अंतर्गत 'भाषा और शैली' की संकल्पना अंतर्भूत है।"①

शैली अध्ययन की पद्धति पर विचार करते हुए इस बात को ध्यान में रखा जा सकता है कि 'किसी विशेष भाषा की शैली' और उसी भाषा के किसी विशेष लेखक की शैली में अंतर होता है। लेखक की शैली कहने में हमें ऐसा प्रतीत होता है कि किसी शैली का निर्माता लेखक हो। लेकिन ऐसा होता नहीं। वास्तविकता यह है कि लेखक सामान्य भाषा से ही प्राय: चुनाव करता है और इस प्रकार वह भाषा को देने के स्थान पर उससे अधिक लेता है। बहुत सीमित परिस्थितयों में ही, जैसे प्रगति या किसी काव्यात्मक निबंध में ही, वह भाषा का कुछ ऐसा प्रयोग करता है कि वह शैलीकार कहा जा सकता है। सामान्य स्थिति यह है कि लेखक जिस विधा में लिख रहा है उसकी प्रचलित शैली को वह विरासत के रूप में प्राप्त कर उसी में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करता है।"② इस प्रकार लेखक की शैली के स्थान पर भाषा की शैली पहले आती है और फिर शैली-निर्माण का क्रम इस प्रकार बन जाता है- एक पाठ की शैली, सदृश पाठों की शैली, लेखक की शैली, युग की शैली।

इस प्रसंग में खड़ीबोली गद्य की आरंभिक रचनाओं की स्थिति का पर्यवेक्षण करने पर हम यह पाते हैं कि रामप्रसाद निरंजनी, दौलतराम, सदासुखलाल, मथुरानाथ शुक्ल, लल्लूलाल और सदल मिश्र द्वारा प्रस्तुत पाठ के विषय धार्मिक और परम्परागत थे। उनमें से अधिकांश लेखकों की कृतियाँ संस्कृत-ग्रंथों पर आधारित होने के कारण उनकी शब्दावली में बहुत कुछ समानता दिखायी पड़ती है। उनके बीच एक दूसरे की कृतियों के उपलब्ध होने तथा पारस्परिक संपर्क के अवसर के अभाव के कारण उनकी शैली एक दूसरे से पूर्णत: प्रभावित नहीं हो सकी। लेकिन उन सबकी शैली में जो समानता मिलती है, वह उस युग की शैली कही जायगी। उस युग के दूसरे लेखक उसी खड़ीबोली भाषा में धार्मिक कृति

---

① शैली विज्ञान और प्रेमचन्द की भाषा- डॉ॰ सुरेश कुमार (पृष्ठ -४)

② वही- (पृष्ठ -६)

न प्रस्तुत कर लौकिक श्रृंगार की रचना 'रानी केतकी की कहानी' प्रस्तुत करते हैं, फलत: उनकी शैली सबसे भिन्न हो जाती है। इस विशेष भिन्नता का कारण उनकी रचना की परंपरा फारसी भाषा का होना भी कहा जा सकता है। इसीलिए उनकी शैली के संबंध में पं॰ रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा- " अपनी कहानी का आरम्भ ही उन्होंने इस ढंग से किया है जैसे लखनऊ के भाँड घोड़ा कुदाते हुए महफिल में आते हैं।" इसीलिए डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है - "प्रारम्भ में गद्य की भाषा काव्य की भाषा से प्रभावित रहती है, विशेष रूप से उस समय जबकि ब्रजभाषा काव्य की परम्परा कई शताब्दियों से चली आ रही थी। साथ ही वह व्यवस्थित और सुगठित रूप में नही मिलता। धार्मिक विषयों से संबंधित होने के कारण उसमें पंडिताऊपन आये बिना न रह सका।"① इन सब त्रुटियों के रहते हुए भी खड़ीबोली गद्य ब्रजभाषा तथा राजस्थानी गद्य की अपेक्षा अधिक सशक्त है।

इस प्रकार सदल मिश्र ग्रंथावली की भाषा-शैली की परम्परा को समझने के लिए उपर्युक्त संदर्भ अनिवार्य है। समकालीन गद्यलेखकों को सांस्कृतिक, भौगालिक, सामाजिक वातावरण एवं बौद्धिक स्तरों की भिन्नता के कारण उनकी भाषा-शैलियों में भिन्नता होना स्वाभाविक था। मुशी सदासुखलाल को संस्कृत-फारसी का ज्ञान था तथा उनका अंतिम समय प्रयाग के धार्मिक वातावरण में ही बीता था। वे सरकारी नौकरी में भी रह चुके थे। फलत: उनकी भाषा ब्रजभाषा से प्रभावित होकर भी बहुत-कुछ जनसामान्य की भाषा थी। लल्लूलाल एवं सदल मिश्र के समकालीन एवं फोर्ट विलियम कॉलेज में सहयोगी होने के कारण इनकी भाषा-शैली में समानता होनी चाहिए थी लेकिन 'लल्लू जी लाल कवि' मुख्य रूप से कवि थे। उनके ज्ञान की पूर्व पीठिका फारसी तथा ब्रजभाषा साहित्य की थी तो सदल मिश्र के ज्ञान की पूर्व पीठिका संस्कृत साहित्य की रही और उन्हें जन-सम्पर्क एवं कथावचन का अनुभव भी था। अत: इन दोनों व्यक्तियों की भाषा-शैलियों में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगत है। उनकी भाषा-शैलियों की भिन्नता का आधार उनके जन्म-स्थान की भौगोलिक परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं। इन उक्तियों के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि शैली के संबंध में प्राचीन यह पश्चिमी मान्यताएँ खण्डित हो चुकी हैं कि रीति (शैली) रचनाकार का व्यक्तित्व है। अधिक-से-अधिक यह कहा जा सकता है कि शैली रचनाकार द्वारा चुनी गयी संभावनाओं और साँचों का गुम्फन है, पर ये **संभावनाएँ और साँचे रचनाकार की नहीं, उसकी भाषा की हैं,** इस कारण रीति का भी वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव हो गया है। यदि रीतियों में वैविध्य दीखता है और उस वैविध्य के आधार पर शैलीकार को पहचाना जा सकता है, तो वह स्वयं प्रत्येक प्रकार की **रीति में एक तरह के सँवारे साँचों के अभ्यास से उत्पन्न रीति की अविच्छिन्नता के कारण, न कि शैलीकार की निजता के कारण।**②

सदल मिश्र की रीति उनके युग में प्रचलित रीतियों से किस सीमा तक विशिष्ट है, इसी तत्त्व का अनुशीलन हमारा लक्ष्य है। जैसा कि हमने आरम्भ में ही कहा है, सदल मिश्र की रचना मुख्य रूप से संस्कृत पद्य से गद्य में अनूदित कथा है। संस्कृत साहित्य की परम्परा में 'नाटक एवं काव्य' एक ही विधा माने जाते थे। महाकाव्य एवं प्रबंध काव्यों में कथोपकथन, प्रकृति चित्रण, घटना-वर्णन एवं व्याख्यान आदि का संगुफन एक साथ ही रहता था। जो भी हो, सदल मिश्र ग्रंथावली के दोनों ही ग्रंथ कथा की श्रेणी में आते हैं। कथा के सूत्र में पात्र हैं, घटनाएँ हैं और ये घटनाएँ कालक्रम से संयोजित होकर चरम बिन्दु और समाधान की ओर बढ़ती हैं। कथा के तीन उपकरण होते हैं- वर्णन,संवाद तथा व्याख्यात्मक टीका।

---

① आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (पृष्ठ- २८२)

② रीति विज्ञान - डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र (पृष्ठ ५१)

संस्कृत शैली विज्ञान में पाठ विश्लेषण की पद्धित 'टीका' नाम से प्रसिद्ध है। टीका में एक पाठ का अर्थगत स्पष्टीकरण, उसकी व्याकरणिक विशेषताओं का निरूपण, पर्याय कोश के उद्धरण देने के साथ अभिव्यक्ति की विशिष्टता पर शैली वैज्ञानिक टिप्पणी- अलंकार निर्देश, छंद का संकेत, आदि भी होती है। लेकिन शैली के अध्ययन की आधुनिक परंपरा के अनुसार बुनावट के स्तर पर भाषा प्रयोग की विशिष्टता का वर्णन करते हुए वाक्य विन्यास, शब्दचयन,ध्वनिव्यवस्था, आदि से विविध प्रकार के अलंकारों, शब्द शक्तियों आदि के लघु प्रभावों का अध्ययन करते हैं तथा आगे जाकर गठन के सोपान पर पात्र, कथानक, थीम आदि बृहत् प्रभावों की निरापत्ति में शैलीगत उपकरणों के योग की परीक्षा करते हैं।

शैली के तीन उपकरण हैं - (१) ध्वनिमूलक शैलीय उपकरण
(२) अर्थमूलक शैलीय उपकरण
(३) वाक्यात्मक शैलीय उपकरण

(१) ध्वनिमूलक शैलीय उपकरण

भाषा का व्यापार सूचना का सम्प्रेषण है। दूसरे शब्दों में 'अर्थ' सूचना है और शब्द भाषा। संप्रेषण की यह रीति (शैली) शब्दों के चयन, वाक्य-विन्यास, सादृश्य-विधान एवं सादृश्येतर उक्ति-भंग के स्तर पर हो सकती है। ध्वनि का अर्थ से प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता। अर्थ व्याकरण या शब्द समूह के ढाँचे में व्यवस्थित होता है। ध्वनि भाषा की अभिव्यक्ति का माध्यम है। सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त ध्वनियों की शैलीगत संभावनाओं का अध्ययन लय, अनुकार, ध्वनि समूह, अनुप्रास, रीति एवं व्यक्ति वैशिष्ट्य सूचक ध्वनियों आदि के अनुसार इस प्रकार है-

(क) लय

पद्यात्मक रचना में लय की उपस्थिति अनिवार्य होती है। इस लय को शास्त्रीय भाषा में वामन ने 'समाधि' कहा है। वामन आरोह और अवरोह के क्रम को समाधि कहते हैं। पद्य में क्रमिक रूप के लिए स्वर माधुर्य का होना आवश्यक है। ''पद्य में क्रमिक आवृत्ति के द्वारा यह स्वर माधुर्य निष्पन्न किया जाता है। गद्य में वाणी की सहजता से इसकी निष्पत्ति होती है, क्योंकि सहज वाणी भी, जो गद्य की विशेषता है, लययुक्त होती है,........... लय के द्वारा अभिव्यक्त प्रभाव की संगठित रूप में निष्पत्ति होती है, वह नुकीलेपन के साथ अभिव्यक्त होता है।''①

पं० सदल मिश्र ग्रंथावली में उपलब्ध संदर्भगत स्थिति इस प्रकार है:-

आनंद एवं खुशी की व्यंजना में लय का योगदान

(१) सखी सहेली और जात भाइयों की स्त्री सब दौड़ी हुई **आईं**, समाचार सुनि बहुत **जुड़ाईं**। (पृ० १५)

(२) मगन हो **गाने बजाने** लगी वो अपने देह से गहने उतार ....देने लगी (पृ० १५)

①शैली विज्ञान और प्रेमचन्द की भाषा - डॉ० सुरेश कुमार, पृष्ठ -२०।

(३) लगे ढ़ोल दमामे बजाने, जो चहुंदिशि से राम पर फूल बरसावने ओ सिद्ध मुनि सब यश **बषानने** ....अप्सरागण **नाचने** (पृ० १६९)

प्रेरणा को बल देने में लय का योगदान

(१) सुनो अब जो निज प्रतिज्ञा से **टलोगे** तो अंत समय अवश्य नरक भोगोगे (पृ० ६१)

(२) जो नर **गावेगा** सो परम गति **पावेगा** (पृ०११९)

प्रभाव की निष्पत्ति पर बल देने में लय का योगदान

राम ने तुमको राज्य पर बिठलाया वो विनही के पुण्य प्रताप से तुमने तारा को पाया।

दुःख की अभिव्यक्ति को बल देने में........

(१) पुत्र के लिए आकुल हो **जहां तहां बौड़ी** सी **दौड़ी** फिरती और जिस तिस से पूछती (पृ० १२)

करुणा भाव की पुष्टि के लिए

१- लक्ष्मण तू इस समय तेरा त्राण कर .....मेरी बातों पर मत ध्यान कर (पृ० १०१)

२- तुम्हारा विकसित मुख देखकर मैं हुलसित भया (पृ० ५०)

विविध :-

१- राजा जनक की बड़ी सुकुमारी लड़की सुघरी सी अटारी में (पृ० ५०)

२- इस भांति जब सिया ने ठाना तब राम ने जाना (पृ० ४९)

लयात्मकता के प्रसंग में तत्कालीन लेखक लल्लूलाल जी कवि के 'प्रेमसागर' के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं (प्रेमसागर ज्ञा०मं०पु०)

१- कहीं वह कपटी अक्रूर तो नहीं आया, जिसने श्री कृष्ण चन्द्र को ले जाय मथुरा में बसाया और कंस को मरवाया- (पृ० ८५)

२- बरजें तो कंस रिसाय, न बरजें तो धर्म नसाय (पृ० ७६)

३- उधर श्री रधिका जा हरि के साथ अधिक सुख मान, प्रीतम को अपने वश में जान, अपने को सबसे बड़ा जी में ठान, अभिमान में आन बोलीं - (पृ० ५३)

४- ऐसा वह मन ही में कहे और रात दिन चिंता में रहे (पृ० ११७)

५- कोई उबटन लगाय नहलावे, कोई षटरस भोजन बनाय जिमावे - (पृ० १३८)

लय या तुक के प्रयोगों की अधिकता के कारण प्रेमसागर - 'गद्य' होते हुए भी 'चम्पू' सदृश प्रतीत होने लगता है। इस संदर्भ में लल्लू लाल की कृति 'प्रेमसागर' से संबंधित डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय की उक्ति उद्धरण योग्य है ① -- "प्रेमसागर में भाषा की सजावट भी पूरी है। उसके गद्य में तुकबन्दी और

① आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृष्ठ -३९६।

पद्यानुकूल वाक्य गठन है।'' प्रेमसागर की भाषा गद्य-पद्य मिश्रित है। ''लल्लू लाल द्वारा रचित पद्यात्मक अंशों की भाषा ब्रजभाषा है यद्यपि कहीं-कहीं 'सरबस दिया तुम्हारे साथ' जैसे खड़ीबोली के रूप भी मिल जाते हैं।''

(ख) अनुप्रास

''अनुप्रास ध्वनिमूलक शैलीय उपकरण है जो खण्डीय ध्वनि की अभिव्यंजकता का संभवत: सर्वोत्तम नमूना है। आचार्य कुंतक ने अनुप्रास को ही वर्ण विन्यास वक्रता कहा है। भारतीय कवियों का यह प्रिय अलंकार है।'' सदल मिश्र ग्रंथावली में इसका प्रयोग कलात्मक रूप में न होकर सहज रूप में किया गया है। कहीं तो इसका प्रयोग केवल ध्वनि सौंदर्य के लिए किया गया है, जो कहीं माधुर्य, बल एवं विशदता को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए। अनुप्रास शब्द और अर्थ में सामंजस्य उत्पन्न करता है।

सदल मिश्र ग्रंथावली की भाषा में इसका बड़ा ही सटीक प्रयोग किया गया है। पदबंधों के अध्ययन के प्रसंग में भली-भाँति, बड़ी-बड़ाई, सास-ससुर एवं पुरुष-पुरातन आदि शब्द युग्मों में अनुप्रास के सैकड़ों उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। फिर भी माधुर्य एवं ओज को प्रकट करने की दिशा में निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

च = १. चकित हो चारों दिशा चितौने लगे (पृ० ११)
२. चोषे-चोषे चोंचन से (पृ० १००)

स = १. सीता-लक्ष्मण समेत सुतीक्ष्ण के साथ हो बड़ी श्रद्धा से (पृ० ८९)
२. नि:संदेह में सीता समेत बसता हूँ तिससे सब विषय-वासना तज सदा शान्त होकर
३. सुवर्ण से भूषित सुहागिन स्त्री सब (पृ० १००)

म = १. महा मद माते (पृ० २६)
२. माता पिता मारे मोह से मरने योग्य (पृ० १०)
३. माया से मोहित मनुष्य तुम्हारी महिमा नहीं जानते (पृ० १४९)

'क' 'प' 'ख' एवं 'ब' ध्वनियों की आवृत्तियों के प्रभाव के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं :-

क = १. वानर सब अधर में कूद जा किचकिचाकर लगे घूँसें मारने (पृ० १४९) (ओज की सृष्टि)
२. कछू-कछू कोकिलें कुहुक रहे थे (पृ० १०) (वर्णनात्मकता)
३. रामचन्द्र का कुछ काज किया (पृ० १२६)
४. कटहल, कदंब, केला, कचनार (पृ० ८१) (वर्णनात्मकता)

प = अपने आश्रम पर पहुंच पुत्र को कहा-पूत (पृ० ११)

ख = खड़ग से मारकर खंड-खंड कर डालो (पृ० १४०) (ओज)

ब = १. बड़े-बड़े वैदिक ब्राह्मण (पृ० ५०) (विशदता)
२. बार बार विधि की स्तुति करने लगे (पृ० ५०)

ऊपर के सभी उदाहरण संदर्भगत हैं तथा प्रसंगानुसार अभिव्यंजना में अपना योगदान कर शब्दार्थ एवं वाक्यार्थ के प्रभाव को घनीभूत बना देते हैं।

सदल मिश्र की भाषा की इस विशेषता का उल्लेख श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने निम्नलिखित शब्दों में किया है:-

"सदल मिश्र हैज इनरिच्ड हिन्दी लिटरेरी स्टाइल विथ द अलंकार्स ऐज 'उपमा', 'रूपक' 'अनुप्रास' "अर्थात् सदल मिश्र ने उपमा, रूपक, अनुप्रास जैसे अलंकारों के प्रयोग से हिन्दी की साहित्यिक शैली को समृद्ध किया है।"

"हिन्दी गद्य में दोहरे शब्दों में प्रयोग करने की परिपाटी, जैसे- (भीतर-बाहर, फूलो-फलो, बोहार-सोहार) इन्होंने ही चलायी।"

कहने का तत्पर्य है कि तत्कालीन गद्य लेखकों की कृतियों में शब्दों एवं वर्णों की आवृत्ति का प्रयोग सदल मिश्र का अपना वैशिष्ट्य है।

(ग) अनुकार ध्वनि समूह

अनुकरण पर आधारित ध्वनि समूहों के प्रयोग से अभिव्यक्ति को अर्थवत्ता प्राप्त होती है। यह ध्वनि समूह संकेत ग्रहण कराने में समर्थ होते हैं। डॉ० बाहरी के अनुसार "भावोद्रेक, आन्तरिक प्रेरणा और इन्हें प्रयुक्त करने की विवशता आदि लेखक को इनके प्रयोग के लिए उत्तेजित करते हैं। इनका प्रभाव भी त्वरित, प्रत्यक्ष और आशु होता है। ये अभिव्यक्ति के सहज और प्रभावशाली उपकरण हैं।"

सदल मिश्र ग्रंथावली में इन ध्वनियों का प्रयोग विस्मय, भयंकरता, प्रक्रिया एवं प्रकृति चित्रण के प्रसंग में नीचे लिखे रूपों में मिलता है :-

१. हाय! हाय! मरे रे दौड़ो - सदा पुकारते रहते हैं (पृ० २०) (पीड़ा-भय)
२. मधुकर सब गंजते हैं (पृ० २५) (प्रकृति-चित्रण)
३. हा हा भूत हो फिरे फिरते हैं (पृ० २६) (भय)
४. ताड़का क्रोध से मूर्छित हो दशन कटकटाय उठ धाई (पृ० ४५) (भयंकरता)
५. जब लगे जल भरने तक भभक भभक उसका शब्द सुन (पृ० ७७) (प्रकृति वर्णन)
६. पीपल के पत्ते की फुनगी पर लटका हुआ पानी की बूंद सा टपकन हार (पृ० ७८) (ध्वनि)
७. मुंह से बबक बबक लोहू उगलकर (पृ० ९८) (प्रक्रिया)
८. सुसक सुसक कर रोने लगी (पृ० १४४) (प्रक्रिया)
९. बड़ा 'हाहास' करता हुआ (पृ० १६२) (हवा की ध्वनि)
१०. कहूं-कहूं कोकिलें कुहुकें (पृ० १०) (प्रकृति चित्रण)

(घ) रीति या वृत्ति

ध्वनिमूलक शैलीय उपकरणों में उपनागरिका या परुषा वृत्ति का प्रयोग भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। शास्त्रीय विधान के अनुसार माधुर्य और ओज गुण की निष्पत्ति प्रधान रूप से ध्वनिमूलक होती हैं और प्रसाद गुण की शब्दार्थ मूलक। माधुर्य गुण की पोषिका उपनागरिका वृत्ति अर्थात् कोमल ध्वनियाँ तथा ओज गुण की पोषिका परुषा वृत्ति अर्थात् ओज गुण व्यंजक ध्वनियाँ होती हैं।①

---

① हिन्दी सिमेटिक्स - डॉ० हरदेव बाहरी, पृष्ठ -३०६।

सदल मिश्र ग्रंथावली में सहज गद्य हैं, अत: प्रसाद गुण की प्रधानता है। फिर भी संस्कृत साहित्य के ज्ञाता होने के कारण उनके गद्य में काव्यशास्त्रीय लक्षणों की उपस्थिति स्वाभाविक है। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं :-

माधुर्य गुण :- चन्द्रमा समान बदन, केहरि कटि, मृग सा चंचल नयन, बड़ी बड़ी छाती कि जैसे सोने का दो कलस होय, लाल अधर, तोते की सी नाम कि जिसके नीचे एक तिल कुछ और शोभा दे रहा है। (पृ० १०)

ओज गुण :- रामचन्द्र लगे भाई से कहने, देषो लक्ष्मण यह समुद्र बड़ा दुष्ट है, हमारे आगमन से इसे हर्ष नहीं है, इसीलिए हमारे दर्शन को आता नहीं। यह हमको मानुष जानता है ओ समुझता है कि वानरों में मेरा ये क्या कर सकते हैं इसी घमंड से मारे तरंगन के और भी उमड़ चला, तुम देषो इसे अभी मैं शोष डालता हूँ। (पृ० १५०)

(च) व्यक्ति वैशिष्ट्य सूचक भाषण ध्वनियाँ

हम जानते हैं कि विशिष्ट सामाजिक वर्ग के व्यक्ति विभिन्न शब्दों का चयन एवं उच्चारण अपने-अपने ढंग से करते हैं। लेखक नाटकों एवं कहानियों के पात्रों के इन चारित्रिक विशेषताओं को दर्शाने के लिए उनके मुख से अनुकूल ध्वनियों का प्रयोग कराते हैं।

सदल मिश्र ग्रंथावली में पार्वती, शिव को एवं सीता राम को 'नाथ' शब्द से सम्बोधित करती हैं-

१- पारवती ने एक वेर यों विनती की जो नाथ दया कर रामचरित मुजको सुनाओ (पृ० ३४)

२. सीता राम से- नाथ क्या कारण है कि सब लोग बाग छोड़कर एकेले आप आये (पृ० ६५)

गुह भरत के ससैन्य आगमन पर संदेह करता हुआ अपने साथियों के बीच उनके लिए अनादर सूचक शब्द 'भरता' का प्रयोग करता है -

१- सब शस्त्र चहुंदिशि बांधे निहारते रहो; भरता का कोई लोग विनके निकट न आने पावे (पृ० ७९)

शूर्पणखा लक्ष्मण से निराश हो राम के पास आकर कहती है और 'लाला' शब्द का प्रयोग करती है :- क्यूं लाला, मुजसे तुम ठठा करते हो - (पृ० ९३)

यहां राम के लिए 'लाला' शब्द का प्रयोग अभिव्यंजकता में वृद्धि लाता है।

भावात्मक प्रत्यय

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रसन्नता या अच्छाई के अर्थ को बल देने के लिए भावात्मक पूर्ण प्रत्यय 'सु' तथा बुरे अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए पर प्रत्यय 'हारा' का प्रयोग मिलता है :-

१. सूचित हो (पृ० १८८), सुपस्या से (पृ० ९), दूषण देने हारा (पृ० ९), कीर्ति को नाशनहारा (पृ० ९)

(२) अर्थमूलक शैलीय उपकरण

शैली के उपकरणों की विशेष उपयोगिता अर्थ के क्षेत्र में ही होती है। अर्थ की जिस सामग्री को शैलीय प्रभाव की सृष्टि के लिए उपयोग में लाया जाता है, वह अर्थमूलक शैलीय उपकरण कही जाती है। इसके अन्तर्गत पर्याय-वाचिकता, आवृत्ति, शब्दशक्ति, अर्थगुण, अर्थालंकार, मुहावरे, शब्द समूह एवं संदिग्धार्थता आदि तत्त्व आ जाते हैं।

(क) पर्यायवाचिकता

शब्द-रूप की तुलना में शब्द से अर्थ अधिक सूक्ष्म होता है। कुशल लेखक पर्यायवाचक शब्दों का चयन अर्थ को बलवान् बनाने की दृष्टि से ही करते हैं। सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त पर्यायवाचक शब्दों के प्रयोग में निहित प्रयोजन का अध्ययन करने पर यह पाते हैं कि लेखक ने पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग उनके माध्यम से आवृत्ति में व्यवधानमूलक पर्यायवाचिकता आदि की अभिव्यंजना की है। पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग के कुछ विशेष उदाहरण इस प्रकार हैं :-

आवृत्ति में व्यवधानमूलक पर्यायवाची प्रयोग :-

१- हर्षित हो मुस्कुरा के ब्रह्मा बोल उठे (पृ.३३)

प्रसन्न होए सब मैं तुझे बताऊँगा (पृ. ३३)

यहाँ लेखक ब्रह्मा के हर्षित होने के बारे में कहने के बाद ब्रह्मा के मुख से 'प्रसन्न' शब्द का प्रयोग करता है।

२- द्रोही - लोग माता-पिता के द्रोही होंगे (पृ. ३४)

वैरी - नारीन शास-शसुर की वैरी होंगी

यहाँ माता-पिता के साथ 'द्रोही' तथा 'शास-शसुर' के साथ वैरी शब्द का प्रयोग अर्थ की अभिव्यंजना को सशक्त बनाता है।

लाक्षणिकता

१ - शोते थे - जो रघुनाथ बहुत सुन्दर भवन में सुघरे पलंग पर शोते थे (पृ. ७७)

२- लेट रहे हैं - सो राजकुमार घास-पात पर लेट रहे हैं। (पृ. ७७)

यहाँ 'सोने' व 'लेटने' पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग क्रमश: राजभवन एवं वनवास की भिन्न स्थितियों के लिए लाक्षणिक रूप में किया गया है।

भेद विवशात्मक पर्यायवाचिकता

भवन - रघुनाथ बहुत सुन्दर भवन में रहते हैं (पृ. ७९)

घर - धीवर घर को चला गया (पृ. ७९)

यहाँ राजा के लिए 'भवन' तथा धीवर के लिए 'घर' का प्रयोग दोनों की स्थितियों के भेद को प्रकट करता है।

इसी प्रकार पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग के कुछ और उदाहरण मिले हैं, जो लेखक की अभिव्यंजना शक्ति का निर्देश करते हैं :-

१- प्रभात = ज्ञान चर्चा करते एकबारगी प्रभात हो गई।
सबेरे = सुख से रात बिताया, होत सवेरे वहां से उठे।
तड़के = सारी रात बिता बड़े तड़के उठ विदा हुए (पृ० ७०-७१)

२- धीवर = फिर धीवर बोला (पृ० ६०)
गुह = यो बुझा समझा गुह को सूचित कर (पृ० ६०)
केवट = तहां गुह नाम केवट ने कुछ फल ला आगे रष्षा (पृ० ७४)

३- बेटे = तिनके बड़े बेटे का नाम रामचन्द्र है (पृ० १००)
लड़के = तुम किसके लड़के हो (पृ० ७७)
पुत्र = मैं राजा दशरथ का पुत्र हूँ (पृ० ९३)

४- दूल्हा = वे तुम्हारे दूल्हा होने योग्य हैं (पृ० ९३)
पति = सूर्पणखा -तुम मेरे पति होने योग्य हो (पृ० ९३)

५- सुभग = लक्ष्मण सुभग (पृ० ९३)
सुन्दरी = सुन्दरी लड़की सीता (पृ० ९३)

६- चाप = कितने एक दिन का पुराना शिव चाप तोड़ वृथा शूर कहाता फिरता है (पृ० ५३
धनुष = रघुवर ने इस धुनष को बाएं हाथ से उठा लिया (पृ० ४९)

७- निकट = निकट चलकर गौतम की भार्या का उद्धार ही किया चाहिए (पृ०४७)
समीप = ऐसे बुझा समझा हाथ पकड़ रामको समीप ले जा विश्वामित्र ने अहिल्या को देषा दिया (पृ० ४७)

यहाँ 'निकट' एवं 'समीप' शब्दों के सूक्ष्म अर्थ भेद ध्यातव्य हैं। शिवचाप एवं 'धनुष' शब्दों का भेद भी प्रयोग में स्पष्ट है।

८- रैन = कष्ट की रैन बीती (पृ० ६०)

रात = उस रात तनिक नींद नहीं आई (पृ० ६०)

कुछ ऐसे पर्यायवाची शब्दों का भी प्रयोग मिलता है, जो ग्राम्य हैं :-

१- गोदी = दशरथ ने चाहा कि मैं इन्हें गोदी में बिठाऊं (पृ० ६२)
अंक = राम ने शीघ्र उन्हें अंक में उठा लिया (पृ० ६२)

२- पिता = इस समय माता की रक्षा करना तम्हें उचित है (पृ० ६२)
बाप = पुत्र ऐसा है कि नरक में बाप का उद्धार कर लेता है (पृ० ६२)

३- किरिया = राम की किरिया खाते हैं (पृ० ६०)
शपथ = बार बार पुत्र का शपथ खा पृथ्वीपति ने समझाया (पृ० ६०)

ऊपर 'गोदी', 'किरिया' एवं 'बाप' शब्द ग्राम्य अर्थात् भोजपुरी के हैं। यह उल्लेखनीय है कि

यहाँ 'बाप' शब्द का प्रयोग नारी पात्र चन्द्रावती ने तथा 'किरिया' शब्द का प्रयोग कैकेयी ने किया है। संभवत: संस्कृत नाटकों के अनुकरण पर नारी पात्रों के मुख से ग्राम्य शब्दों के प्रयोग की बात लेखक के ध्यान में रही हो ।

इस प्रकार हमने यह पाया कि लेखक ने पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग के द्वारा इस बात की चेष्टा की है कि एक ही अर्थ के लिए जिन अनेक शब्दों का प्रयोग हो सकता है, किया जाये और उनके सहारे अर्थ की सूक्ष्मता एवं लचीलेपन की अभिव्यंजनाएँ प्रस्तुत की जायें। लेखक बोली, भाषा एवं साहित्य के क्षेत्रों में एक अर्थ देनेवाले अनेक शब्दों का संग्रह करता है और उनका यथोचित प्रयोग करता है।

(ख) आवृत्ति

जहाँ पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से अर्थ की सूक्ष्मता की अभिव्यंजना होती है, वहीं कभी-कभी इसी उद्देश्य से शब्द की आवृत्ति की जाती है। विषाद, क्रोध, दैन्य, आवेश, अनुकम्पा एवं हर्ष की स्थिति में शब्दों की आवृत्ति से अभिव्यंजना बलवती हो उठती है। काव्यशास्त्र में आवृत्ति का बहुत महत्त्व है :-

१- मैं जवान हूं सही, पर सैकड़ों पतिव्रता में एक पतिव्रता वो राजा की कन्या हूँ (पृ॰ १३ आवेश में चन्द्रावती का कथन)

२- राजा दशरथ बोला कि सुनो, क्या मुझे बकाती हो, मैं तुम्हें जी देने को उपस्थित रहता हूँ ओ सुनो प्राण से भी अधिक मैं राम को प्यार करता हूँ (पृ॰ ६०)

३- दुख के बीते सुख और सुख के बीते दुख लगा ही रहता है (पृ॰ ७०)

४- बोले - तुम्हारे वियोग से अति व्याकुल हो हा राम, हा लक्ष्मण,हा सीता यों बार बार कह देह त्याग स्वर्गधाम को गए (पृ॰ ८२)

५- महा पापी मारीच ने कैसा कर्म किया, ओ कैसी गति पायी (पृ॰ ९९)

गद्य का आरंभ काल होने के कारण इनका प्रयोग अधिक नहीं मिलता।

(ग) शब्द शक्ति

शब्द की तीन शक्तियाँ - अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना शैली की प्रधान अंग हैं। वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ जब अभिव्यंजक रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं, तो शैली का उदय होता है। जब वाच्यार्थ में असंभव अर्थ या विद्यमान धर्म के अतिशय का आरोप किया जाता है, तो उसकी प्रतीति में रूढ़ि वैचित्र्यवक्रता होती है। वाच्यार्थ का उस धर्म से भाव साहचर्य रहता है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में शब्द शक्तियों के प्रयोग के जो उदाहरण मिलते हैं, उनकी स्थिति इस प्रकार है :-

१- ब्रत, नियम, पूजा, ध्यान में उसको मगन देखकर जी में महाराज बहुत प्रसन्न थे कि यह देवी है। (पृ॰ ९)

चन्द्रावती मात्र एक राजकुमारी है, लेकिन उसमें 'देवी' के कुछ गुणों का साहचर्य दिखा उसे - 'देवी' कहना लक्षणा मूला शक्ति का प्रयोग कहा जायगा।

२- देवताओं के कंटक रावण को मारेंगे (पृ० ३७)

रावण 'कंटक' जैसा निर्जीव पदार्थ नहीं, लेकिन उसमें कंटक के सदृश दु:ख देने का धर्म है।

३- तुम-सा बुद्धि-सागर कोई दूसरा नहीं (पृ० ५९)

यह वाक्य कैकेयी मंथरा के प्रति कहती है। मनुष्य बुद्धि का सागर नहीं हो सकता। सागर एक निर्जीव जल का समूह है। लेकिन यहाँ 'सागर' में लक्षणा शक्ति का प्रयोग है।

४- रामचन्द्र मनुष्य नहीं हैं, आदि नारायण हैं (पृ० ६७-असाधारणता)

५- पर्वत स्वरूप बनकर यह वचन कहने लगे (पृ० १३०-विशालता)

६- सारा अंग जल उठता है (पृ० ७८-क्रोध)

ऊपर के तीन वाक्यों में राम की असाधारणता, नारायण में हनुमान की विशालता 'पर्वत' में तथा 'क्रोध' की अधिकता 'अंग जल उठने' शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति की गयी है। यहाँ वाच्यार्थ में बाधा होने से लक्षणार्थ प्रकट हो रहा है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में वाचक और लक्षक पदों की व्यंजकता की तुलना में व्यंजक पदों की व्यंजकता अपने स्वभावानुकूल अधिक सटीक रूप में प्रकट होती है :-

सूर्पणखा राम से कहती है- मैं रावण की बड़ी दुलारी बहन हूँ (पृ० ९३)

इस कथन के पीछे व्यंजना यह है कि यदि मेरी उपेक्षा या अवज्ञा हुई तो रावण उसका बदला लेगा।

इसी प्रकार राम के मुख से परशुराम के प्रति 'ब्राह्मण देवता' पदों का प्रयोग राम के इस भाव को प्रकट करता है कि वे परशुराम को इस कारण क्षमा कर रहे हैं कि वे ब्राह्मण हैं-

'सुनो' ब्राह्मण देवता, मुझसे धनुष उठवाना कुछ ठठा नहीं है (पृ० ९३)

इसी प्रकार मंथरा के इस वाक्य की व्यंजना शक्ति के बारे में तो सभी परिचित हैं:-

१- मुझे क्या लौंड़ी छोड़ रानी थोड़े ही होऊंगी (पृ० ५८)

२- तुम्हारा अन्न खाती हूं इसलिए अनीति नहीं देखी गई (पृ० ५८)

कैकेयी के लिए 'राक्षसीनी' शब्द का प्रयोग भी अपनी व्यंजना के लिए उद्धरण योग्य है --

विनाशकारी कैकेयी राक्षसीनी उत्पन्न हुई (पृ० ६६)

गोपनीय तथ्यों की उक्ति व्यंजक रूप में की गयी है :-

कैकेयी :- तुम्हारे पिता बैकुंठ धाम को गये जहां अश्वमेध आदि यज्ञ करनहारे धर्मात्मा लोग जाते

हैं। (पृ० ७६)

यहाँ दशरथ की मृत्यु की बात 'बैकुंठ धाम' जाने की बात के माध्यम से कही जा रही है।

(घ) अर्थालंकार

संस्कृत साहित्य अलंकार-सम्पत्ति से विभूषित है। दंडी काव्यालंकार के महान् समर्थक थे- वे काव्य की प्रमुख विशेषता अलंकारों में ही देखते थे- "काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।"① हिन्दी के रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि केशवदास की उक्ति "भूषण बिना न सोहई, कविता बनिता मित्र" से सभी परिचित हैं। अर्थालंकारों में उपमा का प्रयोग लगभग आज भी अधिकाधिक होता है।

अलंकार का प्रयोग सहज भाषा में भी होता है। सदल मिश्र ग्रंथावली की भाषा सहज है, इसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति एवं रूपक आदि अलंकारों के कारण स्थान-स्थान पर भाषा अभिव्यंजना से सशक्त हो उठी है। प्रथम गद्य रचना में अलंकारों का अधिकाधिक एवं सटीक प्रयोग हिन्दी गद्य शैली की सामर्थ्य को प्रकट करता है। इन सादृश्यमूलक अलंकारों का उपयोग चित्रात्मकता, स्पष्टीकरण, भावाधिक्य, चरित्र-चित्रण, अर्थ गौरव, सौंदर्य-वर्णन एवं करुण भाव की अतिशयता के लिए किया गया है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त कुछ उपमाएँ मूल संस्कृत ग्रंथों से सीधे ली गयी हैं और कुछ परिवर्तन पूरक। लेकिन कुछ ऐसी भी अलंकारोक्तियाँ हैं जो लेखक की अपनी देन हैं। कुछ भी हो, सदल मिश्र 'खड़ीबोली' गद्य में इन उपमाओं का प्रयोग कर उसकी भावी असीम क्षमता के प्रति आश्वस्त हो गये थे। उन्होंने कुछ अलंकार ग्रामीण कहावतों से ग्रहण किये हैं:-

१- परशुराम का मुंह काला ओ चुकिया सा हो गया (पृ० ८३) (उपमा अलंकार)

२- यह सोच बाघिन सी आगे खड़ी हुई कैकेयी (पृ० ५९)

'चन्द्रावती' अथवा 'नासिकेतोपाख्यान' के उपमा अलंकारों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :-

१- तब भय से डरती कांपती और नैनों से आंसू ढ़लकाती जैसे सोने की लता पर से मोतियों के फूल झरे - (पृ० ९-उपमा)

२- कमल के समान चंचला नेत्र वाली व्याकुल हो ऊंचे स्वर से रो रो कहने लगी ..... और बिछुरी हुई हरनी के समान चारों ओर देखने लगी- (पृ० ९)

३- वह कहते ही पृथ्वी पर गिर पड़ी जैसे कोई फूलीं-फली लता पेड़ पर से गिर पड़े- (पृ० ८)

४- चन्द्रावती के मुंह कि जो वन में रहने से भोर के चन्द्रमा सा मलीन हुआ होगा- देखोगी- (पृ० १५)

५- मुनि मन के वेग समान वहां से चले - (पृ० १९)

६- बछरू बिन गाय की भांति प्राण समान पुत्र को कभी न तजती हूं - (पृ० ६३)

---

① हिन्दी रीति साहित्य - डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ- १२।

रामचरित में भी उपमा अलंकारों का बाहुल्य है:-

१- सीता सहित आसन पर बैठ सूर्य समान शोभित हुए (पृ॰ ४१)

२- सीता पति को ऐसे भूल जाते हैं जैसे अपने गले का सोना कोई भूल जावे - (पृ॰ ३६)

३- जैसे जोतिस रूप सूर्य से अंधेरा नहीं वैसे ही स्फटिक से निर्मल ज्ञान रूप परमात्मा रघुनायक से अज्ञानता नहीं (पृ॰ ३६)

४- पानी में पानी-सा ब्रह्म माह जीव मिल गया (पृ॰ ३५)

५- राजा दशरथ ऐसे दुखित भए कि जैसे घाव के ऊपर आग ही किसी ने रख दी होए (पृ॰ ७४)

६- इस देह को जैसे सांप केचूल रषता वैसे ही रष्षो (पृ॰ १२९)

७- जैसे आग संग लोहा भी आग बनता है तैसे ही अहंभाव से जीव को यह बुद्धि होती है कि मैं देह हूँ - (पृ॰ १२८)

८- इस प्रकार विभीषण ने बहुत शिषलाया पर जैसे मरनेवाले प्राणी को औषध नहीं भावे वैसे ही बिन बातों पर रावण तनिक भी सावधान नहीं हुआ। (पृ॰ १४७)

९- जैसे वंशी निगलकार मछली पीछे बहुत पछताती है, वैसे ही सीता को लाने से तु भी पीछे पछताओगे। (पृ॰ १४७)

१०- श्री राम ने हाथों समेत रावण के शिर काट डाले वे माथ लोहू लोहू होके विसके तन से धरती पर ऐसे गिरे जैसे आकाश से तालफल खसें (पृ॰ १६८)

ऊपर के उदाहरणों में 'मछली के वंशी में फंसने' की उपमा संस्कृत के श्लोक पर आधारित है। अनुवादक ने संस्कृत के 'विषपिण्ड' शब्द के लिए 'वंशी' शब्द का प्रयोग किया है। 'घाव पर आग रखने' की बात दशरथ के मनोभावों को चित्रित करती है। आग संग लोहा का आग बनने की उपमा से लेखक ने अहंभाव से जीव के 'अहंभावमय' होने की व्याख्या को साकार कर दिया है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त रूपक, उत्प्रेक्षा एवं संदेह आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की स्थिति भी संक्षेप में इस प्रकार है :-

रूपक

१- शिव पहाड़ से निकल राम समुद्र में मील रामायण रूपी यह गंगा तीनों लोक पवित्र करती हैं (पृ॰ ३५)

२- माता पिता स्त्री सुत कुल परिवार ये कैसे हैं कि जैसे नदी में बह बह कर तृण इकठे होते हैं फिर जहां के तहां चले जाते हैं- (पृ॰ ६४)

३- जटायु रावण से कहने लगा - जैसे मंत्र का पवित्र किया हुआ षीर यज्ञ में से कुत्ता ले भागे वैसे ही इस शून्य वन में से त्रिलोकनाथ की भार्या चोराये तू मेरे आगे से कहां जा सकता है (पृ॰ १००)

यद्यपि यह अलंकार 'उपमा' का उदाहरण है, लेकिन यहाँ 'रावण में कुत्ते' का आरोप रूपक अनुभव कराता है।

उत्प्रेक्षा

१- ऐसे सुन्दर लगते थे मानो सब दिशा प्रकाश करते हुए दूसरे चन्द्रमा सूर्य ही आय उगे होंए (पृ० ४९)

२- उस टीले में से ऐसा मैं निकला कि मानो उदयाचल पहाड़ से सूर्य ही उदय लेवे -(पृ० ७३)

संदेह/ भ्रांतिमान

१- अपने मन से सात्विक देह धर माया फयला मनुष्य से लगते हो (पृ० ५७-संदेह)

२- श्रवण मुनि आन पहुंचे जब लगे जल भरने तब भभक-भभक शब्द सुन मैंने जाना कि कोई हाथी पानी पीता है - (पृ० ७४-भ्रांतिमान)

यह स्पष्ट है कि सदल मिश्र ने अपने ग्रंथों में जिन अलंकारों का प्रयोग किया है, वे सार्थक एवं भाषा की सौंदर्य वृद्धि में सहायक हैं। इस दृष्टि से अपने समकालीन लखकों में उनका स्थान विशेष है।

(च) मुहावरे

प्रत्येक भाषा का अपना मुहावरा होता है। मुहावरा भाषा को सजीव बनाता, शैली को निखारता, भावाभिव्यक्ति को स्वाभाविक करता है। मुहावरे से संबंधित व्याकरण के नियम नहीं होते। क्योंकि मुहावरे का निर्माण दिन-प्रतिदिन के भाषा व्यवहार से होता है। मुहावरे का पर्याय संभवत: दूसरी भाषा में नहीं होता। सदल मिश्र ने अपनी अनूदित रचनाओं में मुहावरों का प्रयोग जितनी बहुलता में एवं जिस सार्थकता से किया है, उसके महत्त्व का मूल्यांकन परमावश्यक है।

'पदबंध एवं वाक्य' शीर्षक बारहवें अध्याय में उनके लगभग ढाई-तीन सौ मुहावरो का संग्रह प्रस्तुत किया गया है। लेकिन उनकी संख्या एक-एक मुहावरे के कई रूपों में एवं कई स्थानों पर हुए प्रयोग को सम्मिलित करने पर बहुत अधिक होगी। लेखक की शैली की परीक्षा मात्र उसके द्वारा प्रयुक्त मुहावरों की संख्या पर ही आधारित नहीं होनी चाहिए, वरन् उन मुहावरों के प्रयोग एवं अभिव्यक्ति के औचित्य पर भी आधारित होना जरूरी है। चूँकि शैली की दृष्टि से उनकी विशेषता उनके संदर्भानुकूल चयन में होती है, अत: सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त कुछ महत्त्वपूर्ण मुहावरे संदर्भ सहित प्रस्तुत हैं :-

मुहावरों द्वारा करुण भावात्मक प्रभाव की पुष्टि के उदाहरण :-

१- थोड़े दिन बीते पर जब रघु की पुत्री का क्रोध सब मिट गया, तब पुत्र का ऐसा मोह हुआ कि शोक सागर में डूबी चारों दिशा शून्य वो अंधार ही देखने में आया। (पृ० १२)

२- ऐसे इन्द्र को सुना भीतर आय देखें तो डर से थर थर कांपती हुई दोनों कर जोरे नीचे शिर किए अहिल्या खड़ी है (पृ० ४७)

३- इस वेरिया प्यास से आकुल हो माता पिता मेरी बाट निहारते होंगे (श्रवण कुमार-दशरथ का संदर्भ) (पृ० ७४)

४- मारे डर के मैं सुख गया (पृ० ७४)

५- हे राम! हे रघुनाथ पूरण ब्रह्म होकर तुम ने मुजमें अवतार लिया, तो भी दुख ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा । (पृ० ७७)

६- लगी वह रोने ओ शिर धूनने तब लक्ष्मण जी ने अपने दोनों कानों पर हाथ दिए ओ निपट दुखी हो कहा - (पृ०९९-रास वन-गमन के समय)

७- तब मुजसे रहा न गया आपको ढूंढने के लिए कान मूंद कर तुरन्त मैं वहां से निकला (पृ० १०२)

८- रावण चला जब निकट पहुंचा घुंघरू ओ किंकिनी के झंझनाहट सुन सीता बहुत डर गई ओ नीचे शिर कर राम में ध्यान लगा संभर बैठीं और आंषों में आंशू लगी भरने (पृ० १३४)

९- तब राम लछुमण ने तो निज कपड़े उतार तुरंत चीरों को पहन लिया ओ सीता विसका ढ़ब (ढ़ंग) जानती नहीं, इस्से हाथ में विसे ले संकोच से राम का मुंह लगी निहारने (पृ० ६८)

१०- महाराज, जो यह सत्य है तो अब ही लोग भेज लड़के समेत झट उस को बुला ही लीलिए, क्योंकि अब मारे शोक के छाती फटती है। (पृ० १५- चन्द्रावती की माँ का विलाप)

मुहावरों के विषय में एक रोचक तथ्य यह है कि स्त्री वर्ग से उनका विशेष संबंध है। स्त्रियाँ मुहावरों का प्रयोग अधिक करती हैं। उनके क्रोध,करुणा, ईर्ष्या, लोभ आदि मनोभावों के चित्रण के लिए लेखक ने उनकी उक्तियों में यथास्थान मुहावरेदार भाषा की सृष्टि की है :-

१- एक दिन विपति की मारी हुई, सहेलियों के साथ मैं गंगा नहाने को गई (चन्द्रावती) (पृ० १३)

२- थोड़े दिन बीते जहां-तहां यह बात कानाकानी होने लगी। (चन्द्रावती-पृ० १३)

३- देखो यह कर्म्म का खेल, कहां इहां नाना भांति भोग विलास में वो फूलन्ह के बिछौने पर सुख से रात दिन जिसमें बीतते थे, सो अब जंगल में कन्दमूल खा कांटे कुश पर सो कर स्यारों के चहुंदिश डरावन शब्द सुनि कैसे विपति को काटती होगी (पृ० १५- चन्द्रावती की माँ)

इस संदर्भ में कैकेयी-मंथरा के प्रसंग के जो वाक्य मुहावरों से भरे पड़े हैं, वे उद्धृत हैं :-(पृ० ५८)

४- मंथरा, तब बहुत चकित हो लगी धाय से पूछने- अरे दायी-सुन तो आज क्या है कि नगर में बड़ी धूम-धाम हो रही है ओ अति हर्षित हो कौशिल्या किस लिए ब्राह्मणों को कपड़े रुपैया लुटावती हैं, इसका भेद तू मुझे समझाकर कह जो मेरे मन का सन्देह जाये।

५- बोली कल्ह राम को राज तिलक होगा इस कारण सिगरे नगर का सिंगार होता है ओ मारे आनन्द के लोग उछलते फिरते हैं। सुनते ही मंथरा उदास हो कैकेयी से कहने लगी --

६- ऐ दैमारी, क्या निश्चिन्त हो सो रही हो, उठो बड़ा कुयोग आ लगा, तुम सदा रूप ही के घमंड में रहती हो, कुछ आगापीछा नहीं शोसती हो।

७- कैकयी की बातें सुन मंथरा मुंह फुलाय लगी कहने-सुनो रानी मुजे यिह (अच्छा) अछा नहीं लगता है राजा दशरथ झूठ-मूठ मीठी-मीठी बातें कह ऊपर से तुम्हें ऐसा प्यार करते हैं--

सूर्पणखा के वाक्य :-

८- सूर्पणखा लगी कहने कि सीता लछुमण को संग लिए सगरे दण्डकारण्य निर्भय करते हुए रामचन्द्र ने गोदावरी तीर आ डेरा लिया है तिन्हीं के लगावने से विनके भाई ने यह मेरा गंजन किया है जो तुम्हें अपने कुल की लाज है ओ वीर हो तो अभी जा विन दुष्टों को मारो मैं उनका लोहू पीऊंगी

ओ विन दोनों को खाऊंगी।

मनोदशा के चित्रण से संबंधित कुछ मुहावरों का प्रयोग दर्शनीय है :-

बेचैनी :-

१- रावण घर के भीतर जा पलंग पर लेट रहा। विस रात मारे अकुलाहट के विसकी आंषों में तनिक नींद नहीं आयी- (पृ० ९५)

२- इतनी यम की बातें सुन नासिकेत ने कहा दीन दयाल! अपनी भूल कहां तक मैं आपको सुनाऊं। जब कुमति आ घेरती है, तब कैसहू ज्ञानी होय, ज्ञान ठिकाने नहीं रहता। एक तो पहिले ही आज्ञा में चूके थे, फिर ज्ञान की चर्चा में ढ़िठाई कर पिता को बराबर जा उत्तर दिया। (चन्द्रवती-पृ० १८)

क्रोध की दशा के चित्रण में भी मुहावरों का प्रयोग किया गया है :-

१- बाली ने आगे किया था सो यह है कि मायासुर का बेटा मायावी नाम एक महा अहंकारी दानव था, वह पराक्रम के मद से मात कर एक दिन किष्किंधा नाम नगरी के समीप गया ओ सिंह सा गर्ज गर्ज बाली को बाहरे ही से लगा ललकारने कि जो तू वीर है, तो आ मुझसे लड़। तब बाली से सहा नहीं गया, तो मारे क्रोध के लाल लाल आंषें कर तुरंत पास जा पहुंचा। (पृ० ११०)

२- दुंदुभी नाम महा बली रात को आया ओ युद्ध के लिए बाली को पुकारा (पृ० १११)

३- रावण की सेना देखते ही कूदते-फांदते ओ गर्जते हुए लंका पर चढ़ दौड़े-लोहू मांस का वहां चहला हो गया।

४- लक्ष्मण ने ओ वानर के नायकों ने मान कर चूर्ण कर डाला (पृ० १५६)

५- रावण मारे क्रोध के ऐसे जल गया जैसे उष्ण घृत में पानी पड़े। निदान दांत पीसकर कालनेमी से कहने लगा - (पृ० १५८)

(छ) अर्थ संबंधी असमर्थताएँ

अर्थमूलक शैलीय उपकरणों के संबंध में सदल मिश्र ग्रंथावली में प्राप्त विशेषताओं की चर्चा के बाद उन प्रसंगों का भी उल्लेख करना युक्ति संगत होगा, जहाँ शब्दों के प्रयोग उपयुक्त रूप में नहीं किये गये हैं और इस कारण अर्थ व्यंजना में असमर्थताएँ आयी हैं। ऐसे प्रसंग ग्राम्य शब्दों के प्रयोग की स्थिति में अधिक हैं। संभवत: मिश्र जी ने पुनरुक्ति दोष से बचने या सहज भाषा के प्रयोग के प्रयास में ग्राम्य शब्दों को प्रयोग किया है। 'शपथ' के साथ 'किरिया', मनुष्य के साथ 'मानुष' (पृ० ६४) आचार्यीवृत्ति के साथ जजमनिका (पृ० ५७) गोद के साथ 'गोदी', पुत्र के साथ 'लड़का' (पृ० ९३) सकल के साथ 'सिगरे' (पृ० ३३) का प्रयोग सामान्य जन के लिए अर्थ समझने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त शब्दों के प्रयोग में उनके अप्रयुक्तत्व, अवाचकत्व एवं अश्लीलत्व संबंधी दोषों के उदाहरण भी हैं :-

१- उनका यह वचन सुनते ही ब्रह्मा वहां से 'गुप्त' हो गये (पृ० ७)

यहाँ 'गुप्त' शब्द के स्थान पर उपयुक्त शब्द 'अन्तर्धान' होगा। अत: अप्रयुक्तत्व दोष है। इसी

प्रकार ग्राम्य एवं अप्रयुक्तत्व दोष का उदाहरण है:-

२- उद्दालक मुनि योग्य पुत्र पा कृतार्थ हो अपनी क्रिया में सावधान हो गए।

यहाँ क्रिया के स्थान पर 'पूजा या तपस्या' तथा सावधान के स्थान पर तत्पर होना चाहिए था।

३- नगर के लोग अरु श्रेष्ठ श्रेष्ठ वेश्याएँ सब वशिष्ठ मुनि की आज्ञा पा विचली डेवढ़ी में आन पहुंचे (पृ० ६१) यह राम के राज जिलक का प्रसंग है। उत्सव में 'नर्तकियाँ' आयी होंगी, न कि वेश्याएँ। अत: यहाँ 'वेश्याएँ' प्रयोग में अवाचकत्व दोष है।

नीचे लिखे वाक्य में अश्लीलत्व दोष है-

रोती पीटती हुई दानवन की रंडियां कोठों की छतों पर चढ़-चढ़ ऐसी शोभने लगीं जैसे देवताओं की स्त्रियां हों। (पृ० १४२)

यह स्पष्ट नहीं होता कि मूल संस्कृत ग्रंथ के 'दैत्य योषित:' शब्द के लिए 'दानवों की स्त्रियों' के बदले दानवन की रंडियों शब्द का प्रयोग कैसे किया गया। 'गद्य के विविध प्रयोग'

चतुर्थ अध्याय में अंग्रेजों द्वारा प्रयुक्त इस शब्द का उदाहरण दिया गया है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों के बीच संभवत: इस शब्द का प्रयोग 'स्त्री' के अर्थ में होता हो और इसी कारण इस ग्रंथ में भी इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया गया हो। जो भी हो, इसमें अश्लीलत्व दोष है।

(३) वाक्यात्मक शैलीय उपकरण

"वाक्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन तीन स्तरों पर किया जा सकता है। शब्द भेदात्मक,रचनात्मक और बंधात्मक। शब्द भेदों के स्तर पर संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय एवं निपात की अभिव्यंजकता का मूल्यांकन होता है। वाक्य-रचना के स्तर पर शब्द क्रम और अनियति की शैलीगत विशेषता का अध्ययन होता है। वाक्यबंध के स्तर पर वाक्यों के संगठित समूहों से प्रकट होनेवाली अभिव्यंजक विशेषताओं की खोजबीन की जाती है।"①

जहाँ तक शब्द भेदों का संबंध है संज्ञा,सर्वनाम, क्रिया एवं क्रिया विशेषण रूपों पर विचार करते समय व्याकरणिक अध्ययन तथा पदबंध से संबंधित अध्यायों में उनके अर्थगत मूल्यों पर यत्र-तत्र विचार किया गया है। अत: इस स्थान पर हम शोध ग्रंथ के संक्षेपण के लिए संज्ञा, सर्वनाम एवं क्रिया आदि के प्रयोग के अर्थगत महत्त्व पर विचर कर सिर्फ विशेषण एवं निपात की अभिव्यंजकता पर विचार करेंगे।

विशेषण

"विशेषण से विशेष्य की विशेषता का ज्ञान होता है। इन विशेषणों से अभिव्यंजना में शैलीय सौंदर्य की निष्पत्ति होती है। प्रसंगापेक्षित विशेषण के प्रयोग से विशेष्य के सौंदर्य का प्रकाशन तथा अभिवृद्धि दोनों होते हैं। आचार्य कुंतक के अनुसार जहाँ विशेषण के प्रभाव से कारक या क्रिया का सौंदर्य

---

① शैलीविज्ञान और प्रेमचन्द की भाषा - डॉ० सुरेश कुमार, पृष्ठ- १२५

स्फुटित होता है, वहाँ विशेषणवक्रता होती है।''①

सदल मिश्र ग्रंथावली में विशेषणवक्रता के उदाहरणों का बाहुल्य है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:-

(क) विशेष्य के गुणों के प्रकाशन के लिए प्रयुक्त-

सब के संहार करनिहार दूत सहित यमराज, पुण्य पाप लिखने वाले चित्रगुप्त (पृ० १९)

(ख) व्यंग्योक्ति के रूप में प्रयुक्त --

प्राण प्यारी कैकेयी ही से जो आप बहुत प्रसन्न हैं तो विन्हीं को सब राज पाट दे डालते (पृ० ७४)

यहाँ 'प्राण प्यारी' विशेषण में अभिव्यंजकता है, क्योंकि दशरथ के प्राण कैकेयी के कारण ही जाते हैं।

अतिशय भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त-

भरत ने उत्तर दिया -महाराज मुजको इस्से क्या काम, महाराजाधिराज रामचन्द्र हैं मैं तो विनका दास हूं। (पृ० ७९)

यहाँ उक्त विशेषण से भगवान् राम में भरत की भक्ति अभिव्यंजित है।

वातावरण को सजीवता प्रदान करने के लिए प्रयुक्त-

(क) सूर्पणखा कहती है -''परम सोहावन एवं एकान्त वन है, वहां मेरे साथ चलकर मुजसे विहार करो।'' (पृ० ९३)

यहाँ लेखक ने सूर्पणखा की कामुकता के लिए ''परम सोहावन एवं एकान्त'' विशेषण का प्रयोग उद्दीपन विभाव के रूप में किया है, अत: यहाँ विशेषणवक्रता दृष्टिगत होती है।

(ख) मैं रावण की बड़ी दुलारी बहन हूँ (पृ० ९३) यहाँ बड़ी दुलारी में व्यंग्य है कि यदि राम सहमत नहीं होते तो रावण अपनी बहन की ओर से युद्ध ठानेगा।

(ग) कितने एक दिन के बीते शुक के घर पर एक दिन अगस्त्य मुनि आ निकले। (पृ० १५३)

यहाँ कितने एक परिमाण बोधक विशेषण से अवधि की अभिव्यंजना होती है।

निपात

सदल मिश्र ग्रंथावली में निपातों के प्रयोग से अभिव्यंजकता की निष्पत्ति के अनेक स्थल मिलते हैं। निपातवक्रता में रसोत्कर्ष के महत्त्व को अनेक विद्वानों ने भी स्वीकारा है।

१- वो वैसा ही मानते हैं (पृ० ९) यहाँ व्यंग्य ही पर केन्द्रित है।

२- इन्धन के लिए वहां जा निकले दूर ही से उसका रोना सुन पड़ा (पृ० ९)

---

① शैलीविज्ञान और प्रेमचन्द की भाषा - डॉ० सुरेश कुमार, पृष्ठ १४।

यहाँ 'ही' का प्रयोग 'ध्यानाकर्षण' पर बलात्मकता की अभिव्यंजना है।

३- महात्मा लोग आदर मान ही से संतुष्ट होते हैं (पृ० १५)

४- तब तक [illegible] ही पर शोऊंगा (पृ० ७१)

यहाँ 'ही' निपात से क्रमश: मात्रता एवं प्रतिज्ञा में दृढ़ता की अभिव्यंजना होती है।

५- भरत गुह से कहते हैं :- ऐ भैया रामचन्द्र के साथ तुम ही यहाँ रहे थे (पृ० ७९)

यहाँ 'ही' निपात से भरत की प्रसन्नता अभिव्यंजित होती है।

६- लड़ाई में ऐसे निपुण हैं कि अभी पहार से भी होवे तो उनसे भी युद्ध करें। (पृ० १२२)

यहाँ 'भी' निपात के प्रयोग से दूसरे पक्ष के बल की अधिकता की अभिव्यंजना होती है।

शब्दक्रम

पदबंध एवं वाक्य-विन्यास के प्रसंग में भी शब्दक्रम पर वाक्य-गठन की दृष्टि से संक्षेप में विचार किया गया है, लेकिन इससे अर्थ के प्रभावित होने की बात पर विचार करना अधिक महत्त्वपूर्ण है। "लेखक शैली सौंदर्य की निष्पत्ति के लिए शब्दक्रम में परिवर्तन ला देता है। इस प्रकार शब्दक्रम केवल अर्थ को ही प्रभावित नहीं करता, उसका शैलीय पक्ष भी होता है।"①

"किसी भाषा का पदक्रम न तो बिलकुल निश्चित होता है और न पूर्णत: स्वतंत्र। पदक्रम का निर्धारण केवल व्याकरण नहीं, मनोविज्ञान भी हुआ करता है और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से प्रेरित होकर पदक्रम में परिवर्तन करना पड़ जाता है। वस्तुत: व्याकरण के नियम भी मूलत: मनोविज्ञान से ही निर्मित होते हैं।"②

पदक्रम में सर्वाधिक ध्यान कर्ता, कर्म और क्रिया पर देना होता है। अंग्रेजी एवं हिन्दी में पदक्रम का बंधन है, लेकिन संस्कृत में इसका कोई कठोर बंधन नहीं है।

हिन्दी में उद्देश्य के स्थान पर विधेय एवं विधेय के स्थान पर उद्देश्य के क्रम विपर्यय से अर्थ का अनर्थ हो जाता है जैसे --

"छिपकली मक्खी खाती है" क्रम विपर्यय के बाद "मक्खी छिपकली खाती है" हो जायगा। लेकिन जहाँ कारक विभक्ति का योग रहता है, वहाँ क्रम विपर्यय से बलात्मकता का बोध होता है और अर्थ-विपर्यय नहीं होता।

सदल मिश्र ग्रंथावली में पदक्रम के विपर्यय के जो उदाहरण मिलते हैं, उनमें विपर्ययस्त पदों पर बलात्मकता देना ही लेखक का लक्ष्य है।

१- यह देव चरित्र मैं ने कुछ नहीं जाना (पृ० १५)

---

① शैलीविज्ञान और प्रेमचन्द की भाषा - डॉ० सुरेश कुमार, पृष्ठ -१६३।

② भाषा विज्ञान की भूमिका - डा० देवेन्द्र नाथ मिश्र, पृष्ठ -२५८।

२- आप निश्चिन्त हो यहां विराजिए, कन्या मंगा आपको मैं दूंगा (पृ. १५)

३- ये जितने काज हैं, सो सब मैं ने ही किए हैं (पृ. ३७)

यहाँ देव चरित्र 'मैं' एवं 'मैं ने' विपर्ययस्त पदों की अभिव्यंजना पर ही बल दिया गया है।

आदेश एवं शोक की अभिव्यंजना के लिए पद-विपर्यय का सफल प्रयोग मिलता है :-

१- यह परम गुप्त ज्ञान ...... मेरी भक्ति से विमुख लोगन को मत बताइयो (आदेश) (पृ. ३८)

२- मंदोदरी छाती पीट-पीट लगी (रोने-शोक) (पृ. १७०)

सदल मिश्र ग्रंथावली के पहले वाक्य में ही बलात्मकता के लिए विपर्ययस्त पदबंध मिलता है-

"चित्र-विचित्र सुन्दर-सुन्दर बड़ी-बड़ी अटारिन से इन्द्रपुरी समान शोभायमान नगर कलकत्ता पदबंध को 'महाप्रतापी वीर नृपति कम्पनी महाराज के' पदबंध के बाद आना चाहिए, लेकिन 'नगर कलकता' पर बल देने के लिए इस पदबंध को आरंभ में ही रखा गया। जहाँ पदबंध के पदों के विपर्यस्त होने के अर्थ में त्रुटि आ गयी है, ऐसे प्रयोग के उदाहरण अधिक नहीं मिलते, लेकिन जो दो-एक मिले हैं, उनमें से एक उद्धृत है :-

एक दिन विपति की मारी हुई सहेलियों के साथ मैं गंगा नहाने को गई (पृ. १३)

लेखक के उद्देश्य के अनुसार "विपति की मारी हुई मैं" होना चाहिए था, लेकिन 'विपत की मारी हुई सहेलियों के साथ' से अर्थ में त्रुटि आ रही है। अत: पदक्रम लेखक के लिए पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता होती है।

गद्य रचना के आरंभ काल में ऐसी विसंगतियाँ सामान्य थीं, लेकिन सदल मिश्र की लेखनी से ऐसी भूलें न्यूनतम हुई हैं।

लोकोक्ति एवं अन्योक्ति

लोकोक्ति और सूक्ति वाक्य के स्तर पर उपलब्ध शैलीगत उपकरण हैं। पूर्ण व्यंजना के लिए इनका प्रभाव संदर्भगत होता है। वक्ता इसके द्वारा अपने कथन को 'मुद्रांकित' कर उसे अतिरिक्त बल प्रदान करता है।

सदल मिश्र ग्रंथावली के एक अनूदित ग्रंथ होने के नाते इसमें लोकोक्तियों एवं सूक्तियों के प्रयोग के अवसर बहुत कम हैं, फिर भी लोकोक्तियों का यथास्थान प्रयोग कथ्य को बलवान् एवं अभिव्यंजनापूर्ण बनाता है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :-

१- राजा बोले कि माता-पिता से प्राणी का जन्म ही तो होता है। और सुख-दुख जो पूछो तो जब जैसा तब तैसा क्या राजा क्या प्रजा, सबही छोटे बड़े को होता है। (पृ. १५)

२- ये नव प्रकार के भक्ति साधन क्या स्त्री क्या पुरुष क्या नीच से भी नीच को हैं, किसी को वह भक्ति होती है कि जिसके होते ही अनुभव ज्ञान या किसी जन्म में प्रार्थी मुक्त हो जाता है।

संस्कृत श्लोकों के अनुवाद की कुछ पंक्तियाँ रामचरित मानस की 'सूक्ति-चौपाइयों' से तुलनीय

हैं :-

१- रामचन्द्र बोले - सच है पर धर्म का मैं रक्षक हूँ इस कारण धनुष वाण लिए फिरता हूं ओ जहां कहीं अधर्मी प्राणी को पाता हूं उसे ओंही मारकर अपने धर्म को पालता हूं। मेरे जानने में बेटी बहन पतोहू ओ भाई की भार्या ये चारों समान हैं। जो इनको कुदृष्टि से देखता है, वह महापापी है विसे राजा लोग विन मारे कभी नहीं छोड़ते। (अनुज वधू भगिनी सुत नारी, सुनु सठ कन्या सम ये चारी)

२- कैकेयी की इतनी बातें सुन अति दुख पा मुंह फुलाय मंथरा लगी कहने सुनों रानी मुजको यिह अच्छा अच्छा नहीं लगता है कि राजा दशरथ कामवश ही झूठ मूठ मीठी-मीठी बातें कह ऊपर से तो ऐसा तुम्हें प्यार करते हैं कि जिसमें निदान दुख भरा है अरु भीतर से जिसमें कौशल्या का भला होय सोई कार्य करते हैं, कै भरत मुझे क्या लौंडी छोड़ मैं रानी थोड़े ही हूंगी- (चेरी छोड़ न होखब रानी) (पृ० ५८)·

३- महादेव कहते हैं- देषो पारवती कैसा ही कोई गुणवान दयालु होय ओ सकल विद्या पढ़ नीति ही पर चले तो भी दुष्टन के संग पाय वे भी बिगड़ जाते हैं। (पृ० ५९)

वाक्यबंध

कहावतों एवं सूक्तियों के अतिरिक्त वाक्यबधों पर भी संक्षेप में विचार करना आवश्यक है। वाक्यबंध के अन्तर्गत अनुच्छेद एवं गीत आते हैं। वाक्यबंध के वाक्यों का एक दूसरे के साथ भी संबंध होता है तथा कुल मिलाकर भी उनमें एक समग्रता पायी जाती है। यह समग्रता ही प्रधान वस्तु है।

सदल मिश्र ग्रंथावली में संगृहीत 'चन्द्रावती' एक सम्पादित पुस्तक है, अतः उसमें अनुच्छेदों की व्यवस्था है, लेकिन दूसरी पुस्तक 'रामचरित' में पांडुलिपि की प्रतिलिपि होने के कारण अनुच्छेद जैसी कोई व्यवस्था प्रत्यक्षतः नहीं है। किन्तु यत्र-तत्र करुणा, क्रोध, उत्साह एवं वैराग्य से संबंधित भावों की अभिव्यक्ति तथा वर्णनात्मक प्रसंगों में अनुच्छेदों का आभास मिलता है। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :-

१- **करुणा** - "ऐसे कहते हुए वहां से तुरन्त हर्षित हो उठे! वो भीतर जा मुनि ने जो आश्चर्य बात कही थी से पहिले रानी को सब सुनाई। वह भी मोह से व्याकुल हो पुकार-पुकार रोने लगी वो गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कहने लगी कि महाराज! जो यह सत्य है तो अब ही लोग भेज लड़के समेत झट उसको बुला ही लीजिए, क्योंकि मारे शोक के मेरी छाती फटती है। कब मैं सुन्दर बाल सहित चन्द्रावती के मुंह, कि जो वन में रहने से भोर के चन्द्रमा सा मलीन हुआ होगा, देखोगी। देखो यह कर्म का खेल, कहाँ इहां नाना भाँति भोगविलास में फूलन्ह के बिछौने पर सुख के रात-दिन जिसके बीतते थे, सो अब जंगल में कन्द मूल खा, कांटे कुश पर सो कर स्यारों का चहुंदिशि डरावन शब्द सुनि कैसे विपत्ति को काटती होगी।" (पृ० १५)

२- **वैराग्य** - ये तो माया के रचे हुए तृण समान हैं, क्षण में बिला जाते हैं ओ इसी प्रकार मेघ में बिजली सा भोग भी निपट चंचल है, ज्ञानी लोग कभी न इसे चाहते, कितना दिन संसार में रहना है, आयुर्वल तो तावे पर पानी को बुंद सा क्षण का होता जाता है, जिस पर भी जैसे सांप के मुंह में फंसा हुआ मेढ़क दंशों को निगलाने चाहता है, वैसे ही कालरूप जो सर्प विससे ग्रस्त हो विसके लिए दिन रात के दुखदायक काम उठाते हैं, जो यह देह किसी प्रकार अपनी नहीं तो यह क्या कोई भोग करेगा।

माता-पिता स्त्री सुत कुल परिवार ये कैसे हैं कि जैसे नदी में वह वह कर तृण इकट्ठे होते हैं फिर जहां के तहां चले जाते हैं जो लक्ष्मी तार की छांह सा निपट चंचल अध्रुव स्त्रीन से विलास स्वप्न समान हैं।'' (पृ० ६४)

३- **उत्साह**- (वर्णात्मक सहित) हनुमान हाथ जोड़ कहने लगे कि त्रिकूट गिरि के शिखर पर अति मनोहर लंका नगर बसता है ओ सुवर्ण ही का बड़ा ऊंचा सा विसका घेरा है निर्मल जल से भरी हुई वो महा अगम्य चहुंदिशि उस पुरी की खाई है ओ नाना बावलीन से वन उपवन की शोभा से ऐसा नगर सोहावन हो रहा है जिसका वर्णन मुजसे नहीं किया जाता ओ मणिन के खंभन से अति अद्‌भुत कांचने ही के वहां सम घर हैं .... वीरन से यद्यपि लंका भर रही है, यहां तक कि क्या सामर्थ्य है जो इन्द्र वरुण ये सभी वहां जाके कुछ ढ़िठाई करें तब भी रावण की चौथाई सेना हम मार आए हैं सो सारी लंका जला भस्म कर दिया ओ सुवर्ण के बड़े बड़े मन्दिर औ अनेक अस्त्र इन सब को तोड़ डाला। यह सब काज आपकी प्रताप से हम कर आये हैं।'' (पृ० १४५)

४- **क्रोध**-''रावण तनिक भी सावधान न हुआ ओ कालवश ही विभीषण से कहने लगा - 'रे दुष्ट मैं ने तुझे नाना पदार्थ खिला पिला कर एत्ता बड़ा किया ओ सदा तेरी भलाई में रति हूं तब भी तू मेरी बुराई चाहता है। तू भाई नहीं निःसन्देह मेरा शत्रु है तुजसा कृतघ्न किसी को आज तक नहीं देखा तेरे साथ रहना मुझे उचित नहीं है देषो जातिन का विनाश सदा जामि चाहते हैं जो दूसरा कोई मेरे आगे ऐसा वचन बोलता तो उसी क्षण मैं वुसका शिर काट डालता, धिक्कार है, तुजे राक्षसों के कुल में तू अधम उत्पन्न हुआ।'' (पृ० १४८)

ऊपर के इन उक्ति-संदर्भों तथा विवरणों में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि सदल मिश्र की रचनाओं में भले ही आधुनिक युग के भाषागत एवं साहित्यिक तत्त्वों का उभरा हुआ चित्र परिलक्षित नहीं होता हो, लेकिन खड़ीबोली गद्य में स्वीकार की जानेवाली नवीनतम प्रवृत्तियों की रेखाएँ स्पष्ट हैं। ऊपर उनकी अनूदित रचनाओं के भाषाशास्त्रीय पद्धति पर आधारित अध्ययन से यह अनुमानित होता है कि उनकी गद्य, लय, अनुप्रास एवं आलंकारिकता के पुट की प्रवृत्ति उन्हें संस्कृत साहित्य एवं रीतिकाल की काव्यात्मक वैशिष्ट्य खड़ीबोली को आधुनिकतम वेशभूषा से सुसज्जित करने की उनकी आतुरता को बताता है। पर्यायवाची शब्दों के स्वाभाविक एवं सटीक प्रयोग के साथ तरह-तरह के रंगीन एवं सानुप्रास शब्द-युग्मों एवं नुकीले मुहावरों को नन्हें पाँवों के बल खड़ी हो रही खड़ीबोली में सजाने का नूतन कार्य सदल मिश्र जैसे परिश्रमी एवं विद्वान् लेखक की लेखनी से ही संभव था।

'सदल मिश्र से पूर्व गद्य की स्थिति' एवं 'हिन्दी गद्य के विविध-प्रयोग' शीर्षकों के अन्तर्गत द्वितीय एवं तृतीय अध्यायों में जो अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, उसके आधार पर यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि अठारहवीं शताब्दी में पट्टे-परवानों के रूप में प्राप्त खड़ीबोली गद्य पर राजस्थानी का भरपूर प्रभाव था, साथ ही ब्रजभाषा के प्रभाव के स्पष्ट लक्षण संस्कृत के टीका ग्रंथों की तत्कालीन खड़ीबोली भाषा पर परिलक्षित है। उक्त अवधि में गद्य की एक शैली ऐसी भी चल रही थी, जिस पर फारसी का पक्का रंग था।

उपर्युक्त तीन भाषा-शैलियों -- राजस्थानी गद्य शैली, ब्रजभाषा गद्य शैली एवं उर्दू गद्य शैली -- में से ईस्ट इण्डिया कम्पनी या फोर्ट विलियम कॉलेज से राजस्थानी का संबंध दृढ़ नहीं हो सकता। इसका प्रधान कारण कलकत्ते से राजस्थान की लम्बी दूरी थी। ''राजस्थान का राजनीतिक महत्त्व नगण्य

हो जाने से राजस्थानी गद्य का ह्रास हो जाना अवश्यंभावी कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। जहाँ तक कलकत्ते के नवीन प्रभावों के अन्तर्गत आने का संबंध है, राजस्थान ब्रज प्रदेश की अपेक्षा उससे और भी दूर पड़ता था।'' जहाँ तक ब्रजभाषा का प्रश्न है, ''ईसा की सोलहवीं शताब्दी से ब्रजभाषा का साहित्य में प्रयोग होने लगा था और सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही समस्त हिन्दी प्रदेश की साहित्यिक भाषा मान ली गयी।''①

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ब्रजभाषा एवं राजस्थानी गद्य का अन्त होने लगा और इसी के साथ ही खड़ीबोली के क्रमबद्ध इतिहास का प्रारंभ हुआ। कुछ विद्वानों द्वारा खड़ीबोली गद्य के प्रारंभिक लेखकों में इंशा अल्ला खाँ को उनकी 'रानी केतकी की कहानी' के कारण उनके सामयिक लल्लू लाल और सदल मिश्र से अधिक ऊँचा स्थान दिलाने की बात कही गयी है, जो युक्तिसंगत नहीं लगती। यही कारण है कि शिवदान सिंह चौहान इस हिन्दी गद्य परम्परा के विकास में इंशा अल्ला खाँ को सम्मिलित करना उचित नहीं समझते क्योंकि उर्दू गद्य का विकास परम्परा में ही वस्तुतः उनका स्थान है। इंशा उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे और शाह जहानाबाद (दिल्ली) की उर्दू को भाषा का प्रमाण मानते थे और यद्यपि अपनी रानी केतकी की कहानी (रचनाकाल १७७८ से १८०३) में उन्होंने मौज में आकर भाषा संबंधी एक नया प्रयोग करना चाहा अर्थात् अरबी, फारसी, संस्कृत, ब्रज, अवधी आदि भाषाओं के शब्दों से दामन बचाकर खड़ीबोली में अपनी कहानी कहने का बीड़ा उठाया। लेकिन फिर भी उनकी भाषा पर फारसी ढंग के उर्दू वाक्य-विन्यास का काफी प्रभाव था, जिसमें हिन्दी के कर्ता,कर्म, क्रिया के क्रम में उलट-फेर हो जाता है। रानी केतकी की कहानी की भाषा अपनी प्रवृत्ति से सरल हिन्दी की अपेक्षा सरल उर्दू के अधिक निकट है। " हाँ इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनकी कृति हिन्दी गद्य की विकास लड़ी की एक सुन्दर और चमकती हुई लड़ी है। खड़ीबोली गद्य परम्परा में इंशा का वही स्थान है जो हिन्दी काव्य के आदि काल में अमीर खुसरो का था।''②

श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने अपने मूल्यवान् शोध प्रबंध में अपने विचार इन शब्दों में दिये हैं- ''नेवर द लेस, इन्सपाइट आफ हिज रिजोलूशन्स, इंशा अल्ला खां कुड नाट इस्केप द इन्फ्लूएंस आफ उर्दू मेटाफर्स, सिमिलिज एंड प्रोवर्ब्स, प्रोबेबली फार दिस रीजन, हिज स्टाइल हैज नेवर बिन रिगार्डेड ऐज ऐ माडल'' अर्थात् अपने संकल्पों के बावजूद श्री इंशा अल्ला खाँ उर्दू काव्य-विन्यास के प्रभाव से बच नहीं सके। शायद इसी कारण उनकी भाषा अनुप्रासों, उपमाओं और कहावतों से अधिक बोझिल हो गयी है, उनकी शैली को कभी भी आदर्श नहीं माना गया।③

जहाँ तक सदासुखलाल 'नियाज' की भाषा-शैली का प्रश्न है, उनका 'सुखसागर' भी संस्कृत के पंडिताऊपन के साथ-साथ उर्दू के पर्याप्त प्रभाव से युक्त है। ''हूजिए, बहकाइये,फुसलाइये,'' आदि शब्दों का प्रयोग उन्हें भावी खड़ीबोली के लेखक के रूप में मान्यता देने में झिझक उत्पन्न करता है। इन्हीं कतिपय दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए श्री शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है कि ''इन कतिपय उदाहरणों से हिन्दी गद्य की परम्परा को उन्नीसवी शताब्दी से पहले खींच ले जाना उचित नहीं जान पड़ता।'' उनके अनुसार वस्तुतः हिन्दी गद्य की अखण्ड परम्परा का उन्नीसवी शताब्दी के प्रारंभ से और गद्य साहित्य

① हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - शिवदान सिंह चौहान (पृष्ठ १२)

② हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - शिवदान सिंह चौहान (पृष्ठ २००)

③ डेवलपमेंट आफ हिन्दी प्रोज लिटलेचर - डा॰ श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार (पृष्ठ २७)

(नाटक, उपन्यास, कहानी आदि) का उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही सूत्रपात होता है। यही कारण है कि श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने भी लिखा है कि १२०० से १८०३ के छह सौ वर्षों का दीर्घ समय यथार्थ में हिन्दी के पद्य साहित्य का समय है। इसमें जो कुछ गद्य मिलता भी है, वह भी ऐसा नहीं है कि उसे साहित्य कहा जाय।"① "गद्य में काव्य-रचना का समय तब आता है जब पद्य-रचना कला अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच चुकती है और उसकी अधोगति का आरंभ हो जाता है। यही हाल हिन्दी साहित्य में भी हुआ। १८वीं शताब्दी तक हिन्दी कविता उन्नति के शिखर तक पहुँच चुकी थी। सूर,तुलसी, देव, बिहारी, पद्माकर आदि महाकवियों की अमृतवाणी बंद हो चुकी थी। इसके बाद हिन्दी साहित्य में एक परिवर्तन काल आता है, जैसा कि दो-एक बार प्राय: सभी भाषाओं के साहित्य में होता है। भाषा और साहित्य दोनों में बहुत कुछ रद्दोबदल होती है और लोगों का ध्यान गद्य की ओर झुकता है और तत्कालीन गद्य का ढंग बदलता है। यही समय हिन्दी साहित्य में सन् १८०३ के लगभग शुरू हुआ था।"

अत: हिन्दी गद्य में आधुनिक काल के विषय में 'हिन्दी कहानी साहित्य : एक दृष्टि' शीर्षक लेख में डॉ० शिवनन्दन प्रसाद ने लिखा है- ②"आधुनिक काल में प्रेमसागर (लल्लू लाल), नासिकेतोपाख्यान (सदल मिश्र), रानी केतकी की कहानी (इंशा अल्ल खाँ) प्रभृति प्रयासों ने आज की कहानी की पीठिका प्रस्तुत की है।" लेकिन जहाँ तक तक खड़ीबोली गद्य का प्रश्न है, लल्लू लाल (१८०३) और सदल मिश्र (१८०३) संभवत: प्रथम भारतीय हैं जो इस शब्द का प्रयोग प्रथम बार नागरी लिपि में करते हैं। दोनों के ग्रंथों (प्रेमसागर तथा नासिकेतोपाख्यान, रामचरित) की भूमिका में 'खड़ीबोली' शब्द मिलता है। इनके साथ हम ईसाई मिशनिरियों द्वारा बाइबिल के अनूदित ग्रंथों की भाषा पर भी विचार कर सकते हैं। इन अनुवादकों की भाषा के बारे में सबसे बड़ी मौके की बात यह है कि उन्होंने लल्लूलाल और सदासुखलाल की भाषा को आदर्श माना। इनमें उर्दूपन और अरबी-फारसी के शब्दों का यथासंभव प्रयोग होता गया। धीरे-धीरे उन्होंने समझा कि उर्दू यहाँ की भाषा नहीं है। जिस भाषा में साधारण हिन्दू जनता अपने कथा पुराण कहती-सुनती थी उसी भाषा का प्रयोग उन्होंने उपयोगी समझा। यहाँ तक कि ईसाई अनुवादकों ने अपनी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों को कम करना शुरू किया और वे उनके स्थान में ठेठ ग्रामीण शब्दों तक का व्यवहार करने लगे। उनकी भाषा-शैली में 'तक' की जगह 'लौ' का प्रयोग अवश्य हुआ, लेकिन उनकी भाषा पर ब्रजभाषा का रंग उतना अधिक नहीं चढ़ पाया जितना कि लल्लूलाल की भाषा में था। वे आय-आय, समझाय-समझाय आदि के स्थानों पर बराबर आके, जाके, समझाके लिखते रहे। लेकिन सबके बावजूद वे विदेशी थे। भाषा के निर्माण में साधनों की सुविधा जुटाने में उनका योगदान उल्लेखनीय रहा, परन्तु वे अपने अनुवादों की भाषा को संशोधित कराने के लिए इस देश के विद्वानों के मुहताज रहते थे। श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने जो विचार प्रकट किया है, उसका आशय है कि "ऐसा प्रतीत होता है कि मिशनरियों ने जिन पाठ्य-पुस्तकों की रचना की उनका संशोधन इस देश के उन विद्वानों ने किया, जो सरकार के संरक्षण में शैली को उन्नत कर रहे थे।"③ यह स्पष्ट है कि श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार का आशय फोर्ट विलियम कॉलेज में सरकारी संरक्षण में भाषा-कार्य कर रहे थे लल्लू जी लाल कवि एवं सदल मिश्र से है। श्री लल्लू जी लाल की 'प्रेमसागरी भाषा' के लक्ष्य एवं शैली पर विचार करते हुए फोर्ट विलियम कॉलेज में रचित साहित्य के अधिकारी

---

① राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह अभिनंदन ग्रन्थ (खण्ड ६- पृष्ठ १७)

② मानक हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण - डा० माताबदल जायसवाल पृष्ठ १२४

③ डेवलपमेंट आफ हिन्दी प्रोज लिटलेचर - डा० श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार (पृष्ठ १२०)

विद्वान् डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है-- "लल्लू लाल का यह ग्रंथ न केवल कृष्ण की कथा के माध्यम द्वारा विद्यार्थियों को हिन्दू आचार-विचारों से परिचित कराने की दृष्टि से, वरन् भाषा की दृष्टि से भी प्रधानत: कॉलेज के हिन्दुस्तानी भाषा के विद्यार्थियों के लाभार्थ था। इससे अधिक प्रेमसागरी भाषा का कोई विशेष महत्त्व नहीं था। उसकी रचना एक विशेष दृष्टिकोण से हुई थी।"① उन्होंने अपने ग्रंथ में प्रेमसागर से लम्बे उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहा है- "लल्लू लाल की भाषा और शैली पर उनके व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव पड़ा है। आगरा निवासी होने के कारण ब्रजभाषा का प्रभाव, और कवि होने के नाते कवित्व से न बचा सके। उन्होंने 'चढ़कर के' स्थान पर 'चढ़', आवाज के स्थान पर 'सुर' 'आ मिली' के स्थान पर 'आनि मिली' आदि का प्रयोग किया है। सच तो यह है कि इस प्रकार के प्रयोगों से उनकी भाषा में ब्रजभाषा का माधुर्य आ गया है। यद्यपि लल्लू लाल ने खड़ीबोली में लिखने की प्रतिज्ञा कर अपनी लेखनी चलायी थी, तो भी उनकी भाषा ब्रजभाषा रंजित होने से नहीं बच पायी, जैसे -- छोड़ियो,जाइयो, सांझ, आय, तिनके, हरे, समझाय, बुझाय, चरुआ, अऊत, धरा, चरावन, पै, जाके, प्रसन्नता भई, व्याहनजोग, जेवरी, लीजो, दीजो, अबकी बेर, जेवन, चरपरे, हाल उठे, धाम, माटी की गौर बनाय, मूंड फिकार आदि अनेक ब्रजभाषा शब्दों का प्रयोग हुआ है। वैसे ही सामान्यत: शब्दों के अनिश्चित रूप उनकी भाषा में भरे हुए हैं -पि रथी, पृथ्वी, प्रथिवी, प्रथी, पृथी,पृथ्वी, गर्भ, गरभ, सर्प, सरप,कर्म,करम, मुझ, मुज, मुझे, पतिब्रता पतिब्रता, हस्तिनापुर, हस्तनापुर, योतिषी, ज्योतिषियों महाभारत, महाभारथ, औतार, अवतार, श्राप, सराप, आदि।" रावण को वध किया, तुम्हारे गये से, हमारे आये से, जैसे प्रयोग तथा 'सो' जो है महाराज, इतना कह आगे, आदि कथावाचक पंडितों द्वारा प्रयुक्त शब्द और वाक्यांश भी हैं। प्रेमसागर में भाषा की सजावट भी पूरी है। उसके गद्य में तुकबंदी और पद्यानुकूल वाक्य गठन है।

"महाराज! सब गोपी यमुना तीर पर बैठ प्रेम मदमाती हो हरि के चरित्र और गुन गाने लगीं कि प्रीतम! जबसे तुम ब्रज में आए तब से नए नए सुख यहाँ आन कर छाए-लक्ष्मी ने कर तुम्हारे चरण की आस किया है अचल अपके वास! हम गोपी हैं दास तुम्हारी-वेग सुध लीजै दयाकर हमारी। जब से सुन्दर सांवली-सलोनी मूरति है हेरी, तब से हुई बिन मोल की मोती चेरी। तुम्हारे नैनों से हने हैं हिय हमारे-सो प्यारे। किसलिए लेखे नहीं हैं तुम्हारे। जीव जाते हैं हमारे अब करुना कीजै। तजकर कठोरता वेग दर्शन दीजै।" अथवा अब मैं उसको दूं हूं श्राप- वही मीच पावेगा आप, विसके राज में थे हम सुखी, कोई पसु पक्षी भी न था दुखी, अरे तू कौन है अपना बखान कर, जो मारता है बैल को जानकर आदि - प्रेमसागर की भाषा गद्य-पद्य मिश्रित है। लेखक ने बीच-बीच में स्वनिर्मित दाहों-चौपाइयों और अन्य कवियों द्वारा रचित दोहों जैसे -जप माला छापा तिलक ... का प्रयोग किया।" सम्यक् दृष्टि से विचार करने पर 'प्रेमसागर' की भाषा में माधुर्य और सरसता है, काव्याभास है, लेकिन काव्य-रचना में ससंबद्धता नहीं है। प्रत्येक वाक्य अपनी-अपनी ध्वनि अलग-अलग उत्पन्न करता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि लल्लू लाल ने 'प्रेमसागर' की रचना की दृष्टि से नहीं, वरन् पाठ्य-पुस्तक की दृष्टि से की थी। इसलिए उसमे कृत्रिमता, शिथिलता और अव्यावहारिकता का आ जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है।"②

डॉ॰ वार्ष्णेय ने फोर्ट विलियम कॉलेज के दूसरे भाषा पंडित श्री सदल मिश्र की भाषा-शैली के संबंध में जो अपने विचार व्यक्त किये हैं, वे इस प्रकार हैं---"सदल मिश्र की भाषा में ब्रज का माधुर्य

---

① आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डा॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय (पृष्ठ १९२)

② आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डा॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय (पृष्ठ ४०४)

नहीं आ सका जो लल्लू लाल के गद्य में मिलता है। उन्होंने अपने सम्मुख भाषा का कोई विशेष आदर्श न रखा था। उन्होंने स्वतंत्र रीति से गद्य की परिपाटी स्थिर करनी चाही। जहाँ तक हो सका है खड़ीबोली के प्रयोग करने का ही प्रयत्न किया है, परन्तु वे ब्रजभाषा का, जो उस समय साहित्यिक भाषा थी, प्रभाव नहीं बचा सके। ब्रजभाषा के कुछ प्रयोग तो शुद्ध हैं, परन्तु कुछ आरा की भाषा से मिलकर दूसरे रूप में ही परिवर्तित हो गये हैं। 'फूलन्ह के बिछौने', चहुंदिस, सुनि, सोनन्ह, सांची, होय, आय आदि प्रयोग ब्रजभाषा के हैं। आवते, जावते, पुरावते आदि परिवर्तित रूप हैं। ब्रजभाषा तत्कालीन साहित्यिक भाषा थी जिसमें खड़ीबोली अवश्य प्रभावित हुई थी। उन्होंने भाषा की परिधि सीमित बनाने का प्रयत्न नहीं किया। सदल मिश्र की भाषा में पूरबी शब्दों का प्रयोग भी बहुल्य के साथ है। 'स्मरण किए से', 'मतारी' ---- आदि पूरबी शब्द हैं। उनकी सकर्मक क्रियाओं ने उनकी भाषा में कुछ-कुछ पंडिताऊपन भी ला दिया है। वे सकर्मक क्रियाओं के साथ 'को' लगा देते हैं, जैसे- 'सुख को पाते हैं' 'दुख को सहते हैं' आदि --- पंडिताऊपन एक और प्रकार से भी उनकी भाषा में आ गया है। सो, सोई और फिर "है का है" लगाकर उन्होंने कई स्थलों पर वाक्य बनाये हैं। अन्त में भाषा के विषय में हम यह कह सकते हैं कि उनकी भाषा बिल्कुल साफ-सुथरी न होते हुए भी गठीली है। उसमें लल्लू लाल की भाषा की तरह शिथिलता नहीं है। उनके गद्य में गद्य का आनन्द आता है। भाषा में तोड़-मरोड़ नहीं है, वाग्जाल नहीं है।"

श्री सदल मिश्र की भाषा-शैली के संबंध में उन्होंने यह निर्णय दिया है कि "मिश्र जी की शैली सरल तथा सुबोध है। उसमें क्लिष्टता तो नाम मात्र की भी नहीं है। वे छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा अपने भाव प्रकट करते हैं। लल्लू लाल की भाँति लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग करने का उन्हें शौक नहीं। दूसरी बात यह है कि उनकी शैली में अनुप्रास और तुकान्तवाली भाषा का प्रयोग नहीं हुआ। उन्होंने मुहावरों के बड़े सुन्दर प्रयोग किये हैं। साथ ही उन्होंने शब्दों के दुहरे प्रयोग किये हैं, जैसे- हित-मित, काना-कानी, बुहार-सुहार, उथल-पुथल, रोते-कलपते, फूलो-फलो आदि। व्याकरण के संबंध में उनकी बहुत-सी भूलें मिलती हैं। विनती किया, सौ बरस दिन उनको वहां बीत गया, झुठाने नहीं शकता हूं, सब ऋषि लोग अच्छा अच्छा वस्त्र व भूषण पहिरे सेवा में बाधा करने चाहता है आदि । कहीं-कहीं पर क्रियापदों का स्वतंत्र निर्माण भी इन्होंने किया है, जैसे- "अभिलाषा को पुरावेगें" "इतों की बतक -ही" आदि। भाषा संबंधी त्रुटियों के रहने के बावजूद भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सदल मिश्र का गद्य लल्लू लाल के प्रेमसागरी गद्य की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ है। उन्होंने गद्य को बहुत कुछ आधुनिक रूप दिया। 'रामचरित' की भाषा के बारे में डॉ॰ वार्ष्णेय ने कहा है कि लल्लू लाल ने खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों में गद्य रचनाएँ प्रस्तुत कीं। सदल मिश्र का संबंध केवल खड़ीबोली से ही रहा। अनुवाद की भाषा खड़ीबोली है। किन्तु अनुवादक पूर्ण रूप से अरबी-फारसी शब्दों का बहिष्कार नहीं कर सका। उसमें यत्र-तत्र जगह, कुचों-कुचों में आदि विदेशी शब्द मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा, बिहारी, बँगला और अवधी के शब्द और रूप भी बराबर मिलते हैं। कहीं-कहीं 'अधीनताई' जैसे अशुद्ध रूप भी मिल जाते हैं। 'ठहरावने' जमावने, गाड़ी, निपट, निराले, डौल, मलिये, जिन, फिन, चर्चा, चहला, गछ,ठो, एता, तद, जद, विस, गाज, निलंग, वुन्हें, आंगू (आगे), सुर्त, सृजदी, भूआं, लड़कपण, "मुस्कुरा-मुस्कुरा लगी वचन विनसे कहने" "प्रभु की इतनी आज्ञा पाय अति हर्षित हो सीता लगी कहने", "पुकार-पुकार लगी रोने" "अति दुखित हो लगे विलाप करने" आदि शब्द और वाक्य-विन्यास ध्यान देने योग्य हैं। अपने समय की दृष्टि से सदल मिश्र की भाषा सुगठित और काफी साफ-सुथरी है। 'नासिकेतोपाख्यान' की भाषा की अपेक्षा उसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है।" लल्लू लाल, इंशा अल्ला खाँ,

एवं सदल मिश्र के प्रसंग में डॉ० वार्ष्णेय का यह वाक्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है -- "इन तीन लेखकों ने खड़ीबोली की रचनाएँ कीं जिनमें लल्लू लाल और इंशा तो 'छुटपुट' के फेर में पड़े और सदल मिश्र ने बिना किसी प्रतिज्ञा के सामान्य खड़ीबोली में रचना की।"① इसी संदर्भ में भी लल्लू लाल एवं सदल मिश्र की भाषा-शैली पर तटस्थ रूप से विचार करनेवाले विद्वान् श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी के तर्कपूर्ण निष्कर्षों को उद्धृत करना अत्यन्त आवश्यक है। ②श्री द्विवेदी ने गिलक्रिस्त के आदेशानुसार अनूदित ग्रंथों की भाषा-शैली पर जो विचार व्यक्त किये हैं वे इस प्रकार हैं :-

लल्लू लाल

इन्होंने गिलक्रिस्त के आदेश से कुछ ब्रजभाषा मिश्रित खड़ीबोली में प्रेमसागर के नाम से भागवत के दशमस्कंध का अनुवाद किया। इन्होंने भूल से उर्दू को कोई दूसरी ही भाषा समझा और बड़ी सावधानी से अपनी भाषा में विदेशी समझे जानेवाले प्रचलित अरबी-फारसी शब्दों को दूर रखा। इसके अतिरिक्त इनकी शैली में कई प्रकार के दोष मिलते हैं, जो इंशा अल्ला के ग्रंथ में नहीं हैं। (१) मुहावरे कहीं ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते (२) शब्दों और वाक्यों में ऐक्य तथा पारस्परिक संगठन-जिसकी वजह से इंशा का गद्य "अरगन बाजे की कसावट रखता है" - लल्लू लाल के गद्य में नहीं है। (३) भाषा की गति शिथिल मंद है और प्रवाह भी असंबद्ध तथा अस्वाभाविक है। (४) शब्दाडम्बर का सभी जगह प्राधान्य-सा है। अनुप्रास और तुक के लिए लेखक ने भगीरथ प्रयत्न किया है। इससे यह हुआ है कि इनके गद्य को पढ़ते हुए कहीं-कहीं प्राय: पथ्य का-सा आनन्द आता है, परन्तु गद्य की दृष्टि से यह दोष है। यद्यपि यह बात अवश्य है कि लल्लू लाल जी का ग्रंथ अनुवाद ग्रंथ है और इसलिए इस ग्रंथ की भाषा की अच्छी-बुरी सभी विशेषताएँ कुछ अंश तक मूल ग्रंथ की विशेषताएँ समझी जा सकती हैं, पर इसके साथ ही यह भी सबको मानना पड़ेगा कि चूँकि लल्लू लाल जी ने एक विशेष प्रकार के गद्य लेखन की प्रथा चलाने के उद्देश्य से अपना ग्रंथ लिखा था इसलिए उनकी भाषा स्वाभाविक न होकर एक प्रकार से बनावटी हो गयी है। इनकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता उनका विदशी शब्दों का न आने देने का असाधारण प्रयत्न है। वे 'जाकर', 'खाकर' के स्थान पर जाय, खाय, उन्होंने उसके स्थान पर तिन्होंने, तिको लिखते हैं। परवर्ती लेखकों ने लल्लू लाल जी की शैली को तो नहीं अपनाया, पर इनके विदेशी शब्दों के बहिष्कार रूपी सिद्धान्त को बहुत लोगों ने अपनाया और गद्य के विकास में इससे बड़ा विघ्न हुआ। आधुनिक गद्य लेखकों में शुद्धिवादी स्कूल के आचार्य लल्लू लाल जी ही कहे जा सकते हैं। आपने लाल चन्द्रिका नाम की बिहारी सतसई की टीका भी बनायी पर यह कह देना आवश्यक है कि 'प्रेमसागर' की रचना के पहले के लिखे हुए ग्रंथों की भाषा का रूप उर्दू है जिससे कि स्पष्ट है कि वे उर्दू-फारसी के भी अच्छे ज्ञाता थे, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो प्रेमसागर की भाषा में विदेशी शब्दों के बहिष्कार में इन्हें इतनी सफलता न मिलती।

सदल मिश्र

इन्होंने भी कम्पनी के आदेशानुसार 'नासिकेतोपाख्यान' का हिन्दी में अनुवाद किया। पर इनकी

---

① आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय (पृष्ठ ४०८)

② हिन्दी साहित्य का गद्य काल - श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी (पृष्ठ २६)

भाषा लल्लू जी लाल की भाषा से कुछ अधिक प्रौढ़ और परमार्जित है। विचित्रता यह है कि ये तो थे संस्कृत के अच्छे विद्वान्, पर इन्होंने अपनी गद्य की भाषा से प्रचलित विदेशी शब्दों और मुहावरों का बहिष्कार करना उचित न समझा और लल्लू जी लाल ने उर्दू-फारसी के घरेलू शब्दों तक को निकाल बाहर करना न जाने क्यों उचित समझा।

मिश्र जी के गद्य में शब्दाडंबर और कृत्रिमता भी वैसी नहीं है जैसी लल्लू जी लाल के गद्य में। शब्दों के बेतरह तोड़ने-मोड़ने का रोग भी उनमें न था। इनकी शैली सरल तथा पद-योजना का ढंग स्वाभाविक है। शिथिलता भी उतनी नहीं है।

हिन्दी गद्य में दोहरे शब्दों में प्रयोग करने की परिपाटी (जैसे- भीतर, बाहर, नृप के मन्दिर में, उथल-पुथल हो गया, यह बात काना-कानी होने लगी, फूलो-फलो, बोहार-सोहार) इन्होंने ही चलायी।

इनके मुहावरेदार गद्य को ध्यान से देखने से इस बात का स्पष्ट पता चल जाता है कि इन्हें इस बात का ज्ञान बराबर बना रहता था कि इनके द्वारा खड़ीबोली-एक गद्य शैली का निर्माण हो रहा है। इन्होंने ब्रजभाषापन को दूरदर्शिता से पूरी तौर से अपने गद्य से दूर रखा। मालूम होता है, शायद इन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा से यह पहले ही समझ लिया था कि एक दिन वह भी आनेवाला है, जबकि पद्य से भी ब्रजभाषा का बहिष्कार होगा और इसलिए आरंभ से ही गद्य शैली को ऐसा रूप देना चाहिए जिसमें ब्रजभाषा का रंग न्यूनातिन्यून हो, परन्तु इनके आरा प्रान्त के निवासी होने के कारण इनकी भाषा में कहीं-कहीं पूरबीपन आ गया है, जैसे-- इहां, मतारी, जौन, बाजने लगा आदि।

श्री द्विवेदी जी के उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि वे इस निर्णय पर पहुँच चुके थे कि सदल मिश्र द्वारा एक गद्य शैली का निर्माण हो रहा था। 'ध्वनि' 'अर्थ' एवं 'वाक्यार्थ' सभी दृष्टियों से सदल मिश्र की भाषा की बुनावट की जाँच एवं डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय एवं श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी आदि अध्येताओं के विचारों को प्रस्तुत करते हुए यह अधिकारपूर्वक कहा जा सकता है कि आधुनिक गद्य के नये स्वरूप को 'खड़ीबोली' नाम देनेवाले पं॰ सदल मिश्र उसकी आधारभूत शैली के प्रस्तोता भी थे। श्री द्विवेदी जी ने उनकी 'अलौकिक प्रतिभा' की चर्चा करते हुए यह कहा है कि "उन्होंने ब्रजभाषा को दूरदर्शिता से पूरी तौर से अपने गद्य से दूर रखा।" लेकिन अपने गद्य में अवधी एवं बँगला के पुट को भी शामिल करना उनकी इस दूरदर्शिता का परिचायक है कि एक दिन इस खड़ीबोली का रूप ऐसा भी हो सकता है, जब इसमें बंगाली के अलावा तमिल, तेलुगु, मराठी एवं मलयालम के शब्दों एवं वाक्य-विन्यास का प्रभाव दिखायी पड़ेगा। सदल मिश्र की भाषा में जिस पूरबीपन के होने का आरोप लगाया जाता है, वह उनके इस व्यापक दृष्टिकोण के आगे फीका पड़ जाता है। श्री आर॰ आर॰ दिवाकर के सम्पादकत्व में लिखी गयी पुस्तक (Bihar through the Ages) में इनकी शैली के बारे में लिखा है:- "इज रिगार्डेड ऐज हैविंग लेड द फाउण्डेशन आफ दैट प्रोज स्टाइल व्हिच केम टू स्टे" अर्थात् श्री मिश्र प्रायः सर्वसम्मति से उस गद्य शैली के प्रतिष्ठापक थे, जो आगे चलकर स्वीकृत हुई। उसमे कहा गया है :- "सदल मिश्र तथा लल्लू लाल दोनों ही उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक और लेखक थे।"①

'उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दी गद्य साहित्य का विकास' विषय लंदन विश्वविद्यालय (यू॰

---

①सदल मिश्र ग्रंथावली - भूतपूर्व लेखक पं॰ विलोचन शर्मा (भूमिका पृष्ठ-१) एवं (पृष्ठ ७४-७५)

के०) को जुलाई, १९६९ में प्रस्तुत शोधप्रबंध में डॉ० श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने लिखा है - "हिज सोजर्न इन कलकत्ता ड्यूरिंग द कम्पोजीशन आफ द वर्क हैज आल्सो हैड ऐन एनफ्लूएन्स आन हिज लैंग्वेज ऐज फार इक्जाम्पुल" मैं झुठाने नहीं सकता हूं। यह तो अनाथ कोई कांदता है, विनती किया, सौ वर्ष दिन वहां बीत गए।" अर्थात् सदल मिश्र के कलकत्ता प्रवास का प्रभाव उनकी रचना पर पड़ा जिसके उदाहरण में उपर्युक्त उदाहरण हैं। सदल मिश्र की अनुवाद कला एवं भाषा-शैली के संबंध में श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने बड़े विश्वासपूर्वक यह स्थापना दी है कि उन्होंने रामप्रसाद निरंजनी एवं दौलतराम की परम्परा में लिखा।

इस प्रकार सदल मिश्र की भाषा उनके सहयोगी (लल्लू लाल) की भाषा से अधिक ऊँचे साहित्यिक स्तर की है और उनके वाक्य-गठन में विभिन्नता कम है, उनकी शैली संयत है और कुल मिलाकर ध्वनि की दृष्टि से अधिक उत्कृष्ट है। इसका कारण यह है कि उन्हें संस्कृत का ज्ञान था और वास्तव में श्री सदल मिश्र एक विशिष्ट शैलीकार थे।

***

उपसंहार

(अध्याय - पन्द्रह)

सदल मिश्र ग्रंथावली के सम्पादक स्व॰ श्री नलिन विलोचन शर्मा ने लिखा है कि "हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में गद्य साहित्य का आविर्भाव भारतीय जीवन के उस मंजिल का द्योतक है जब वह मध्ययुगीन वातावरण से बाहर निकलकर वैज्ञानिकता का प्रतीक बना। मध्ययुगीन नैराश्य एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता की अवस्था के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनारम्भ में हमारा दृष्टिकोण बदलने लगा। हमारे नये शासक सात समुद्र पार से आये थे। वे उद्यम एवं अध्यवसाय के क्षेत्र में नयी दृष्टि रखते थे। मुगल शासकों ने हमारे देश में आकर हमारी भाषा संस्कृति को सीखने की परवाह नहीं की थी, लेकिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आरंभिक दूरदर्शी शासकों ने इसकी आवश्यकता समझी। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ होगा कि इस देश में उस समय व्यावहारिक काम-काज मे प्रयोग की भाषा 'गद्य' का कोई परिनिष्ठित रूप नहीं था। अत: वे उर्दू, हिन्दुस्तानी, रेंख्ता: एवं देहलवी को राज-काज में प्रयुक्त देख उसे ही जन-भाषा मानकर सीखने लगे। लेकिन कचेहरी की भाषा तथा हिन्दी भाषी जनता की सामान्य बोल-चाल की भाषा के अन्तर की बात के ध्यान में आते ही उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित बोलियों के बीच समान तत्त्वों पर आधारित एक भाषा की परिकल्पना की और इसी का परिणाम था कि उनके भाषा विशेषज्ञ जान गिलक्रिस्त के संरक्षण में संस्कृत या ब्रजभाषा पद्य से हिन्दुस्तानी ब्रजभाषा गद्य या खड़ीबोली गद्य में पाठ्य पुस्तक के निर्माण की दृष्टि से अनूदित साहित्य का सृजन किया जाने लगा। ईसाई मिशनरियों एवं फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष जान गिलक्रिस्त के दृष्टिकोण में अन्तर था। जहाँ गिलक्रिस्त का यह विश्वास था कि इस देश की भाषा फारसी मिश्रित हिन्दुस्तानी है, वहाँ ईसाई मिशनरी जनता के सम्पर्क में थे और वे देशी भाषाओं के शब्द ग्रहण कर रहे थे। जान गिलक्रिस्त के मुख्य सहायक श्री लल्लू लाल थे, जिन्हें फारसी एवं ब्रजभाषा का ज्ञान था और जो बहुत दौड़-धूप एवं सिफारिश के बाद फोर्ट विलियम कालेज में नौकरी पा सके थे। उनका लक्ष्य जान गिलकृस्त को खुश रखना एवं अपनी कामचलाऊ योग्यता के सहारे उनकी इच्छा के अनुरूप जहाँ-तहाँ से पुस्तकें तैयार कर उन्हें प्रकाशित कराना और इस प्रकार अपनी बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना था। श्री लल्लू लाल जी अपने इस लक्ष्य में सफल हुए, जैसा कि आचार्य पं॰ रामचन्द्र शुक्ल ने संभवत: अम्बिकादत्त व्यास के लेख के आधार पर लिखा है कि सन् १८२४ ई॰ में यह फोर्ट विलियम कालेज से पेन्शन लेकर अपने छापेखाने को नाव पर लादकर आगरे आये और वृद्धावस्था के दिन सुख से काटने लगे। श्री कृष्णाचार्य ने लिखा है कि "विलियम कैरे के जीवन लेखक जार्ज स्मिथ (१८३३ से १९१९) से केवल इतना ही पता लगता है कि उत्तरी भारत के किसी बाबूराम ने कलकत्ता में एक प्रेस खड़ा किया और संस्कृत के पंडित कोलब्रुक के प्रभाव से संस्कृत पुस्तकें छापने को तत्पर हुआ।" वे पुन: लिखते हैं कि "लल्लू लाल जी संस्कृत नहीं जानते थे और संस्कृत ग्रंथ छापने और उनके सम्पादन का श्रेय प्रेस के मूल स्वामी पं॰ बाबूराम को है।" श्री लल्लू लाल की धनार्जन की लिप्सा की तृप्ति फोर्ट

विलियम कालेज़ से प्राप्त बेतन एवं पुरस्कार आदि से नहीं हो सकी, वे सम्पादक से आगे चलकर उपर्युक्त प्रेस के स्वामी (मुद्रक) भी हो गये। श्री कृष्णाचार्य लिखते हैं कि " यह ज्ञात नहीं है कि पं॰ बाबूराम के खिदिरपुर स्थित संस्कृत प्रेस के स्वामी लल्लू जी कब हो गये और यह प्रेस कब पटलडागें में (कलकत्ते का एक मुहल्ला) स्थानान्तरित हो गया।"

सदल मिश्र एवं उनके समकालीन सहयोगियों की देवनागरी लिपि में रचित कृतियों की भाषा के अध्ययन के प्रसंग में अनेक सुविज्ञ भाषाविदों की लेखनी से यह प्रश्न उठाया गया कि "यद्यपि सदल मिश्र की कृतियाँ शैली एवं अन्य कई दृष्टियों से अधिक परिमार्जित एवं सुगठित गद्य थीं, फिर भी फोर्ट विलियम कालेज के तत्कालीन अधिकारियों ने इसका महत्त्व नहीं समझा या स्वीकार किया, किन्तु बाद की पीढ़ियों ने यह सिद्ध कर दिया कि यह उनकी गलती थी।" (श्रीमती) शारदा (देवी) वेदालंकार ने भी प्रश्न उठाया है कि " इन्सपाइट आफ हिज प्रोज विंग सुपीरियर इन एवरी रेस्पेक्ट टू दैट आफ लल्लू लाल, हिज वर्क्स वेयर नेवर पब्लिश्ड ड्यूरिंग हिज लाइफ टाइम, फार व्हिच नो रीजन हैज बीन फाउण्ड।" अर्थात् इस बात के बावजूद कि सदल मिश्र का गद्य लल्लू के गद्य से हर दृष्टि से श्रेष्ठ था, उनकी कृतियों का प्रकाशन उनके जीवन-काल में नहीं हो सका, इसके लिए कोई कारण नहीं मिल सका।①

डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने भी लिखा है- " निष्कर्ष यह है कि कालेज में पहले तो बहुत दिनों तक हिन्दुस्तानी की प्रधानता रही, जिसके फलस्वरूप लल्लू लाल के ग्रंथों की-विशेषत: 'प्रेमसागर' की रचना हुई। लल्लू लाल की रचनाओं का प्रधान उद्देश्य हिन्दुस्तानी का ज्ञान प्राप्त करने लिए आधार उपस्थित करना था। सदल मिश्र के नासिकेतोपाख्यान को कालेज के पाठ्यक्रम में कभी स्थान न मिला।"②

लेकिन इस प्रसंग में श्री कृष्णाचार्य के निम्नलिखित कथन से इनके कारणों का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है और गद्य के अन्य मान्य ग्रंथों के अप्रकाशित रह जाने का उत्तरदायित्व लल्लू लाल पर भी डाला जा सकता है - " इस तरह यदि प्रेमसागर के मुद्रण की प्रतिक्रिया, उसके एक के बाद एक संस्करणों के प्रकाशन, उस पर बने कोश और अंग्रेजी अनुवादों की पृष्ठिभूमि में देखा जाय तो यह तथ्य समझने में देर नहीं लगती कि अंग्रेजों ने लल्लू जी और उनके प्रेमसागर को क्यों महत्त्व दिया और १८१० में सम्पूर्ण प्रथम संस्करण छापने के बाद ये बीस रुपये की पुस्तक धड़ाधड़ कैसे छपी और बिकी। स्पष्ट है कि हिन्दी या हिन्दवी का मुद्रित नमूना उस समय मात्र प्रेमसागर द्वारा ही प्रकट हुआ। यह भारी दुर्भाग्य की बात थी कि उस समय लल्लू जी के साथी सदल मिश्र की समृद्ध और प्रसिद्ध कहानी 'नासिकेतोपाख्यान' मुद्रित नहीं हुई। उनकी दूसरी कृति अध्यात्म रामायण (रामचरित) भी नहीं छपी थी। पहली पुस्तक पहली बार नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा १९०१ में छपी और 'रामचरित' छपा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा १९६१ में। ऐसी स्थिति में मुंशी सदासुख लाल और लल्लू जी से ६२ वर्ष पहले के रामप्रसाद निरंजनी कृत योगवाशिष्ठ और पं॰ दौलतराम कृत पद्मपुराण (१७६१) को स्वयं लल्लू जी न जानते रहे हो तो क्या आश्चर्य?"③

---

① हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ -कृष्णाचार्य (पृष्ठ १०-१३)

② सदल मिश्र ग्रन्थावली - भूमिका (पृष्ठ ५)

③ आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - डा॰ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय (पृष्ठ ३६५)

श्री कृष्णाचार्य जी ने अंग्रेजों की भ्रांति दूर करने में लल्लू जी की असमर्थता या अज्ञानता की ओर संकेत करते हुए पुनः लिखा है- "स्वयं लल्लू जी को खड़ीबोली की ऐसी रचनाओं का पता न था, अन्यथा वे खुशदिल होकर अपने संस्कृत यंत्र से रामचरित मानस, बिहारी के दोहे, नरोत्तमदास के कवित्त, ब्रजवासीदास के बृहदाकार, ब्रजविलास आदि के साथ उन्हें अवश्य छापते। ऐसी स्थिति में अंग्रेजों ने प्रेमसागर को ही शुद्ध हिन्दी का प्रतिनिधि ग्रंथ मानकर कोई गुनाह नहीं किया। गलती इतनी ही थी कि खड़ीबोली को उन्होंने फोर्ट विलियम कालेज का आविष्कार मान लिया। सदल मिश्र कृत 'रामचरित' पर, पता नहीं क्यों, लल्लू जी की दृष्टि नहीं गयी। एक कारण यह हो सकता है कि बड़े ग्रंथ छापने के लिए कालेज के अधिकारियों की तरफ से संभवतः कोई आश्वासन न मिला हो।"①

इन उद्धरणों से 'सदल मिश्र' की कृतियों के अप्रकाशित रह जाने का उत्तरदायित्व न सिर्फ फोर्ट विलियम कालेज के अधिकारियों पर अपितु आंशिक रूप में उनके सहयोगी एवं प्रकाशन क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले लल्लू जी लाल पर भी आ जाता है। श्री कृष्णाचार्य के इस कथन के अनुसार कि "बहुत संभव है कि ब्रजभाषा के ग्रंथों का सम्पादन लल्लू जी और अवधी ग्रंथों का सम्पादन सदल मिश्र करते हों। ब्रजभाषा काव्यों का संग्रह और सम्पादन लल्लू जी ने किया, मानस का सम्पादन सदल मिश्र ने किया था।" यह प्रमाणित हो जाता है कि लल्लू लाल जी अपने सहयोगी की प्रतिभा एवं योग्यता से परिचित थे।

जान गिलकृस्त, लल्लू लाल एवं सदल मिश्र के संयुक्त सहयोग से हिन्दी गद्य के मानक स्वरूप के लिए निर्धारित 'खड़ीबोली' गद्य के नामकरण (क्वायनिंग) के संबंध में अब तक 'श्रेय के प्रथम अधिकारी' का निश्चय नहीं हो पाया था। इस पुस्तक के चतुर्थ अध्याय में तर्कपूर्वक यह अनुमानित किया गया है कि उनके प्रथम श्रेय के अधिकरी सदल मिश्र थे। जहां जॉन गिलकृस्त द्वारा खड़ीबोली को क्रमशः १- हिन्दुस्तानी शैली का एक विशिष्ट मुहावरा या २- हिन्दुस्तानी की शुद्ध हिन्दुस्तानी शैली या ३- सिर्फ अरबी फारसी के प्रत्येक शब्दों को निकालते हुए हिन्दुस्तानी की शुद्ध हिन्दुस्तानी शैली और लल्लू लाल द्वारा अन्य बातों के अतिरिक्त 'दिल्ली आगरे की खड़ीबोली' कहा गया, वहाँ सदल मिश्र ने इसे सिर्फ 'खड़ीबोली' कहा। उन्होंने इस भाषा-शैली में लिखने का कारण लोगों के देववाणी (संस्कृत) न समझना बताया। इसके अतिरिक्त तत्कालीन तीनों लेखकों की कृतियों की भाषा के विश्लेषण से भी यह स्पष्ट है कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों की बोलियों में मानक बोला (स्टैंडर्ड डायेलक्ट) या खड़ीबोली (स्टैंडिंग डायलेक्ट) के प्रायः सभी लक्षण सदल मिश्र की कृतियों की भाषा-शैली में ही मिलते हैं।

अतः यह अनुमान सुदृढ़ हो जाता है कि सदल मिर ने ही "खड़ी बोली" का नाम(डिनामिनेशन) प्रस्तावित किया हो।

सदल मिश्र एवं उनके समकालीन सहयोगी लल्लू लाल एवं बाइबिल के अनुवादक विलियाम कैरे आदि की भाषा के विभिन्न अवयवों की परीक्षा करने के प्रयास में कुछ तथ्य सामने आये हैं, जिनका सारांश इस प्रकार है।

सदल मिश्र की कृतियों की पांडुलिपि के प्रतिलिपिकार श्री वीरेन्द्र नारायण से साक्षात्कार एवं सदल मिश्र ग्रंथावली के सम्पादक के विचार के आधार पर यह प्रमाणित है कि उन्होंने देवनागरी लिपि के साथ

---

① हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ- कृष्णाचार्य (परिशिष्ट पृष्ठ १०)

'र ख एवं ल' वर्णों के लिए उस समय बिहार में प्रचलित कैथी लिपि के वर्णों का प्रयोग किया है। पूर्णविराम आदि के लिए कहीं-कहीं (०) आदि चिह्न मिल जाते हैं, लेकिन कोई नियमितता नहीं है। यह तथ्य उनके हस्ताक्षर में प्राप्त एक दस्तावेज की फोटो प्रति से भी प्रमाणित हो जाता है। उनकी कृतियों में मिलनेवाली वर्तनी संबंधी भूलों के प्रसंग में इस बात पर आश्चर्य होता है कि यद्यपि सदल मिश्र संस्कृत के पंडित थे, फिर भी उन्होंने व्यक्तिवाचक एवं ऐसे अन्य संज्ञा शब्दों की वर्तनी में भूल कैसे की? उनकी ऐसी भूलों के उदाहरण 'लक्ष्मण' को 'लछुमण' 'भारत' को 'भरता' एवं 'वर्णन' का 'वरनन' में मिलते हैं। इस संबंध में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसा संभवत: सामान्य जनता द्वारा प्रयुक्त की जानेवाली वर्तनी को ही प्राथमिकता देने के कारण किया गया हो। यह स्थिति सिर्फ सदल मिश्र की ही नहीं, वरन् स्वर एवं व्यंजन परिवर्तन तथा अनुपयुक्त व्यंजनों के प्रयोग की यह स्थिति तत्कालीन सभी गद्य लेखकों के साथ थी। यह प्रवृत्ति सिर्फ लल्लू लाल, सदल मिश्र या राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द तक ही नहीं रही, बल्कि स्वयं भारतेन्दु तक के गद्य में लिपि एवं वर्तनी की अनियमितताओं की भरमार है।

सदल मिश्र की कृतियों पर विचार करते हुए इतिहासकारों एवं आलोचकों ने उनकी भाषा में पूर्वीपन होने का आरोप लगाया है। डॉ० वार्ष्णेय ने लल्लू लाल एवं सदल मिश्र की भाषा के बारे में लिखा है- "सदल मिश्र की भाषा में ब्रज का वह माधुर्य नहीं आ सका, जो लल्लू लाल के गद्य में मिलता है। उन्होंने अपने सम्मुख भाषा का काई विशेष आदर्श न रखा था उन्होंने स्वतंत्र रूप से गद्य की परिपाटी स्थिर करनी चाही।" वे पुन: लिखते हैं - "उन्होंने (सदल मिश्र ने) भाषा की परिधि सीमित बनाने का प्रयत्न भी नहीं किया। सदल मिश्र की भाषा में पूर्वी शब्दों को प्रयोग भी बाहुल्य के साथ है।" पं० रामचन्द्र शुक्ल एवं हिन्दी साहित्य के अन्य इतिहासकारों ने भी उनकी भाषा में पूर्वीपन के बाहुल्य का उल्लेख किया है। इस दृष्टि से सदल मिश्र ग्रंथावली के आरंभ के मध्य एवं अन्त के पृष्ठों में प्रयुक्त शब्दों की संख्या का सर्वेक्षण किया गया है और यह पाया गया है कि भोजपुरी शब्दों के प्रयोग के बारे में जो कुछ कहा गया है उसमें अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है। मिश्र जी ने जिन भोजपुरी शब्दों का प्रयोग किया है, उनमें से कितने ही आज की परिनिष्ठित हिन्दी में आत्मसात् होकर उसकी शक्ति एवं शोभा को बढ़ा रहे हैं। इनमें सिर्फ कुछ ही ऐसी धातुएँ मिली हैं जो पूर्णत: भोजपुरी प्रदेश में प्रयुक्त होती हैं और उनके प्रयोग से भोजपुरी क्षेत्र के बाहर के पाठकों को किंचित् असुविधा हो सकती है। लेकिन ऐसी असुविधा तो प्रेमसागर एवं बाइबिल के अनुवाद जैसी तत्कालीन रचनाओं में प्रयुक्त कई अपरिचित शब्दों के कारण भी होती रही है।

जहाँ तक तत्सम शब्दों के प्रयोग का प्रश्न है, जहाँ आज संस्कृत से हिन्दी में अनूदित किये जानेवाले ऐसे ग्रंथों के उसका प्रतिशत ६० से ७० के बीच होता है, वहाँ उक्त दोनों ग्रंथों में ऐसे शब्दों का प्रतिशत ४० से ४५ के भीतर ही है। यह प्रतिशत सभी जगहों में समान नहीं है। जहाँ स्तुतिपरक या दार्शनिक प्रसंग आते हैं, वहाँ तत्सम शब्दों की संख्या स्वभावत: अधिक हो जाती है लेकिन जहाँ घटनाओं के वर्णन की बात आ जाती है, वहाँ इनका प्रतिशत न्यूनतम होने लगता है और उसके अनुपात में तद्भव एवं देशी शब्दों की संख्या अधिकतम हो जाती है।

यौगिक एवं व्युत्पन्न शब्दों की रचना-प्रक्रिया के अध्ययन के प्रसंग में यह पाया गया कि तत्सम समस्त पदों की संख्या की तुलना में तद्भव एवं देशी समस्त पदों की संख्या कम है।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के आरंभिक गद्य लेखकों में सिर्फ सदल मिश्र की कृतियों की ही

विशेषता है कि उनमें द्विरुक्त पदों का प्रयोग अधिक से अधिक किया गया। ये शब्द तत्सम, तद्भव एवं भोजपुरी के स्रोतों के हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सदल मिश्र ने इन शब्द-प्रयोगों को जन सामान्य की बोल-चाल से ग्रहण किया। इनके प्रयोग प्रत्येकता (घर-घर) अनिश्चितता (कोई-कोई) अतिशयता (सुन्दर-सुन्दर) (लाल-लाल) निश्चियता (सोरह-सोरह वर्ष की) एवं विस्मय (हाय-हाय) की अभिव्यक्ति में द्रष्टव्य है।

सदल मिश्र एवं उनके समकालीन सहयोगियों की कृतियों की भाषा में प्रयुक्त पदों के व्याकरणिक अध्ययन के प्रसंग में सज्ञा शब्दों के ऋजु, तिर्यक् एवं संबोधन रूपों (कारकों) में प्रतिपदिकों की स्थिति समान है। लेकिन इनके बहुवचनांत ऋजु एवं तिर्यक् रूपों में आबद्ध रूपिमों की स्थिति में किंचित् भिन्नता मिलती है। जहाँ अकारान्त पुँल्लिग संज्ञा शब्दों (सदल मिश्र ग्रंथावली में) के साथ ओं (लों) 'न्ह' (फूलन्ह), एवं 'अन' (हाथन) आबद्धरूपिमों का ही प्रयोग मिलता है, वहाँ आकारान्त पुँल्लिंग शब्दों में ओं (राजों), जाओं (राजाओं) एवं आन (राजन), आबद्धरूपिम मिलते हैं। प्रेमसागर की स्थिति लगभग समान है, लेकिन बाइबिल के अनुवाद में 'देवता' का बहुवचन रूप 'देवते' भी मिला है। इकारान्त एवं ईकारान्त पुँल्लिग 'इन' एवं य + ओं दोनों आबद्धरूपिम मिलते हैं। सेनापति के तिर्यक् बहुवचन में 'सेनापतिन' एवं 'सेनापतियों' दोनों रूप मिलते हैं। लेकिन यह भिन्नता सिर्फ 'ने' परसर्ग के योग में ही मिलती है। अन्य परसर्गों के साथ 'इन' आबद्धरूपिम का ही प्रयोग मिलता है। स्त्रीलिंग शब्दों में 'ईकारान्त' शब्दों (बहुवचन) में 'इनी' (राक्षसीनी), एवं य् + यों (रानियों) का प्रयोग मिलता है।

सारांश यह कि शब्दों के प्रयोग में तत्कालीन लेखकों में कोई असाधारण भिन्नता की स्थिति नहीं है।

लिंग संबंधी भूलों का मिलना उस समय की स्थिति के अनुसार आश्चर्य नहीं माना जा सकता। तत्कालीन लेखकों ने इस संबंध में सामान्य व्यावहारिक प्रयोग का सहारा लिया। 'बहुवचन' रूप के लिए लगभग सभी लेखक यथास्थान शब्द के अन्त में 'लोग' 'सब' या 'जन' आदि का प्रयोग करते हैं।

जहाँ तक कारक-प्रत्ययों (परसर्गों) का प्रश्न है, सदल मिश्र ग्रंथावली में इनके प्रयोग की स्थिति पर अनेक दृष्टियों से विचार किया गया कि कर्ता कारक के साथ 'ने' का प्रयोग यथास्थान किया गया है। 'को' कारक प्रत्यय के व्यत्यय के उदाहरण भी मिलते हैं- वह माँ से बोला (पृ० १३) जहाँ सदल मिश्र ग्रंथावली में साधन, कारण, आधार एवं रीति के अर्थ में 'से' का प्रयोग हुआ है, प्रेमसागर (गद्य) में इसके लिए 'सों' का प्रयोग मिला।

सदल मिश्र ग्रंथावली में 'में' कारक प्रत्यय के साथ 'मह' (तिस-मह) (पृ० ७३) का भी प्रयोग मिला है। सदल मिश्र ग्रंथावली में संबोधन कारक क्रम में 'ए', 'ऐ', 'हे', 'अरे' का प्रयोग मिला है जबकि प्रेमसागर में 'अहो' का प्रयोग।

जहाँ तक 'सर्वनाम' शब्दों का प्रश्न है, 'मैं' एवं 'हम' का प्रयोग प्रेमसागर एवं सदल मिश्र ग्रंथावली दोनों ग्रंथों में मिलता है। लेकिन प्रेमसागर के पद्य रुपों में 'हे' का प्रयोग ज्यादा मिला है । 'मुझ' एवं 'मुज' में 'झ' के स्थान पर 'ज' का प्रयोग सिर्फ 'रामचरित' में मिला है, चन्द्रावती में नहीं। 'झ' के स्थान पर 'ज' का प्रयोग उर्दू के प्रयोग के कारण आया है। 'हम लोगन' शब्द का प्रयोग सदल मिश्र ग्रंथावली में मिलता है, लेकिन प्रेमसागर में नहीं।

'तू' 'आप' एवं 'तुम' शब्दों के प्रयोग में विशेषता है। सदल मिश्र ग्रंथावली में 'आपका' प्रयोग

बड़ों के लिए किया गया है, लेकिन इसका निर्वाह नहीं हो सका है। सुग्रीव 'राम के लिए' 'आपका' प्रयोग करते हैं, लेकिन राम सुग्रीव के लिए 'तुम' का। इस प्रकार संबंधवाचक सर्वनाम जो-सो आदि के प्रयोग में समानता है। प्रेमसागर के दोनों चौपाइयों में 'जो' के स्थान पर 'जिन' 'जे' आदि का प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार 'कोई' के स्थान पर 'कोउ' का प्रयोग बजभाषा प्रवृत्ति का द्योतक है।

विशेषणों के प्रयोग में सदल मिश्र अधिक सजग एवं कुशल प्रतीत होते है। जहाँ कहीं कुशल अभिव्यक्ति की आवश्यकता पड़ी है, लेखक ने उपयुक्त विशेषणों का ही प्रयोग किया है चाहे वे तत्सम के हों या बोलियों के। (महाप्रतापी), 'तत्पर' एवं 'कृतारथ' आदि तत्सम विशेषण-पदों के साथ 'हाय-हाय करते' एवं 'कुश से लपेटा हुआ' जैसे वर्तमानकालिक एवं भूतकालिक कृदन्तीय विशेषणों के प्रयोग के अभिव्यक्तिपूर्ण उदाहरण तत्कालीन अन्य ग्रंथों में शायद ही मिलते हों। संख्यावाची विशेषणों में क्रम पूर्णांक, आवृत्ति एवं अपूर्णांक के साथ समुदाय का संकेत देनेवाले सार्थक विशेषण शब्दों के प्रयोग मिले हैं - जैसे सोरहों, दो-दो, अधमुआ, चारों, पाँचों आदि।

विशेषण से बने विशेष्य शब्दों के रूप भी 'बड़े का नाम कुश छोटे का लव' (पृ० १९४) में मिले हैं।

जहाँ तक 'क्रिया' का सम्बन्ध है, यह पहले भी कहा जा चुका है कि प्रेमसागर के क्रियापदों की तुलना में सदल मिश्र ग्रंथावली के क्रियापद खड़ीबोली के अधिक निकट हैं। यद्यपि इसमें प्रयुक्त कुछ क्रियापद ऐसे मिले हैं, जिन पर पूर्वीपन या भोजपुरी का प्रभाव है, या वे भोजपुरी बोली के ही क्रियापद हैं, लेकिन ऐसे क्रियापदों की संख्या खड़ीबोली के क्रियापदों की संख्या की तुलना में नगण्य ही कही जायगी। सदल मिश्र की भाषा पर काशी से कलकत्ते तक बोली जानेवाली बोलियों एवं भाषाओं का प्रभाव था। संस्कृत के अध्ययन से उसकी मूल धातुओं के सहारे नये क्रियापदों की रचना भी उनके लिए आसान थी। उन्होंने जिन धातुओं का सहारा लिया है, उनमें कुछ संस्कृत की हैं और अधिकांश तद्भव तथा देशी बोलियों की हैं। क्रियापद में कहीं-कहीं बँगला का भी प्रयोग दीखता है।

सदल मिश्र ग्रंथावली एवं प्रेमसागर की भाषा में प्रयुक्त पूर्वकालिक कृदन्तों के उदाहरणों से यह स्पष्ट किया गया है कि जहाँ पं० सदल मिश्र की प्रवृत्तियों हिन्दी के निर्माण में योगदान करनेवाली विभिन्न बोलियों एवं क्षेत्रीय भाषाओं के प्रत्ययों एवं शब्दों को ग्रहण करने की है, वहाँ लल्लू जी लाल का ध्यान मात्र ब्रजभाषा के प्रत्ययों, क्रियारूपों एवं शब्दों की ओर है। यही कारण है कि सदल मिश्र ग्रंथावली में "कर, हो, के, अ, इ, एवं आ" छह प्रत्यय जोड़कर विभिन्न शब्द बनाये गये हैं, वहाँ प्रेमसागर में लगातार 'आय' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है। पूरा प्रेमसागर आययुक्त प्रत्ययों से ही भरा पड़ा है।

क्रिया विशेषण एवं अव्यय के प्रयोग में उस समय के सभी लेखकों की प्रवृत्ति समान ही है, लेकिन सदल मिश्र ग्रंथावली में संयोजक अव्ययों में से 'ओ' का प्रयोग अधिक मिलता है। संस्कृत के 'एवं' अव्यय का प्रयोग नहीं मिलता। प्रेमसागर तथा बाइबिल में परिनिष्ठित संयोजक 'और' का प्रयोग अधिक है। इसके अतिरिक्त अन्य अव्ययों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि लल्लू लाल द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दों पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। वहाँ सदल मिश्र द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दों पर भोजपुरी का । लेकिन कहीं-कहीं ऐसे प्रयोग भी हैं, जो दोनों लेखक समान रूप से करते हैं। उदाहरणार्थ- 'निपट' शब्द का प्रयोग दोनों लेखक करते हैं लेकिन सदल मिश्र की रचना में इसकी बारम्बारता है। लल्लू लाल 'निदान' शब्द का प्रयोग अधिकाधिक करते हैं। 'ही' निपात के प्रयोग में भोजपुरी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जैसे-राम आवे होगा (पृ० ५८)।

पदबंधों की संरचना की दृष्टि से सदल मिश्र ग्रंथावली अपनी समकालीन कृतियों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ हो जाती है। व्याकरणिक कोटियों के अन्तर्गत परिगणित पदबंधों के अतिरिक्त अन्य दो प्रकार के पदबंध है। वे हैं- द्विरुक्ति एवं मुहावरों से बने पदबंध। ये पदबंध प्रयोग एवं शैली की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अनेक भाषाविदों ने तथा साहित्येतिहासकारों ने सदल मिश्र की रचनाओं में इन दोनों पदबंधों की उपस्थिति के लिए उनकी प्रशंसा की है। 'अनुप्रास रहित' एवं तुक व अनुप्रास-युक्त 'शब्द-युग्म' पदबंधों के प्रयोग से भाषा शैली निखर उठी है। 'आस-पास', 'बात-चीत', 'ज्ञान-विज्ञान' के साथ 'झूठ-मूठ', 'छल-छिद्र', 'नाकों-नाक' एवं 'बन-ठन' आदि शब्दों के प्रयोग ध्यातव्य हैं। ये शब्द-युग्म भिन्नार्थी, विपरीतार्थक हैं एवं कुछ विशेषण संज्ञा शब्दों से बने हैं। इनके सैकड़ों उदाहरण उपलब्ध हैं - जैसे पाप-पुण्य, ऊँच-नीच, परम पद, पिता-माता, कुटिल-कठोर आदि आदि। सदल मिश्र ग्रंथावली में प्रयुक्त २५० से भी अधिक मुहावरों का संग्रह उनके ग्रंथ में प्रयुक्त पदबंध एवं वाक्यों की विशेषता को प्रकट करता है। ये मुहावरे आँख, कान, नाक, दाँत, मुँह, केश, सिर, छाती, बदन, गला, एवं हृदय आदि सारे अंगों के अतिरिक्त अनेक वस्तुओं से संबंधित है। सदल मिश्र ग्रंथावली में सरल, मिश्र एवं संयुक्त तीनों प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया गया है। जहाँ तक कथन (नैरेशन) प्रश्न है, कथन मूल के अनुसार ही प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत है और 'कि' संयोजक का प्रयोग बहुत कम किया गया है। अधिकांश कथन योजक चिह्न (--) के बाद प्रस्तुत किये गये हैं।

अनुवाद सिद्धान्त एवं शैली खण्ड

अनुवाद-सिद्धान्तों एवं इसकी आवश्यकता पर विस्तार से विचार करने तथा उसकी प्ररिप्रेक्ष्य में सदल मिश्र की अनूदित कृतियों की समीक्षा के उपरान्त यह पाया गया कि सदल मिश्र खड़ीबोली गद्य के प्रथम सफल अनुवादक हैं। लल्लू लाल की प्रसिद्ध कृति 'प्रेमसागर', चतुर्भुज मिश्र द्वारा रचित ब्रजभाषा पद्य का गद्य रुपान्तरण मात्र है, इसलिए उन्हें अनुवादक के रूप में मान्यता देने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस दृष्टि से सदल मिश्र की तुलना अनके समकालीन अनुवादक विलियम कैरे से की गयी है। सदल मिश्र की प्रथम रचना 'चन्द्रावती' में भावात्मक अनुवाद के लक्षण अधिक हैं। लेखक ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि कहीं अनुवाद की भाषा संस्कृत शब्दों के हिन्दी पर्याय के संकट के कारण उलझ न जाय। उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा कि जो बातें कथा के लिए जरूरी नहीं हैं, उन्हें छोड़ देना ही उपयुक्त होगा। शब्द, वाक्य, श्लोक एवं अध्याय की चिन्ता किये बिना भाषा एवं भाविभिव्यक्ति को ही सर्पोपरि महत्त्व देते हुए अनुवाद का कार्य सम्पन्न किया गया है।

'रामचरति' के अनुवाद के संबंध में श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने उसे प्रेमसागर की तुलना में श्रेष्ठ अनुवाद कहा है। वास्तव में 'रामचरित' मात्र प्रेमसागर की तुलना में ही नहीं वरन् 'चन्द्रावती' की तुलना में भी अनुवाद की दृष्टि से एक सफल कृति है। इतना ही नहीं इस संबंध में यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि संस्कृत से भारतीय भाषा (खड़ीबोली) में सफलतापूर्वक अनूदित यह आदि ग्रंथ है।

इस ग्रंथ में श्री सदल मिश्र के शब्दानुवाद की शैली न अपनाकर अपनी अनूदित कृति को मौलिक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास किया है। इस दृष्टि से मिलान करने पर गीता प्रेस द्वारा अनुवाद सहित प्रकाशित अध्यात्म रामायण की तुलना में सदल मिश्र का अनुवाद अधिक सहज एवं सुबोध है। यह उल्लेखनीय है कि संस्कृत में कर्मवाच्य या भाववाच्य का प्रयोग अधिक होता है, लेकिन अनुवादक ने खड़ीबोली के स्वरूप की रक्षा करते हुए लगभग सभी जगहों में कर्तृवाच्य का ही प्रयोग किया है। पुस्तक के नामकरण एवं काण्डों तथा सर्गों के विभाजन में भी अनुवादक ने विशेषता एवं मौलिकता दिखायीहै।

भाषा-शैली की दृष्टि से सदल मिश्र का स्थान अपने समकालीन सहयोगियों की तुलना में सर्वोपरि है- इस बात की घोषणा डॉ॰ वार्ष्णेय ने इन शब्दों में की है। "मिश्र जी की शैली सरल तथा सुबोध है। उसमें क्लिष्टता तो नाममात्र की नहीं है।" आदि (देखें पृ॰ ४००) श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य का गद्य काल' पुस्तक के पृष्ठ २६ पर लिखा है- "सदल मिश्र की भाषा लल्लू जी लाल की भाषा से कुछ अधिक प्रौढ़ और परिमार्जित है------ आदि।" (देखें पृष्ठ ४००) सदल मिश्र ग्रंथावली की भूमिका के प्रारम्भ में श्री आर॰आर॰ दिवाकर के 'उद्धरण-वाक्य' से भी यही घोषित होता है कि सदल मिश्र खड़ीबोली के प्रथम शैलीकार थे। श्रीमती शारदा देवी वेदालंकार ने भी इस बात का जोरदार समर्थन किया है।

अत: यह आवश्यक था कि इस बात की पुष्टि के लिए सदल मिश्र ग्रंथावली की विधिवत् परीक्षा की जाय। डॉ॰ सुरेश कुमार द्वारा परिणीत 'शैली विज्ञान एवं प्रेमचन्द की भाषा' में प्रस्तुत साँचे के अनुसार 'चन्द्रावती' एवं 'रामचरित' की परीक्षा करने पर यह प्रमाणित हुआ कि ध्वनि-मूलक, अर्थमूलक एवं वाक्यात्मक शैलीय उपकरणों की दृष्टि से सदल मिश्र ग्रंथावली का रचयिता अपने युग का प्रथम शैलीकार है। ध्वनिमूलक उपकरणों में अनुप्रास, अनुकार ध्वनि-समूह, रीति एवं माधुर्य वृत्तियों के साथ ओज वृत्ति के सम्यक् विधान से भाषा को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सदल मिश्र की सफलता सराहनीय है। विभिन्न पर्यायवाची शब्दों, शब्द-शक्तियों, अर्थालंकारों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग ने भाषा को सजीव बना दिया है। कहीं-कहीं अप्रयुक्तत्व, अवाचकत्व दोष भी मिलते हैं, लेकिन वे नगण्य हैं। वाक्यबंधों का उपयोग करुणा, वैराग्य, उत्साह एवं क्रोध आदि भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए किया गया है।

सदल मिश्र की कृतियों की भाषा-शैली की सार्थकता को ध्यान में रखकर यह नि:सन्देह कहा जा सकता है कि खड़ीबोली हिन्दी की सच्ची सेवा का जो कार्य हिन्दी गद्य के नवयुग के अरुणोदय में श्री सदल मिश्र द्वारा कलकत्ते में प्रारम्भ किया गया, उसे वहाँ से क्रमश: काशी के महान् हिन्दी-सेवी भारतेन्दु ने उत्तराधिकार में अपनाया और उसकी ही धारा को तप:पूत महाप्राण निराला ने अपने 'मतवाला' से प्रारम्भ कर प्रयाग से प्रकाशित अनेक अनुपम रचनाओं के माध्यम से मुखरित किया । हिन्दी की इस सेवा में अनेक लेखक एवं कवि आये एवं आ रहे हैं। गंगा सागर से संगम स्थल तक हिन्दी गंगा के इस विकास-कथा को आगे ले जानेवाले अनेक सदल मिश्र, भारतेन्दु एवं निराला जैसे नि:स्वार्थ, उदार, रससिद्ध कवियों एवं लेखकों की अभी प्रतीक्षा है।

इस बात की पुष्टि डॉ॰ उदय नारायण तिवारी① के इन शब्दों से भी हो जाती है कि यद्यपि हिन्दी नितान्त पश्चिम की भाषा है तथापि इसके आधुनिक साहित्य का अभ्युदय पूरब में ही हुआ है। किसी समय कलकत्ता हिन्दी का प्रधान केन्द्र था तदुपरान्त काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना से काशी एवं प्रयाग हिन्दी के केन्द्र बने। इधर स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से दिल्ली हिन्दी प्रकाशन का केन्द्र बना, किन्तु हिन्दी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन-अध्यापन का वहाँ सूत्रपात नहीं हो पाया। आशा है हिन्दी भविष्य में अपने विशिष्ट और गरिमामय स्वरूप के साथ पूरे राष्ट्र में स्वीकृति के साथ पनपेगी और किसी विवाद का विषय नहीं बन सकेगी।

***

---

① हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास - डा॰ उदय नारायण तिवारी (दो शब्द- पृष्ठ ५)